सभा-विधान

लेखक—

विष्णुदत्त शुक्ल

विजया दशमी }
१९९६

{ अक्टूबर
१९३९ ई०

प्रकाशक—

विष्णुदत्त शुक्ल

सत्साहित्य प्रकाशन मन्दिर

७।१, बाबूलाल लेन,

कलकत्ता

मूल्य २॥) ढाई रुपये

मुद्रक—

विष्णुदत्त शुक्ल

शुक्ल प्रेस, ७।१, बाबूलाल लेन

कलकत्ता

सभा-विधान

प्राक्कथन

सभा सोसाइटियोंके इस बढ़ते हुए जमानेमें सभाविधान सम्बन्धी पुस्तकोंका प्रकाशन उपयोगी ही होगा। इसी आशामें प्रस्तुत पुस्तक लिखी गयी है। इसमें मैंने यथाशक्ति इस बातका प्रयत्न किया है, कि इस विषयकी अधिकसे अधिक बातें यथेष्ट विस्तारके साथ आ जायं ताकि आवश्यक अवसरोंपर जिज्ञासु पाठक इससे कुछ लाभ उठा सकें।

पुस्तक-रचनामें जिन ग्रंथकारोंकी कृतियोंसे मुझे सहायता मिली है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

विषयके अधिकारी महानुभावोंके सुझावोंका मैं आदर करूंगा अवसर आने पर पुस्तकमें तदनुकूल संशोधन परिवर्तन करनेमें भी मुझे हिचक न होगी।

—विष्णुदत्त शुक्ल

विषय-सूची

सभा-विधान

—००>०<००—

सभा

परिभाषा——किसी विषयकी विवेचना करनेके पहिले यह आवश्यक-सा होता है कि सर्वप्रथम यह समझ लिया जाय कि वह विषय है क्या ? सभा एक ऐसा प्रचलित शब्द है, जिसके सम्बन्धमें सम्भवतः कोई भ्रम नहीं हो सकता। परन्तु जब उस विषयका शास्त्रीय विवेचन करना अभीष्ट हो, तब तो उसकी परिभाषा आवश्यक हो ही जाती है। अस्तु; सभा मनुष्योंके उस समुदायको कहते हैं, जो किसी एक स्थानपर ऐसे विषय या विषयोंपर विचार करनेके लिये एकत्र हुआ हो, जिससे सर्वसाधारणका या किसी समुदाय-विशेषका सम्बन्ध हो और जो सामान्यतः न्यायानुमोदित हों। इस प्रकारके समुदायमें

सभाके सङ्गठनके लिये कमसे कम दो आदमी अवश्य होने चाहिये। यदि किसी स्थानपर कोई सदस्य अकेला उपस्थित हो और उसके पास दूसरे अन्य सदस्यों अथवा प्रतिनिधियोंकी प्रोक्सी हो तो प्रोक्सीके आधारपर उस व्यक्तिकी उपस्थिति एकसे अधिक न मानी जायगी और उस दशामें वह अकेला सभाका रूप धारण न कर सकेगा।

वर्गीकरण—सभाएं अनेक प्रकारकी होती हैं। उनके भेदोंकी गणना स्थूल रूपसे तीन प्रकारसे होती है, उद्देश्यके आधारपर, सङ्गठनके आधारपर, आयोजनके आधारपर। उद्देश्यके आधारपर सभाओंके इतने भेद हो सकते हैं, जिनकी गणना भी शायद न हो सके। राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी, शिक्षा सम्बन्धी, स्त्रियों सम्बन्धी, बालकों सम्बन्धी, युवकों सम्बन्धी इत्यादि भिन्न-भिन्न उद्देश्योंको लेकर अनेक प्रकारकी सभाएं की जा सकती हैं। फिर इन भेदोंके भी अन्तर्भेद होते हैं। इन प्रधान भेदोंके अन्तर्गत विशेष-विशेष मतों और सिद्धान्तोंके प्रतिपादनके आधारपर अगणित भेद-प्रभेद किये जा सकते हैं।

सङ्गठनके आधारपर गणना करनेमें यह बात नहीं है। उसके अनुसार गणना करनेपर सभाओंके केवल तीन भेद होते हैं, एक तात्कालिक सार्वजनिक सभाएं (Public Meetings), दूसरे सङ्गठित सभाएं (Organised Meetings) और तीसरे कम्पनी सभाएं (Company Meetings)। तात्कालिक सभाओंमें तो वे तमाम सभाएं आ जाती हैं, जो उपरोक्त उद्देश्योंके आधारपर किसी विशेष अवसरपर हो जाती हैं और उस अवसरके बाद फिर उनका कोई सङ्गठन नहीं रहता। इस प्रकारकी सभाएं विशेष-विशेष आंदोलनोंके अवसरपर प्रचार-कार्यके लिये, किसीका स्वागत-अभिनन्दन आदि करनेके लिये

अथवा किसीके हर्ष-शोकके अवसरपर प्रसन्नता और समवेदना प्रदर्शित करनेके लिये की जाती हैं। सङ्गठित सभाएं उन सभाओंको कहते हैं, जिनका एक स्थायी सङ्गठन है, जो अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये सतत प्रयत्न करता रहता है। इस कोटिमें धारा सभाएं, म्युनिसिपेलिटियां, कांग्रेस एवं अन्य राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि संस्थाएं सम्मिलित हैं। कम्पनी सभाओंमें उन व्यापारिक संस्थाओंका शुमार किया जाता है, जिनमें शेयर होल्डर्स आदि होते हैं और जिनका कार्य-सञ्चालन करनेके लिये उन शेयर होल्डरोंकी सभाएं करनी पड़ती हैं।

आयोजनके आधारपर सभाओंके केवल दो भेद होते हैं—सार्वजनिक सभाएं (Public Meeting) और गुप्त सभाएं (Private Meeting)। सार्वजनिक सभाओंमें प्रायः सभी लोग भाग ले सकते हैं, यद्यपि इसमें भी संयोजकगण कामकी सुविधाके लिये जनसाधारणके सम्मिलित होनेमें नियंत्रण कर सकते हैं। प्रायः जो सभाएं होती हैं, वे इसी कोटिकी होती हैं। गुप्त सभाओंमें सर्वसाधारण भाग नहीं ले सकते। उनमें वे ही लोग भाग ले सकते हैं, जो संयोजकों द्वारा निमन्त्रित किये जाते हैं। इस प्रकारकी सभाएं अधिकांश ऐसे विषयोंपर विचार करनेके लिये होती हैं, जिनका सम्बन्ध व्यापक सर्वसाधारणसे नहीं होता, प्रत्युत् एक अल्प समुदायमात्रसे होता है और जिसके विचारणीय विषय गोपनीय होते हैं।

इन भेदों-प्रभेदोंके अतिरिक्त कुछ भेद और होते हैं। जैसे स्थगित सभाएं, आवेदित (Requisitioned) सभाएं, आवश्यक (Emergent) सभाएं, अधिवेशन आदि। इनमेंसे स्थगित सभा उस सभाको कहते हैं, जिसकी एक मीटिंग पहिले हो चुकी हो और काम समाप्त न होनेके कारण

अथवा अन्य किसी कारणवश वह दूसरे दिनके लिये स्थगित कर दी गयी हो। आवेदित सभाएं (Requisitioned Meeting) उन सभाओंको कहते हैं, जो सदस्योंके विशेष आग्रहपर की जाती हैं। कभी-कभी सभाओंमें ऐसे प्रसंग आते हैं कि सदस्यगण किसी विशेष विषयपर विचार करना चाहते हैं, परन्तु मन्त्री तथा अन्य पदाधिकारी उसपर ध्यान न देकर सभा नहीं बुलाते। ऐसी दशामें सदस्योंको अधिकार होता है कि एक निश्चित संख्यामें सब सदस्य मिलकर शेष अन्य सदस्योंको सूचना देकर उस विशेष विषयपर विचार करनेके लिये सभा बुलावें। इस प्रकार बुलायी गयी सभा आवेदित सभा कहलाती है। आवश्यक सभा किसी विशेष महत्वपूर्ण और आवश्यक विषयपर विचार करनेके लिये बुलायी जाती है। इस सभाको पदाधिकारी स्वयं ही बुलाते हैं। ऐसी सभाएं कम समयकी सूचनापर और नियमोंको कुछ शिथिल करके भी बुलायी जा सकती हैं। अधिवेशन उस सभाको कहते हैं, जो वार्षिक या छमाही आदि अपने-अपने नियमोंके अनुसार एक निश्चित अवधिके बाद बुलायी जाती है।

सभी प्रकारकी सभाओंके लिये सञ्चालन सम्बन्धी नियम प्रायः एक-से ही होते हैं। बहुत कम बातें ऐसी हैं, जिनमें विधान और नियम सम्बन्धी भेद होता है। इन विधान सम्बन्धी भेदोंका उल्लेख विषयोंके अनुसार प्रसंगपर किया जायगा। इस स्थानपर सबका उल्लेख अनावश्यक और अपर्याप्त हो सकता है। अतः साधारणतः और कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु फिर भी एक बात लिख देनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। वह यह कि ऊपर सार्वजनिक सभाओंके अन्तर्गत अभिनन्दन और शोक प्रदर्शन सम्बन्धी जिन सभाओंका उल्लेख किया गया है, उनमें अभिनन्दन और शोकके प्रस्तावोंके

अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारके प्रस्ताव उपस्थित नहीं किये जाते। साधारण सभाओंमें शोकका प्रस्ताव पास करके अन्य काम हो सकते हैं, परन्तु शोक-सभामें नहीं।

संयोजन—सभाओंमें पहिला काम उसके संयोजनके लिये किया जाता है। इसके लिये समाचारपत्रोंमें सूचना छपवाकर, हैण्डबिल बँटवाकर, ढोल पिटवाकर निमंत्रण-पत्र भेजवाकर तथा ऐसे ही और उपाय करके सभाकी सूचना देनी होती है। इसके अतिरिक्त एक स्थान ठीक करना पड़ता है, जहां सब आदमियोंके बैठनेकी जगह हो। साथ ही टेबल, कुर्सी, बिछौना आदि बैठनेके उपकरण एवं कागज, पेंसिल, घड़ी, घण्टी, कलम, दावात आदि अन्य आवश्यक सामान भी तैयार रखने पड़ते हैं।

प्रसंगवश संयोजन सम्बन्धी एक बात और याद आती है। कभी-कभी ऐसा अवसर आता है कि किसी सभाके बुलानेकी नियमित सूचना दी जा चुकी है तथा अन्यान्य आयोजन भी हो चुकते हैं, फिर भी किसी कारण-विशेषसे सभा स्थगित कर देनी पड़ती है। ऐसी अवस्थामें आवश्यक तो यही है कि जिन उपायोंसे सभा बुलानेकी सूचना दी गयी थी, उन्हीं उपायोंसे सभाके स्थगित करनेकी सूचना दी जाय; परन्तु यदि यह सम्भव न हो तो संयोजकों को अधिकार है कि वे उस विशेष सभाको स्थगित कर दें और सभा स्थानपर स्थगित करनेकी सूचना टांग दें। इस प्रकार स्थगित करनेसे निमंत्रित व्यक्तियों को कष्ट तो अवश्य होता है, परन्तु उसका कोई उपाय नहीं है।

कार्य—किसी सभाका कार्य उस समय तक आरम्भ नहीं हो सकता, जबतक उस सभामें भाग लेनेवालोंकी उपस्थिति एक अपेक्षित संख्यामें न हो जाय। यह अपेक्षित संख्या (जिसे कोरम कहते हैं) सङ्गठित और कम्पनी-

सभाओंमें तो निर्धारित रहती है, परन्तु सार्वजनिक असङ्गठित सभाओंमें इसकी कोई संख्या निर्धारित नहीं होती और यह संयोजकों पर (सभा बुलानेवाले लोगोंपर) निर्भर रहता है कि वे कितनी उपस्थितिको कार्यारम्भके लिये पर्याप्त समझें।

अपेक्षित संख्याके उपस्थित हो जानेके बाद सभामें सबसे पहिला कार्य होता है सभापतिका निर्वाचन। यह कार्य सङ्गठित और कम्पनी सभाओंमें प्रायः नहीं करना पड़ता, क्योंकि उनमें स्थायी सभापति होते हैं, जिन्हें वैसे ही यह अधिकार होता है कि सभाओंका सभापतित्व करें। हां, उनकी अनुपस्थिति में सभापतिका निर्वाचन उन संस्थाओंके नियमानुसार अवश्य किया जाता है। परन्तु असङ्गठित सार्वजनिक सभाओंमें यह कार्य प्रायः करना ही पड़ता है, यद्यपि कुछ अवसर ऐसे आते हैं जब सभापतिका निर्वाचन संयोजकगण पहिलेसे ही कर लेते हैं। परन्तु उस अवस्थामें भी यह नियम है कि सभाके एकत्र हो जानेपर नियमानुसार उस समय फिर सभापतिके निर्वाचनके लिये प्रस्ताव और समर्थन किया जाय तथा उपस्थित जनताकी स्वीकृति लेकर सभापतिका निर्वाचन किया जाय। परन्तु अब यह प्रथा धीरे-धीरे उठ चली है। अब केवल यह प्रथा है कि यदि सभापतिका निर्वाचन पहिलेहीसे कर लिया गया है और इसकी सूचना सभाकी सूचनाके साथ प्रकाशित की जा चुकी है तो फिर सभाके एकत्र होनेपर सभापतिका निर्वाचन नहीं किया जाता, केवल यह घोषणा कर दी जाती है कि अमुक व्यक्ति सभापतिका आसन ग्रहण करेंगे। यह प्रथा सुविधाके लिये उपयुक्त और समीचीन है। सूचनामें सभापतिका नाम प्रकाशित कर देनेके बाद भी जब लोग उस सभामें भाग लेनेके लिये आते हैं तब यह तो अनायास ही माना जा सकता है कि उनका मनोनीत सभापति पर

विश्वास है, अतः फिर नवीन निर्वाचनका उपक्रम कर समय नष्ट करना अनावश्यक और व्यर्थ-सा ही हो जाता है। फिर भी, सभापतिके निर्वाचनका अधिकार सभासे छीना नहीं जा सकता और यदि बहुसंख्यक मत मनोनीत सभापतिके विरुद्धमें हो तो नवीन निर्वाचन अवश्यम्भावी हो जाता है।

सभापतिके आसन ग्रहण करनेके बाद ही सभा वास्तविक अर्थमें सभा कही जाती है और उनके आसन छोड़ देनेपर सभा भंग समझी जाती है। अतः जब सभा अपना वास्तविक रूप ग्रहण कर लेती है, तब सबसे प्रथम कार्य यह होता है कि संयोजक या मन्त्री सभा सम्बन्धी सूचना पढ़कर सुनाता है। कम्पनी सभाओंमें तो यह सूचना-पाठ अनिवार्यतः आवश्यक होता है। सूचनाके किसी शब्द या किसी अन्य बातपर यदि किसी सभासदको आपत्ति हुई तो वह उसी समय उसपर एतराज करता है और फिर उस विषयपर वाद-विवाद और विचार होता है और जब सूचना नियमित मान ली जाती है, तब कार्य आगे बढ़ता है। परन्तु यदि सूचना अनियमित करार दे दी गयी तो सभा, उपस्थित सभासदोंके इच्छानुसार स्थगितकी जा सकती है। परन्तु सूचना पाठका कार्य सामान्यतः सभाओंमें (कम्पनी सभाओंको छोड़कर) नहीं किया जाता और यह कोई ऐसा कार्य है भी नहीं जिसपर जोर दिया जाय।

सूचना पाठके अनन्तर मन्त्री गत बैठकोंकी कार्यवाही पढ़कर सुनाता है। यह कार्य संगठित और कम्पनी सभाओंमें ही होता है। असंगठित सार्वजनिक सभाओंमें इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। कार्यवाहीके सम्बन्धमें यदि किसी उपस्थित सभासदको कोई संशोधन करना कराना हो तो वह कार्यवाहीका पाठ समाप्त होते ही कर सकता है और उस संशोधनपर विचार करके आवश्यकतानुसार सुधार कर लिया जाता है और फिर वह कार्यवाही स्वीकृत की जाती

है और उसपर सभापतिके हस्ताक्षर करा लिये जाते हैं।

इतनी कार्यवाही हो जानेके बाद मन्त्री उन चिट्ठियोंको पढ़ता है जो विभिन्न लोगोंकी ओरसे सभामें पेश करनेके लिये आयी होती हैं। ये चिट्ठियाँ आशीर्वादों और शुभ कामनाओंकी चिट्ठियोंके रूपमें भी आती हैं और इनसे भिन्न रूपमें भी। इनमें सभाओंके लिए कार्य-निर्देश भी किया जाता है।

इसके बाद सभापति अपना प्रारम्भिक भाषण देता है। सभाका ठोस कार्य सभापतिके भाषणके साथ ही आरम्भ होता है।

सभापतिके भाषणके बाद सबसे पहिले उन विषयोंपर विचार होता है जो बाकी चले आ रहे हैं (यदि ऐसे कोई काम हों तो और ऐसे काम प्रायः कम्पनी और सङ्गठित सभाओंमें ही होते हैं) फिर अर्थ सम्बन्धी बातोंपर विचार किया जाता है और तत्पश्चात् उप-समितियोंकी रिपोर्टोंपर विचार किया जाता है। इसके बाद नये प्रस्ताव लिये जाते हैं। फिर उन प्रस्तावोंपर संशोधन और फिर वोट लिये जाते हैं। तत्पश्चात् सभापति उन प्रस्तावों और संशोधनोंके सम्बन्धमें अपना निर्णय सुनाता है।

यह काम समाप्त हो जानेके बाद यदि सभा किसी विशेष व्यक्तिको धन्यवाद देना चाहती है तो उसके धन्यवादका प्रस्ताव पेश किया जाता है। उसकी स्वीकृतिके बाद उस व्यक्तिको उत्तर देनेका अवसर मिलता है। अन्तमें सभापतिको धन्यवाद देनेका प्रस्ताव रखा जाता है और उसके समर्थन आदि हो जाने एवं सभा द्वारा स्वीकृत हो जानेपर सभापतिको उत्तर देनेका अवसर मिलता है। इसके बाद सभापति घोषणा करता है कि सभा भंग की गयी।

संक्षेपमें यही कार्य है, जो किसी सभाको करना पड़ता है और साधारणतया इसी क्रमसे ये कार्य सभाओंमें किये जाते हैं; परन्तु यदि सभा इस क्रममें

परिवर्तन करना चाहे तो बहुमतसे कर सकती है।

अवधि—यों तो, जैसा कि किसी अन्य प्रसंग वश ऊपर कहा जा चुका है, सभाकी अवधि सभापतिके आसन ग्रहणसे प्रारम्भ हो कर उसके आसन छोड़ देनेपर अन्त होती है। परन्तु इस कथनके अनुसार अवधिका कोई निश्चित रूप सामने नहीं आता और उसका कोई निश्चित रूप होता भी बहुत कम है। फिर भी विशेष अवसरोंपर अवधि निश्चित रूपसे निर्धारित की जाती हैं। असंगठित सार्वजनिक सभाओं और कम्पनी सभाओंमें अवधि निर्धारण प्रायःअसम्भव होता है। उनके सामने जो काम होता है वह जितनी जल्दी या देरमें समाप्त हो जाय वही उनकी अवधि होती है। यह बात अन्यान्य सभाओंके लिये भी उतनी ही सत्य है तथापि उनमें अवधिका निर्देश होता है। संगठित सभाओंमें यह बात प्रधान रूपसे दृष्टिगोचर होती है। कांग्रेस अपनी सूचनाके साथ ही यह घोषित कर देती है कि अमुक तारीखसे अमुक तारीख तक अधिवेशन होगा। यही कार्य धारा सभाओं और अन्य सामाजिक, साहित्यिक सभाओं आदिका भी है। अपनी घोषित सूचनाके अनुसार ये संस्थाएं अवधिके भीतर ही अपना काम प्रायः समाप्त कर देती हैं। फिर भी कार्यकी आवश्यकता और सुविधाके लिये उन्हें भी अवधिमें परिवर्तन करने पड़ जाते हैं। अतः वास्तवमें अवधिका सम्यक् और पूर्ण निर्धारण प्रायः असम्भव होता है।

ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट होगा कि सभाएं कुछ घण्टोंसे लेकर महीनों तककी अवधि तक चल सकती हैं और जब लम्बी अवधि होगी, तब स्वभावतः बीच-बीचमें सभाओंका कार्य बन्द करना पड़ेगा। अतः यह भ्रम हो सकता है कि एक साथ जिस समयसे जिस समय तक बैठ कर सभा की गयी हो उसे एक स्वतन्त्र सभा मान लिया जाय। परन्तु वास्तवमें बात यह नहीं है। पूरी

सभा उसी समय मानी जायगी, जब सूचनामें निर्धारित विचारणीय विषयोंपर अथवा उसके निमित्त की गयी सभाओंमें नियमानुसार आये हुए अन्य आवश्यक विषयोंपर विचार हो चुका होगा अथवा अन्य आवश्यक और नियमित कार्य हो चुके होंगे, जिनके लिये सभा एकत्र की गयी थी। इस प्रकार अधिक समय तक चलनेवाली सभाको अधिवेशनके नामसे पुकारा जाता है और बीच-बीचमें विश्रामके लिये आवश्यक अवकाशके अनन्तर विचारणीय विषयोंपर विचार करनेके लिये जो सभासद एकत्र होते रहते हैं, उन्हें बैठकें कहते हैं। इस प्रकार एक अधिवेशनमें एकसे लेकर अनेक बैठकें हो सकती हैं।

कार्यकर्त्ता—प्रत्येक सभाके कार्यका व्यवस्थित रूपसे संचालन करनेके लिए दो कार्यकर्त्ताओंकी अनिवार्यतः आवश्यकता होती है—संयोजक या मन्त्री और सभापति। संयोजक सभाकी आयोजना करता है। सूचना निकालना, स्थानका प्रबन्ध करना, लोगोंको बैठाना, चिट्ठियां पढ़ना पढ़ाना आदि काम संयोजकके हैं। सभापति सभाका संचालन और नियंत्रण करता है--किस विषयपर कब विचार करना, किसको कब बोलने देना, कब सभा समाप्त करना आदि काम सभापतिके हैं। इन दो कार्यकर्त्ताओंके बिना किसी सभाका कार्य सम्पादन सम्भव ही नहीं। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं पर एक कार्यकर्त्ता या कर्मचारी और होता है। इसका काम यह है कि सभामें स्वीकृत या अस्वीकृत किसी विशेष विषयको लिख ले, सभापति या संयोजक और कोई आवश्यक कार्य बतावें तो उसे कर डाले आदि। परन्तु यह आवश्यक कार्यकत्ता नहीं है। इसके काम संयोजक या मन्त्री कर सकते हैं और उस दशामें इस कार्यकर्त्ताकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।

व्यवस्था—कार्यवाही आरम्भ होनेके बाद, सभाकी तमाम व्यवस्थाका

दायित्व सभापतिपर होता है और सभासदोंके लिए यह आवश्यक होता है कि वे सभापतिकी आज्ञाको मानें और उसके अनुसार कार्य करें। साधारण अवस्थाओंमें सभाकी व्यवस्था बनाये रखनेमें सभापतिको अधिक कठिनाई नहीं होती; परन्तु विशेष अवसरोंपर जब कुछ ऐसे लोग सभाओंमें पहुंच जाते हैं जो उसकी शांति भंग करनेका और कार्यवाहीमें जान बूझकर अड़चन डालनेका प्रयत्न करते हैं, तब सभापतिको काफी कठिनाई उठानी पड़ती है। सभापतिको अधिकार होता है और उपरोक्त अवस्थाओंमेंतो उसके लिए यह उचित और आवश्यक भी होता है कि वह ऐसे विघ्नकारियोंको सभासे निकाल दे और अगर वह विघ्न डालनेवाला व्यक्ति सभापतिकी आज्ञाके बाद भी सभासे बाहर न जाय तो पुलिसकी सहायतासे वह कानूनन बाहर निकाला जा सकता है। परन्तु सभापति अपने इन उग्रतम अधिकारोंका प्रयोग सामान्यतः नहीं करते और न उन्हें ये प्रयोग करने ही चाहिये। पुलिस बुलानेका प्रयत्न बहुत ही अनिष्ट और अनुपयुक्त है।

जब सभाओंमें व्यक्तिगत निमन्त्रण देकर लोग बुलाये जाते हैं, अथवा जब प्रवेश-पत्र द्वारा (चाहे वे प्रवेश-पत्र निःशुल्क दिये जायं और चाहे शुल्क लेकर) लोग सभामें सम्मिलित किये जाते हैं, उस समय वे यह धारणा बना लेते हैं कि अब उन्हें उचित एवं अनुचित सब कुछ करनेका अधिकार प्राप्त हो गया। जब शुल्क देकर प्रवेश पत्र खरीदा जाता है, तब तो यह भावना और भी स्पष्ट और प्रबल हो जाती है। परन्तु बात यह नहीं है। सभामें चाहे कोई योंही आया हो, चाहे निमन्त्रित होकर आया हो और चाहे शुल्क देकर आया हो और वह सभा चाहे किसी सार्वजनिक स्थानपर हो रही हो, चाहे किसी वैयक्तिक स्थानपर; हर हालतमें उसको सभाकी शान्ति और व्यवस्थाकी

रक्षा करनी चाहिये। वैयक्तिक स्थानोंपर गुप्त सभाएं करनेकी हालतमें संयोजकोंको यह अधिकार होता है कि वे जिसको चाहें, उसको अन्दर आने दें और जिसको चाहें, उसको न आने दें। रोके जानेवाले आदमीने टिकट भी खरीद लिये हों और सभा भवनमें बैठनेके लिये स्थान भी खाली हो, तब भी गुप्त सभाओंमें संयोजकगण किसी भी आदमीको प्रवेश करनेसे रोक सकते हैं।

इस स्थानपर एक बात और स्पष्ट कर देनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। ऊपर विघ्न डालनेकी निन्दा की गयी है। इससे और यह जानकर कि पिछले दिनों कांग्रेसकी ओरसे जो प्रतिनिधि एसेम्बली, कौंसिलों आदिमें गये थे, वे अडंगाकी नीतिकी स्पष्ट घोषणा करके गये थे, यह भ्रम हो सकता है कि कांग्रेसवाले कोई अनुचित कार्य करने गये थे। परन्तु कांग्रेसवालोंकी नीति यह नहीं थी और न है कि एसेम्बली और कौंसिलोंकी कार्यवाहीमें अड़ंगे डालें और उनकी शान्ति भंग करें। वे तो उन योजनाओंमें विघ्न डालनेका व्रत लेकर गये थे, जो सरकार द्वारा एसेम्बलीमें इसलिये पेश की जाती थी कि संसारको यह दिखलानेका अवसर मिले कि जनताके प्रतिनिधियों द्वारा उनकी योजनाएं स्वीकृत होती हैं। यह काम वे एसेम्बलीकी शान्ति और व्यवस्थाकी रक्षा करते हुए उन योजनाओंका नियमित विरोध करके बड़ी आसानीके साथ कर सकते थे और वही उन्होंने किया भी। अतः उनका कार्य सभाओंके नियमोंसे किंचित्‌मात्र भी विपरीत नहीं था।

सभामें सभापतिकी आज्ञा माननेके लिये प्रत्येक सभासद बाध्य होता है, चाहे वह आज्ञा अनुचित ही क्यों न हो। हां, उसे यह अधिकार अवश्य होता है कि यदि सभापतिने कोई ऐसी आज्ञा दी हो, जो उसे अनुचित प्रतीत होती हो तो वह सभापतिपर अविश्वासका प्रस्ताव पेश कर सकता है और यदि

उपस्थित सभासदोंका आवश्यक बहुमत उसके पक्षमें हो जाय तो वह उस सभापतिको पदच्युत कर सकता है और उसके बाद नवीन सभापतिका निर्वाचन कर नियमित रूपसे फिर कार्य किया जा सकता है। इस प्रकार सभापतियों और सभासदों, दोनोंको सभाकी व्यवस्थामें अलग-अलग अधिकार हैं और दोनों सभाकी भलाईके लिये अपने-अपने अधिकारोंका नियमानुसार प्रयोग करनेके लिये स्वतन्त्र हैं।

नियमित रूप—सभा उसी समय नियमित रूपसे सङ्गठित मानी जायगी, जब उसमें निम्नलिखित बातें हुई हों :—

१—नियमित रूपसे आयोजन किया गया हो, अर्थात् उपयुक्त व्यक्ति द्वारा उपयुक्त सूचना उपयुक्त व्यक्तियोंके पास उपयुक्त समयपर पहुंचायी गयी हो।

२—नियमित रूपसे उसका सङ्गठन किया गया हो। नियमित सङ्गठनके लिये यह आवश्यक है कि:—

(क) नियमपूर्वक निर्वाचित व्यक्ति सभापतिके आसन पर हो। और

(ख) अपेक्षित संख्या (कोरम) में लोग उपस्थित हों।

३—उसकी कार्यवाही नियमपूर्वक, विभिन्न सभाओंके निर्धारित नियमोंके अनुसार की गयी हो।

जबतक ये बातें न हों, तबतक सभा नियमित न मानी जायगी।

उपकरण

नियमित और व्यवस्थित सभाके आरम्भके पहिले विशेष रूपसे तीन बातोंकी आवश्यकता होती है, एक तो यह कि सभा सम्बन्धी नियमित सूचना दी जा चुकी हो और दूसरे यह कि सभामें उतने सभासदोंकी उपस्थिति अवश्य हो गयी हो, जितनेकी उपस्थितिसे सभाका कार्य नियमानुसार आरम्भ किया जा सकता हो और तीसरे यह कि सभापतिका निर्वाचन हो गया हो। इस अध्यायमें इन्हीं तीनों बातोंका विवेचन किया जायगा।

सूचना—सभाएं बुलानेके लिये अनेक उपाय काममें लाये जाते हैं। सबसे अधिक उपयुक्त उपाय तो यह है कि सभाओंकी सूचनाएं समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित करवा दी जायं। इससे अनायास ही हजारों आदमियों तक सूचना पहुंच जाती है। यह उपाय अन्यान्य उपायोंसे सस्ता भी पड़ता है, क्योंकि इसमें अधिक व्ययकी बात नहीं होती। संयोजककी ओरसे सूचनाकी

दो-चार या दस-पांच नकलें करके समाचार-पत्रोंके कार्यालयोंमें भेज दी गयीं और वहां वे प्रकाशित हो गयीं। परन्तु अब समाचार-पत्रवाले भी कुछ सङ्कीर्ण व्यापार बुद्धिवाले हो गये हैं और कभी-कभी वे इस प्रकारकी सूचनाएं भी बिना शुल्क लिये नहीं छापते। यह अवस्था पाश्चात्य देशोंमें तो बहुत अधिक हो गयी है। इसीलिये अन्यान्य उपाय प्रचारमें आये हैं। हैण्डबिल बँटवाकर, पोस्टर आदि चिपकवाकर, ढिंढोरे पीटकर तथा ऐसे अनेक उपायोंसे सभा-सम्बन्धी सूचनाएं दी जाने लगी हैं। कुछ अवस्थाओंमें व्यक्तिगत रूपसे निमन्त्रण भेजकर भी सभा सूचना दी जाती है। गुप्त सभाओंमें तो यह प्रथा अवश्यमेव पायी जाती है। कम्पनी सभाओं और सङ्गठित सभाओंमें भी इसका पालन प्रायः अनिवार्य होता है। सार्वजनिक सभाओंमें इसकी अनिवार्यता नहीं होती।

सूचनामें सभाका स्थान, समय, वार, तिथि और विषय अनिवार्य रूपसे होने चाहिये। जबतक जनसाधारणको यह न मालूम हो कि सभा कब और कहां होगी और उसमें विशेष रूपसे किस विषयपर विचार किया जायगा अथवा क्या काम किया जायगा, तबतक उपस्थिति समुचित नहीं हो सकती। अतः उक्त बातोंका रहना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। सूचनाओंमें कभी-कभी, जब सभापतिका निर्वाचन पहिलेहीसे हो चुका होता है तब, सभापतिका नाम भी दे दिया जाता है। इसका देना उस समय और भी अच्छा होता है, जब सभापति कोई ऐसा व्यक्ति चुना जाय जिसका जनतापर प्रभाव हो और जिसके कारण अपेक्षित जन-समुदायकी उपस्थिति अधिक हो सके।

सूचना देनेमें एक बातका ध्यान और रखना चाहिये। सङ्गठित और कम्पनी सभाओंमें कुछ विशेष नियम बने रहते हैं, जिनमें अन्यान्य बातोंके

साथ-साथ यह निर्देश भी रहता है कि सभाकी सूचना इतने दिन या इतने समय पूर्व देनी चाहिये। अतः इन सभाओंकी सूचनाएं नियमानुसार उतने समय पूर्व अवश्य प्रकाशित करवा दी जानी चाहिये। इस प्रकारका नियम सार्वजनिक असङ्गठित सभाओंमें नहीं होता। फिर भी जहांतक सम्भव हो, वहांतक सार्वजनिक असंगठित सभाओंकी सूचना भी इतने समय पूर्व तो अवश्य प्रकाशित करवा देनी चाहिये, जिससे वह लोगोंको ऐसे समय मिल जाय जिसमें वे अपने व्यक्तिगत आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर सभामें सम्मिलित हो सकें। फिर भी, विशेष आवश्यक अवसरोंपर सूचनाओंके सम्बन्धमें अवधि विषयक इस नियमपर अधिक जोर नहीं दिया जाता।

सभाके लिये जो समय और जो स्थान निर्धारित किया जाय, उसमें इस बातका विचार अवश्य कर लेना चाहिये कि वह समय और स्थान उन लोगोंके लिये सुविधाप्रद होगा, जिन्हें सभामें आना है। कम्पनी सभाएं और सङ्गठित सभाएं तो प्रायः अपने-अपने कार्यालयोंमें ही होती हैं। ये सभाएं तो उसी समय अन्य स्थानोंपर की जाती हैं, जब कोई विशेष आयोजन किया जाता है जिसकी व्यवस्थाके लिये सभाओंके कार्यालय पर्याप्त नहीं होते।

सूचना भेजनेके बाद संयोजकों या मन्त्रियोंको यह भी देख लेना चाहिये कि सूचना सबके पास ठीक-ठीक पहुंच गयी है या नहीं। कमसे कम उन लोगोंके पास तो सूचना अवश्य ही पहुंच जानी चाहिये, जो सभाके उद्देश्यों और कार्योंसे सम्बन्ध रखते हैं।

तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंको छोड़कर, जिनमें भाग लेनेके अधिकारी व्यक्तियोंकी गणना भी असम्भव होती है, अन्य प्रायः सभी प्रकारकी सभाओंमें यह आवश्यक होता है कि सूचना उन सब लोगोंके पास पहुंचायी जाय जिन्हें

सभामें भाग लेनेका अधिकार है। यदि भूलसे भी अकस्मात् किसी सदस्यके पास सूचना न पहुंचे तो सभाकी कार्यवाही अनियमित करार दी जा सकती है। साधारण अवस्थाओंमें तो इस विषयपर जोर नहीं दिया जाता, परन्तु जब कोई विशेष कार्य करना हो, तब तो यह नियम आवश्यक-सा होता है। लेकिन यदि उस सभासदके खोजनेकी पर्याप्त चेष्टा की जा चुकी हो और फिर भी वह न मिला हो, अथवा वह इतनी दूर चला गया हो जहां सूचना पहुंचाना असम्भव हो अथवा यदि वह सदस्य इतना बीमार हो कि सभामें आ न सकता हो और उस अवस्थामें उसे नोटिस (सूचना) न दी गयी हो तो सभाकी कार्यवाही अनियमित न मानी जायगी। जिस प्रकार अधिकारी व्यक्तिको सूचना न देना अनुचित है,उसी प्रकार अनधिकारी व्यक्तिको बुलाना भी अनुचित है। यही हाल अपर्याप्त सूचनाका है। अपर्याप्त सूचनासे अभिप्राय ऐसी सूचनासे है, जो नियमित समयपर उन सब बातोंके पर्याप्त उल्लेखके साथ न दी गयी हो, जिनकी आवश्यकता होती है। सूचनाकी सार्थकताके लिये जिन बातोंकी आवश्यकता होती है उनका उल्लेख पीछे आ ही चुका है। सूचना सदैव ऐसी भाषा और शैलीमें लिखी जानी चाहिये, जिससे अर्थ समझनेमें न तो कोई कठिनाई हो और न भ्रम। किसी विशेष कार्यके अवसरपर तो स्पष्टता और भी अधिक होनी चाहिये। कभी-कभी ऐसा होता है कि सभासदके पास पूर्व सूचित पतेपर सूचना भेजी जाती है, परन्तु उसके स्थान परिवर्तन कर देनेके कारण, उसे वह सूचना नहीं मिलती। उस दशामें यदि सदस्यने अपना परिवर्तित पता सभामें नहीं भेजा, तो उसे सूचना न मिलनेपर भी, सभा अनियमित न मानी जायगी।

सूचना सम्बन्धी इन कठिन नियमोंके होते हुए भी यदि कोई ऐसा प्रसंग

आ जाय कि किसी समय सभाके सब सदस्य बिना सूचनाके एकत्र हों और कोई सदस्य सूचना सम्बन्धी नियमके पालन न किये जानेपर एतराज न करता हो तो बिना सूचना दिये भी सभाका कार्य किया जा सकता है और वह कार्य अनियमित न माना जायगा।

कुछ अवस्थाएं ऐसी भी होती हैं, जिनमें सूचना देना आवश्यक ही नहीं होता। जैसे यदि कोई सभा नियमित रूपसे प्रति सप्ताह एक दिन निश्चित समय और स्थानपर होती है तो उसकी सूचनाकी उपेक्षा की जा सकती है। इसी प्रकार स्थगित बैठकोंमें भी सूचना देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु उस स्थगित सभामें केवल उन्हीं विषयोंपर विचार होना चाहिये जो पिछली बैठकसे बचकर आये हैं। उसमें किसी नये विषयपर विचार नहीं किया जा सकेगा। यदि नया विषय उपस्थित करना हो तो उसकी सूचना नियमानुसार देनी होगी। कोरमके अभावमें स्थगित की गयी सभाकी सूचना साधारण सभाओंकी भांति ही देनी चाहिये।

यदि कोई सदस्य बहुत दिनोंतक बिना पर्याप्त कारणके अनुपस्थित रहा हो तो वह सभासदके अधिकारोंसे वञ्चित समझा जायगा और उस दशामें यदि उसे सूचना न भेजी जाय तो सभाकी कार्यवाही अनियमित न मानी जायगी। सभासदोंके अधिकारोंसे बञ्चित करनेवाली अनुपस्थितिकी अवधि विभिन्न संस्थाओंके नियमानुसार भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु साधारणतः यदि कोई सभासद ६ महीनेसे १२ महीनेतक सभाकी बैठकोंमें उपस्थित न हुआ हो तो उसकी अनुपस्थिति उसे उन अधिकारोंसे वञ्चित करनेके लिये पर्याप्त मानी जायगी।

कोरम—पिछले अध्यायमें कहा जा चुका है कि सभाकी वास्तविक

कार्यवाही आरम्भ होनेके पहिले अपेक्षित संख्यामें जन-समूहके एकत्र होनेकी आवश्यकता होती है। इस अपेक्षित संख्याको कोरम कहते हैं। कोरमकी संख्या संगठित और कम्पनीकी सभाओंमें नियम पूर्वक पहिलेहीसे निर्धारित रहती है, परन्तु तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंके लिये संख्या निर्धारित नहीं रहती। उनमें केवल यह देख लिया जाता है कि कार्यवाही आरम्भ होनेके पूर्व इतने आदमी एकत्र हो गये हैं जो काम करनेके लिये काफी हैं। कभी-कभी ऐसे प्रसंग आते हैं—विशेष रूपसे संगठित और कम्पनी सभाओंमें—जब सदस्यगण विचारणीय विषयपर अपनी सम्मतियां व्यक्तिगत रूपसे अलग-अलग लिखकर भेज देते हैं, उस दशामें यदि विशेष रूपसे उस सभाके नियमोंमें कोई उल्लेख न हो तो सम्मति देनेवालोंकी संख्या कोरमकी संख्यामें सम्मिलित न मानी जायगी। उसी प्रकार जो लोग प्रोक्सीका (अपनी सम्मति देनेका) अधिकार अन्य सदस्योंको दे देते हैं उनकी गणना भी कोरममें नहीं की जाती। साधारण नियम यह है कि कोरममें वे ही लोग सम्मिलित किये जाते हैं जो व्यक्तिगत रूपसे सशरीर सभामें उपस्थित होते हैं।

कोरमके लिये कोई विशेष संख्या निर्धारित नहीं है। सभाएं अपनी-अपनी सुविधाके अनुसार भिन्न-भिन्न संख्या निर्धारित करती हैं। फिर भी साधारणतया सभाकी बैठकोंमें अधिकसे अधिक जितने सभासदोंकी उपस्थितिकी सम्भावना हो कोरममें उतनी संख्या अवश्य रखी जानी चाहिये। वैसे कोरममें यदि सभासदोंकी संख्याके आधेसे अधिक लोग रखे जायं अर्थात् सभासदोंका बहुमत कोरम माना जाय तो सर्वोत्तम है। परन्तु साधारण अवस्थाओंमें इतने लोगोंकी उपस्थिति सम्भव नहीं होती, इसलिये कोरम संख्या प्रायः कम लोगोंकी निर्धारित की जाती है। इसीलिये उपस्थितिकी सम्भावना

वाले लोगोंकी अधिकसे अधिक संख्या रखनेकी बातपर जोर दिया गया है। कोरमकी संख्या किसी दशामें भी ३ से कम न होनी चाहिये, क्योंकि उससे कामके निर्णय आदिमें मत-गणना उचित ढंगसे न हो सकेगी। फिर भी कहनेके लिये एक अवस्था ऐसी आ सकती है, जिसमें अकेले एक आदमीकी उपस्थिति भी पर्याप्त मानी जा सकती है। यह अवस्था कम्पनी मीटिंगमें विशेष रूपसे आ सकती है। जब किसी एक खास प्रकारके शेयर होल्डरोंके सम्बन्धमें किसी बातपर विचार करना हो और उस प्रकारके सब शेयर केवल एक ही व्यक्तिके पास हों तब अकेले वह आदमी भी कोरमकी संख्याको पूरा कर सकता है।

कोरम संख्या प्रत्येक सभा अपने-अपने लिये अलग-अलग स्वतः निर्धारित कर लेती है। परन्तु उपसमितियोंकी कोरम संख्या प्रायः वह सभा निर्धारित कर देती है जो उस उपसमितिका सृजन करती है। किन्तु यदि वह प्रमुख सभा कोरम निर्धारित न करे तो आमतौरसे समितिकी कोरम संख्या ३ मानी जाती है।

साधारणतया, कोरमकी जो संख्या निर्धारित होती है उसके बिना सभाका कोई काम नहीं किया जाता और यदि उसके बिना काम किया जाय तो वह अनियमित और अमान्य समझा जाता है। फिर भी, यदि किसी सभाके नियमोंमें ऐसी सुबिधा रखी गयी हो तो, यह घोषणा करके कि उपस्थित जनसमूह काम करनेके लिए पर्याप्त है, उस सभाका काम किया जा सकता है। परन्तु यदि सभाके नियमोंमें यह बात न हो तो इस प्रकारकी घोषणा व्यर्थ होगी और इसके अनुसार की गयी कार्यवाही अनियमित मानी जायगी। एक विचित्र-सी अवस्था और हो सकती है। यदि सभाके अधिकांश सदस्य

बीमारी आदि कारणोंसे उपस्थित होनेमें शरीरतः असमर्थ हों और शेष सदस्योंकी संख्या निर्धारित कोरम संख्यासे कम होती हो तो, उस अवस्थामें भी, जितने सदस्य उपस्थित होंगे, बशर्ते कि उपस्थित सदस्योंकी संख्या दो से कम न हो, उतनेकी उपस्थितिसे भी काम किया जा सकता है।

कोरमके अभावमें जो काम किया जा सकता है वह केवल यह है कि सभा स्थगित कर दी जाय। सभाके स्थगित करनेमें यह निर्णय करनेका अधिकार भी उस समय उपस्थित सभासदोंको होता है कि फिर सभा किस समय और किस स्थानपर की जाय। सभाके स्थगित हो जानेके बाद जो स्थगित बैठक होती है उसके लिए साधारणतया कोरमकी संख्या निर्धारित नहीं होती और उपस्थित सभासद अपनी विवेक बुद्धिके अनुसार उपस्थित संख्याको कार्यके लिए पर्याप्त समझें तो कार्य कर सकते हैं और उस दशामें किया गया कार्य अनियमित न माना जायगा। परन्तु उस दशामें, यह अत्यन्त आवश्यक है कि उस बैठकमें केवल उन्हीं विषयोंपर विचार किया जाय जो पिछली बैठकमें, जब सभा स्थगित की गयी थी; विचारके लिए उपस्थित किये गये थे। नये विषयोंपर विचार करना अनियमित और अनुचित है।

कोरम, प्रायः कार्यारम्भके अवसरपर ही देखा जाता है, विषयोंपर विचार करने अथवा निर्णय करनेके अवसरोंपर नहीं। फिर भी यह नहीं है कि अन्य अवसरोंपर ध्यान नहीं देना चाहिए। कभी-कभी ऐसी अवस्था आती है कि कार्यवाही आरम्भ करनेके पहिले कोरम संख्या पर्याप्त रहती है; परन्तु बादमें सदस्योंके चले जानेके कारण उपस्थिति इतनी कम हो जाती है कि कोरम भरको भी आदमी नहीं रहते। उस समय यदि सभापतिका ध्यान जाय अथवा यदि कोई सदस्य ध्यान आकृष्ट करे कि संख्या पर्याप्त नहीं है तो शेष

कार्य स्थगित कर देना पड़ेगा। परन्तु यदि सभापतिका ध्यान न जाय अथवा कोई सदस्य इस ओर ध्यान न दिलाये, चाहे ये बातें जान बूझकर ही की जायं, तो सभा नियमित मानी जायगी और उसके निर्णय सभासदोंके लिये मान्य होंगे। परन्तु यह बात कम्पनी सभाओंके विषयमें लागू नहीं होती। उस सभामें तो निर्णयके समय उपस्थिति कोरम भरके लिये लिए अवश्य होनी चाहिए।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोरम पूरा हो जानेपर भी काम स्थगित कर दिया जाता है। यह अवस्था विशेष रूपसे उस अवसरपर आती है जब सभामें कोई अधिक महत्वपूर्ण निर्णय करना होता है। ऐसे निर्णयोंके समय सभासदोंकी सम्पूर्ण संख्याका बहुमत ही उपयुक्त होता है और यदि कोरम कम सदस्योंका रहा और कोरमसे अधिक लोग उपस्थित न हुए तो वह विषय स्थगित कर दिया जाता है। फिर भी यदि कोरमकी उपस्थितिमें वह निर्णय कर डाला जाय तो अनियमित न होगा।

कोरमकी प्रतीक्षा सूचना द्वारा निर्धारित समयसे १५ मिनट बाद तक तो अवश्य करनी चाहिए। परन्तु, प्रत्येक सभाके संयोजक अपने निर्णयके अनुसार प्रतीक्षाकी इस अवधिको और भी बढ़ा सकते हैं। हमारे देशकी वर्त्तमान अवस्थामें तो इस प्रतीक्षाकी और भी अधिक आवश्यकता पड़ती है। परन्तु है यह बात अनुचित और हमें ठीक समयपर उपस्थित होनेकी आदत डालनी चाहिए। प्रतीक्षाके बाद कोरम संख्या पूरी न होनेपर साधारण अवस्थाओंमें की गयी सभाएं स्थगित कर दी जाती है। परन्तु जब सभा किन्हीं विशेष सदस्यों द्वारा कुछ विशेष विषयोंपर विचार करनेके लिए विशेष आग्रहके साथ बुलायी गयी हो अर्थात् जब रिक्वीज़िशन्ड मीटिंग हो तब उपयुक्त समय

तक प्रतीक्षा करनेके बाद भी यदि कोरम पूरा न हो तो वह सभा स्थगित नहीं, विसर्जित कर दी जाती है और उस दशामें यदि आग्रही व्यक्ति फिर सभा बुलाना चाहें तो उन्हें मौलिक सभाके लिए आवश्यक सब काम करने पड़ेंगे, स्थगित सभाकी सुविधाएं उन्हें न मिलेंगी।

सभापतिका निर्वाचन—अपेक्षित या आवश्यक जन-समूहके सभा-स्थानपर एकत्र हो जानेके बाद सबसे प्रथम कार्य होता है सभापतिका निर्वाचन। संगठित सभाओंमें तो उनके सभापति स्थायी रूपसे निर्वाचित रहते हैं और अपने कार्य कालमें वे ही सब बैठकोंमें सभापतित्वका कार्य करते हैं। और यदि वे उपस्थित न हुए तो उनके स्थानपर उप-सभापति और उप-सभापतिकी अनुपस्थितिमें उपस्थित सभासदोंमेंसे कोई एक व्यक्ति निर्वाचित कर लिया जाता है। कम्पनी सभाओंमें प्रायः बोर्ड आफ डायरेक्टरके चेयरमैन या ऐसा ही अन्य पद ग्रहण करनेवाला पदाधिकारी सभापति बनाया जाता है। परन्तु तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें तो सभापतिका निर्वाचन किया ही जाता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि संयोजक गण पहिलेहीसे सभापति मनोनीत कर रखते हैं और अपेक्षित उपस्थितिके पश्चात् सभामें उसकी घोषणा करके कार्य आरम्भ कर देते हैं। कार्यकी सुविधाके विचारसे यह प्रथा सर्वोत्तम है। परन्तु जब ऐसी बात नहीं होती तब साधारण प्रथा यह है कि संयोजक या मन्त्री खड़ा होकर जनताको सम्बोधित करते हुए इस प्रकार कहता है:—
"अब कार्य आरम्भ किया जाता है, मैं प्रस्ताव करता हूं कि श्री० अमुक सभापतिका आसन ग्रहण करें।" इस प्रस्तावका अन्य व्यक्ति द्वारा समर्थन होना चाहिये। उसके बाद प्रस्तावक स्वयं इसपर उपस्थित सभासदोंकी सम्मति

लेकर पक्ष या विपक्षमें, जैसी अवस्था हो, निर्णय देकर बहुमत पक्षमें होनेपर उस व्यक्तिसे अनुरोध करेगा कि वह सभापतिके आसनपर आसीन हो।

संयोजक स्वयं किसी व्यक्तिके लिये सभापतिका प्रस्ताव न करके यह भी कर सकता है कि उपस्थित जनसमूहसे कहे कि उनमेंसे कोई सज्जन सभापतिके लिये किसीका नाम उपस्थित करें। और जब ऐसा नाम सामने आये तब उसका समर्थन हो जानेपर उसको विचारार्थ उपस्थित करे और बहुमतकी सम्मतिके अनुसार निर्णय दे। यह सामान्य रीति है। परन्तु बहुत अधिक नियम पालनके विचारसे यह भी किया जाता है कि सभापतिका निर्वाचन करनेके लिये ही एक स्वल्प-कालिक सभापति निर्वाचित किया जाता है। इसका निर्वाचन भी प्रस्ताव, समर्थन और बहुमतकी सम्मतिसे ठीक उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार वास्तविक सभापतिका निर्वाचन होता है। यह प्रथा अधिक नियमानुकूल होते हुए भी इसलिये उपेक्षणीय है कि इससे असुविधा भी बड़ी होती है और समय भी नष्ट होता है। इस सम्बन्धमें अधिक अच्छी रीति तो यही है कि संयोजक स्वयं सभापतिका प्रस्ताव करके उसपर सम्मति आदि ले ले।

जहांतक सम्भव हो सभापतिका निर्वाचन सर्वसम्मतिसे होना चाहिये। परन्तु यदि वह पहिलेसे मनोनीत न हुआ हो तो प्रायः यह होता है कि एक नामके साथ-साथ और-और नाम भी सभापतिके लिये आते हैं। उस दशामें निर्वाचन-कार्य कुछ कठिन हो जाता है। संयोजक, ऐसी अवस्थामें, सब नामोंको लिख लेता है और जिस क्रमसे नाम पेश होते हैं, उसी क्रमसे एक-एक नाम वह सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित करता जाता है। नाम पेश करते समय प्रस्तावकको भाषण देनेका अधिकार तो अवश्य होता है, पर इस बातकी

सावधानी रखनी पड़ती है कि प्रस्तावक महाशय प्रतिद्वन्दी सभापतिके विरोधमें कोई अशिष्ट या आक्षेपपूर्ण बात न कह दें। यदि प्रस्तावक सावधान न रहें तो अल्पकालिक सभापति उसको इस प्रकारके आपत्तिजनक भाषणसे रोक सकता है। सभापति या अन्य पदाधिकारियोंके निर्वाचनमें इस प्रथाका पालन आवश्यक होता है। यदि इन अवसरोंपर भाषण देना बिलकुल ही रोका जा सके तो शायद बहुत ही अच्छा हो। परन्तु यदि यह सम्भव न हो—जैसा कि प्रायःहोता है—तो यह नियम तो अवश्य ही रखना चाहिये कि प्रस्तावक अपने उम्मेदवारकी प्रशंसा और योग्यताके सम्बन्धमें कहनेके अतिरिक्त अन्य उम्मेदवारोंकी आलोचनामें कुछ भी न कहे।

जब एकसे अधिक उम्मेदवार होते हैं तब प्रत्येक उम्मेदवारको नियमके अनुसार अपना समर्थन करनेका—इतना ही क्यों अपने नामका प्रस्ताव करनेका भी—अधिकार होता है। अपने लिये वोट देना साधारण-सी बात है। इस प्रकारकी कार्यवाही अनियमित नहीं मानी जाती। परन्तु अपने नामका समर्थन, अनुमोदन अपने-आप करना अधिक समीचीन नहीं प्रतीत होता। इससे तो यह अच्छा होता है कि इस सम्बन्धमें उम्मेदवार तटस्थ रहे या अन्य उम्मेदवारके पक्षमें अपनी सम्मति दे। हाउस आफ कामन्समें तो यह प्रथा हो गयी है कि दो उम्मेदवारोंमें प्रत्येकको अपने प्रतिद्वन्दीके लिये वोट देना पड़ता है। जो व्यक्ति अल्पकालिक सभापति पदके लिये निर्वाचित किया जाता है, यदि सभाका बहुमत उसके पक्षमें हो तो वह स्थायी सभापति भी बनाया जा सकता है। नियमोंमें उसके लिये कोई बाधा नहीं आती। सभापतिका निर्णय बहुमतसे होता है और मतगणना उसी प्रकार होती है जिस प्रकार अन्य अवसरोंपर। जब दो उम्मेदवार हों तब तो मतगणना अधिक

कठिन नहीं होती। पक्ष और विपक्षमें वोट देनेके बाद यदि एक उम्मेदवारका नाम बहुमतसे स्वीकार हो गया तो दूसरेका नाम अपने-आप अस्वीकृत हो जाता है। परन्तु जब उम्मेदवारोंकी संख्या अधिक होती है तब थोड़ी कठिनाई आती है। उस समय वोट लेनेका सबसे उत्तम तरीका यह है कि अस्थायी सभापति सब उम्मेदवारोंके नाम सभामें उपस्थित सभासदोंको बांचकर सुना दे और उसके बाद एक-एक करके वोट ले। फिर जिसके नाम सबसे अधिक वोट आवें उसे सभापति निर्वाचित कर ले। परन्तु इस प्रणालीमें एक शास्त्रीय त्रुटि आ जाती है। वोट प्रत्येक सभासद किसी एक ही आदमीको देता है। एक सभासद अनेक उम्मेदवारोंको वोट नहीं देता। यही नियम है। ऐसी दशामें अधिक उम्मेदवार होनेपर यह होता है कि वोटोंका इतना अधिक बंटवारा हो जाता है कि सबसे अधिक वोट पानेवाले व्यक्तिको भी उपस्थित जनसमुदायके बहुसंख्यक वोट नहीं मिलते। उदाहरणके लिये मान लीजिये किसी सभामें १० सदासद उपस्थित हैं और सभापतित्वके लिये ३ उम्मेदवार हैं जिनको क्रमशः ४, ३, ३ वोट मिले। अब ४ वोट पानेवाला भी उपस्थितिके विचारसे बहुमतका पानेवाला नहीं हुआ क्योंकि बहुमत तो ५ से अधिकका होगा। अतः बहुत अधिक कायदेकी पाबन्दीके लिये यह किया जा सकता है कि एक साथ दो उम्मेदवारोंपर वोट लिये जायं। इन दोमें जो बहुमतसे स्वीकार हो उसके साथ तीसरा एक उम्मेदवार लेकर फिर उन दोनोंपर वोट लिये जायं। इसी प्रकार दो-दोके नाम लेकर वोट लिये जायं। इस अवस्थामें उपस्थित दो नामोंपर वोट देनेका अधिकार सबको होगा और निर्णय अधिक नियम संगत और उपयुक्त होगा। बराबर वोट आनेकी हालतमें सभापतिके विशेष वोटसे निर्णय करनेकी अपेक्षा चिट्ठी डालकर निर्णयकर लेना अधिक अच्छा होता है।

संगठित सभाओंमें नवीन सभापतिका निर्वाचन विभिन्न सभाओंके निर्धारित नियमोंके अनुसार अलग अलग होता है। परन्तु यदि इस सम्बन्धमें कोई नियम न बने हों तो उसका निर्वाचन भी उपरोक्त ढंगसे ही होगा। हां, उसके निर्वाचनके लिये अल्प-स्थायी सभापतिका आसन अन्य कोई व्यक्ति न ग्रहण कर गत बर्षका सभापति ही ग्रहण करेगा।

यदि किसी सभामें मनोनीत सभापति समयपर उपस्थित न हो सका हो तो उसके स्थानपर उपस्थित सदस्योंमेंसे किसी उपयुक्त व्यक्तिको सभापति निर्वाचित करके कार्य आरम्भ किया जा सकता है। इस अवस्थामें यदि नवनिर्वाचित सभापतिके आसन ग्रहण करनेके बाद मनोनीत-सभापति आवें तो यह आवश्यक नहीं है कि नवनिर्वाचित सभापति आसन छोड़ दे। प्रत्युत उचित यह है कि वह काम करता रहे और पूर्व मनोनीत सभापति साधारण सदस्यकी भांति कार्यवाहीमें भाग ले।

संगठित सभाओंमें उसकी कार्य-समिति या स्वागत समिति आदिके द्वारा आगामी अधिवेशनके लिये सभापतिका निर्वाचन पहिले ही कर लिया जाता है। ऐसी दशामें प्रायः एक भूल हो जाती है। वह यह कि सभा, नाम चुनते ही उसकी सूचना पत्रोंमें प्रकाशित करा देती है। उसके बाद यदि वह व्यक्ति किसी कारणसे सभापतित्व स्वीकार नहीं करता तो दूसरेकी तलाश की जाती है। इस प्रकार कभी-कभी तो दो-दो तीन-तीन नाम निकल जानेके बाद निर्वाचन निश्चित होता है। यह अवस्था अनुचित है। इससे तो कभी कभी स्वाभिमानी व्यक्तियोंमें यह भाव पैदा हो जाता है कि जब किसीने नहीं (अथवा कमसे कम इतने लोगोंने नहीं) स्वीकार किया तब मेरे पास आये हैं, अतः वे भी सभापति बननेसे इन्कार कर देते हैं। इसलिये अच्छा यही है

कि सभापतिका निर्णय करनेके बाद पहिले उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली जाय फिर उसकी सूचना पत्रोंमें प्रकाशित करवायी जाय, पहिले नहीं ।

सभापतिके निर्वाचनके सम्बन्धमें ये ही विशेष बातें हैं । अन्य कुछ बातें प्रथम अध्यायमें प्रसंगवश आ गयी हैं तथा कुछ आगे सभापतिके सम्बन्धमें लिखे गये स्थलोंपर आवेंगी अतः उनके यहां दोहरानेकी आवश्यकता नहीं है ।

सभापतिके निर्वाचनतककी कार्यवाही सभाके पहिलेकी कार्यवाही मानी जाती है । सभापतिके आसन ग्रहण करनेके पश्चात् सभाका वास्तविक कार्य आरम्भ हो जाता है ।

सभाका वास्तविक कार्य आरम्भ होनेके पहिले इतना और कर लेना चाहिये कि सभामें जो प्रस्ताव, संशोधन आदि उपस्थित करने हों उनकी नकलें, समितियोंकी रिपोर्टें, सभापति आदिके भाषण, कार्यक्रमके परचे तथा ऐसे अन्य कागजात जिनसे सभामें विचारार्थ उपस्थित होनेवाले विषयोंका ज्ञान होता है, पहिलेहीसे सब सदस्योंको बांट दिये जायं । इससे सबसे बड़ा लाभ तो यह होगा कि प्रत्येक सभासदको उन विषयोंपर सोच-विचार करनेका मौका मिल जायगा, इसके अतिरिक्त सभाकी कार्यवाहीके समय बांटनेसे जो गड़बड़ी मचती वह भी बच जायगी ।

— ——

प्रारम्भिक कार्यवाही

मङ्गलाचरण—सभापतिके आसन ग्रहण करनेके पश्चात् सभाकी वास्तविक कार्यवाही आरम्भ मानी जाती है। इस कार्यवाहीके आरम्भमें अपने यहां मङ्गलाचरणकी एक प्रथा-सी पड़ गयी है। यह केवल प्रथा ही है नियम नहीं और इस प्रथाका पालन भी विशेषतया तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें अथवा संगठित सभाओंके वार्षिक अधिवेशनोंमें होता है, सर्वत्र नहीं। इस प्रथाका सभाकी नियमितता या अनियमिततासे कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः यह संयोजकोंकी सुविधा और इच्छा पर निर्भर करता है कि वे इसका प्रबन्ध करें अथवा न करें।

कार्यक्रम—सभापतिके आसन ग्रहण करनेके पश्चात् सबसे पहिले कार्यक्रम (Agenda) पत्र उनके सामने उपस्थित किया जाता है। कार्यक्रम,

सूचनाके साथ, उन सदस्योंके पास भी भेजना चाहिए जिन्हें सभामें उपस्थित होनेके लिए निमन्त्रित किया जाता है।

कार्यक्रममें साधारणतया निम्नलिखित बातें रहती हैं।—

१—सभापतिका निर्वाचन (यद्यपि यह काम वास्तविक सभाके पहिलेका है)

२—गत बैठककी कार्यवाहीकी स्वीकृति।

३—पत्र व्यवहार।

४—कमेटीकी अथवा पदाधिकारियोंकी रिपोर्ट।

५—अर्थ सम्बन्धी बातें।

६—और कोई आवश्यक कार्य जिसकी स्पष्ट और उपयुक्त सूचना दी जा चुकी है।

७—प्रस्ताव।

८—विविध।

कार्यक्रम स्पष्ट और साफ होना चाहिए। उसमें भ्रमकी कोई गुञ्जाइश न रहनी चाहिए। विषयोंका उल्लेख संक्षिप्त और साथ ही स्पष्ट रूपसे होना चाहिये। जिससे कार्यक्रमको पढ़कर उपस्थित जनसमुदाय यह समझ ले कि किन-किन बातोंपर विचार किया जायगा उनपर कौन-कौन लोग बोलेंगे, तथा अन्य क्या कार्यवाही होगी। जहांतक सम्भव हो कार्यक्रमके परचे छपवाकरके बँटवा देना चाहिए। उससे उपस्थित लोगोंको विचारणीय विषयोंपर सोचने और अपनी राय कायम करनेका मौका मिल जायगा। यदि अच्छे ढङ्गसे कार्य-क्रम लिखा गया हो तो उससे समयकी बहुत बचत हो सकती है और सभा-पतिसे पूछे जानेवाले अनेक प्रश्न टल सकते हैं। उससे सभाकी विचार धारा

(Sense) का भी पता चल सकता है और पारस्परिक वाद-विवादमे अनर्गल बातोंका कथन बहुत कुछ घट सकता है।

जहांतक सम्भव हो कार्यक्रम सभापतिकी राय लेकर बनाना चाहिए और काम हो जानेके बाद उसे निश्चित रूपसे सम्भालकर रखना चाहिए ताकि किसी समय किसी बातका अनुसन्धान करते समय उससे सहायता मिल सके। परन्तु कार्यक्रम, कार्य-विवरण (minute) का विषय नहीं है और उसके साथ शामिल नहीं किया जा सकता।

साधारणतया कार्यक्रम-पत्रपर जिन विषयोंका उल्लेख रहता है उन्हींपर सभामें विचार किया जाता है, परन्तु यदि कोई सदस्य उन विषयोंके अतिरिक्त किसी विषयको उपस्थित करना चाहता है तो, अगर सभाके पहिले नहीं तो कमसे कम कार्यवाही आरम्भ होनेके अवसरपर तो अवश्य ही, उस विषयकी सूचना सभापतिको देनी चाहिए। इस दशामें यदि सभापति देखेगा कि यह विषय नियमानुसार उक्त सभामें उपस्थित किया जा सकता है तो उसके उपस्थित करनेकी आज्ञा देगा अन्यथा नहीं।

कार्यक्रम इतना आवश्यक विषय है कि विशेष महत्वपूर्ण अवसरोंपर उसको बनानेके लिए कमेटियां नियुक्त की जाती हैं।

सूचना पाठ——कार्यक्रम सूचक-पत्र उपस्थित कर चूकनेके बाद कहीं-कहीं सूचना पढ़नेका नियम है। परन्तु यह नियम एक प्रकारसे अनावश्यक-सा प्रतीत होता है। सूचना सबको मिल ही चुकी होती है। अगर किसीको उसके सम्बन्धमें कोई आपत्ति करनी है तो वह यथा समय कर ही सकता है। हां, यदि वह सभासद सूचना पढ़नेके लिए कहे तो पढ़ना आवश्यक हो जाता है। परन्तु ऐसे उसका पढ़ना कोई विशेष

अर्थ नहीं रखता। फिर भी यदि कोई इस नियमका पालन करना ही चाहे तो कर सकता है। कहीं-कहीं सूचनाका पाठ गत मीटिंगकी कार्यवाही स्वीकृत होनेके बाद होता है। क्रमका यह भेद विशेष ध्यान देने योग्य नहीं है। अभिप्राय केवल यह है कि उस दिनका वास्तविक कार्य आरम्भ होनेके पहिले इसका पाठ हो जाय। यह सभापतिके आसन ग्रहणके पश्चात् (पहिले नहीं, क्योंकि उस समय तक तो कोई ऐसा व्यक्ति ही नहीं माना जाता जो सूचनाकी नियमितता या नियम विरुद्धताके सम्बन्धमें निर्णय दे सके।) और पत्र व्यवहार आदि पर विचार करने अथवा उस दिनके अन्य विषयोंपर विचार करनेके पहिले हो जाना चाहिए। अतः प्रत्येक सभा अपनी सुविधाके अनुसार क्रम अलग-अलग रख सकती है। फिर भी गत बैठककी कार्यवाही स्वीकृत होनेके पहिले इसका पाठ अधिक समीचीन मालूम होता है। क्योंकि यदि सूचना अनियमित हुई और उसके आधार पर सभा नियमित न मानी गयी तो उस अनियमित सभा द्वारा स्वीकृत गत मीटिंगकी कार्यवाही भी कहां तक शुद्ध मानी जायगी, यह विचारणीय है।

गत मीटिंग का कार्य-विवरण—तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें तो प्रत्येक सभा अलग और स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है इसलिए उसकी कोई 'गत बैठक' होती ही नहीं और इसी लिए उसमें गत मीटिंगके कार्य-विवरणके पाठ और उसकी स्वीकृति के लिए भी कोई व्यवस्था नहीं होती। परन्तु सङ्गठित सभाओंमें बरावर काम होता रहता है और एक बैठकके कामका सम्बन्ध दूसरी बैठकसे रहता है। साथ ही उसके निर्णयका प्रभाव उस सङ्गठित संस्था पर समष्टि रूपसे पड़ता हैं, इसलिए संगठित सभाओंमें उसके पाठ और उसकी स्वीकृतिकी आवश्यकता पड़ जाती है।

कार्य-विवरण दो प्रकारका होता है, एकको संक्षिप्त कार्य-विवरण और दूसरेको विस्तृत कार्य-विवरण कहा जा सकता है। अंग्रेजीमें इनके नाम Minute और Report हैं। संक्षिप्त कार्य-विवरण (Minute) में केवल उन बातोंका उल्लेख होता है, जो सभामें स्वीकृत होती हैं अथवा घटित होती हैं। अर्थात् उनमें केवल कार्योंका उल्लेख होता है। विस्तृत कार्य-विवरण (Report) में सभामें होनेवाले कार्योंके साथ-साथ इस बातका उल्लेख भी होता है कि किस प्रश्नपर अथवा बातपर किस व्यक्तिने क्या-क्या कहा। यही दोनोंका अन्तर है। अन्य बातोंमें तो दोनों समान होते ही हैं। जब कि संक्षिप्त कार्य-विवरण यह सूचित करता है कि क्या हुआ था, तब विस्तृत कार्य-विवरण यह भी बताता है कि क्या कहा गया था।

संक्षिप्त कार्य-विवरण जितना हो सके उतना संक्षिप्त होना चाहिये। परन्तु साथ ही इस बातका ध्यान भी रखना चाहिये कि सभामें होनेवाली सब बातें ठीक-ठीक इस ढंगसे आ गयी हों, जिससे ऐसे सभासद भी जो उस बैठकमें उपस्थित नहीं थे, उन्हें भलीभांति समझ सकें। विवरणमें सत्य घटनाओंका उल्लेख हो, वे निष्पक्ष भावसे लिखी गयी हों, उनमें स्पष्टता हो, भ्रम होनेकी आशंका न हो आदि बातोंका ध्यान तो लेखकको रखना ही चाहिये।

साधारणतया संक्षिप्त विवरणमें निम्नलिखित बातें आ जानी चाहियेः—

१ कैसी बैठक थी—साधारण, आवश्यक, स्थगित आदि।

२ समय।

३ स्थान।

४ कितने और कौन-कौनसे सदस्य उपस्थित थे।

५ किसने सभापतिका आसन ग्रहण किया। (स्थायी सभापतिकी उप-

स्थितिमें इसके उल्लेखकी उपेक्षा की जा सकती है। यद्यपि वह ठीक नहीं है।

६ अन्य कार्योंका विवरण—

(क) गत मीटिंगकी कार्यवाही स्वीकृत हुई ?

(ख) आय-व्ययका ब्यौरा अथवा अन्य आर्थिक प्रश्नोंपर क्या निर्णय हुआ ? इनका पूरा-पूरा वर्णन आवश्यक होता है।

(ग) प्रस्ताव कौन-कौनसे स्वीकृत हुए ? (इनका अक्षरशः उल्लेख होना चाहिये। जो प्रस्ताव अस्वीकृत हो गये हों, उनके उल्लेखकी साधारणतया आवश्यकता नहीं होती। परन्तु विशेष महत्वपूर्ण अव-सरोंपर उनका उल्लेख भी अच्छा होता है। कभी-कभी प्रस्तावकोंके नाम भी दे दिये जाते हैं। परन्तु समर्थकों आदिके नहीं।)

(घ) उपसमितियोंकी रिपोर्टें—रिपोर्टें हू-ब-हू उसी रूपमें होनी चाहिये, जिस रूपमें वे समितियोंद्वारा उपस्थित की गयी हैं। साथ ही उनमें इस बातका उल्लेख भी होना चाहिये कि किन स्थानोंमें संशोधन किया गया।

(ङ) कर्मचारियोंकी नियुक्ति, वेतन-वृद्धि, अधिकार और कर्तव्य तथा अन्य आदेशों आदिका विवरण, आदि।

७ समाप्ति—(सभा विसर्जित की गयी, स्थगित की गयी—स्थगित की गयी तो कबके लिये आदि बातोंका उल्लेख)

यदि उपरोक्त सब बातें हों तो कार्य-विवरण पर्याप्त और उपयुक्त माना जाता है। कभी-कभी ऐसी बातें भी सभामें उपस्थित होती हैं, जिनका उल्लेख साधारण रीतिके अनुसार कार्य-विवरणमें किया जाने योग्य नहीं होता। ऐसे

अवसरोंपर यदि सभासद यह कहें कि यह बात भी विवरणमें सम्मिलित कर ली जाय तो फिर उसका उल्लेख आवश्यक हो जाता है। इस प्रकारका उपयुक्त और पर्याप्त कार्य-विवरण लिखकर मन्त्री उसपर अपने हस्ताक्षर (प्रायः दाहिनी ओर) कर देता है। इसके बाद वह आगामी मीटिंगमें स्वीकृतिके लिये उपस्थित किया जाता है। और जब किसीको उसके सम्बन्धमें कोई आपत्ति नहीं होती, तब वह सभाद्वारा स्वीकृत हो जाता है। उस समय सभापति भी (जिस सभामें कार्य-विवरण स्वीकृत होता है, उस सभाका सभापति,न कि उसका जिसका विवरण लिखा गया है) अपने हस्ताक्षर (प्रायः बांयी ओर) कर देता है। उसके बाद वह कार्य-विवरण स्वीकृत माना जाता है। कभी-कभी खासकर उस बैठक का कार्य-विवरण जिसमें कोई विशेष महत्वपूर्ण कार्यवाही नहीं होती, सुनाया नहीं जाता, ऐसे ही स्वीकृत कर लिया जाता है। विवरणकी स्वीकृतिके समय, उसके पढ़ चुकनेके बाद सभापति खड़ा होकर उपस्थित जनतासे कहता है:— "आपने विवरण सुन लिया, क्या वह स्वीकृत किया जाय ?" और फिर सभाकी स्वीकृति मिलनेपर वह अपने हस्ताक्षर कर देता है। जब विवरण पढ़ा नहीं जाता, तब वह कहता है—"क्या विवरण पढ़ा हुआ और स्वीकृत मान लिया जाय ?" यदि इसपर सभा अपनी स्वीकृति दे दे तो सभापति कार्य-विवरणपर अपने हस्ताक्षर कर देता है।

परन्तु जब कार्य-विवरणकी किसी बातपर उपस्थित सभासदोंमें किसीको कोई एतराज होता है, तब उस विषयपर वादविवाद हो सकता है। इस विवाद में न्यायतः उन्हीं लोगोंको भाग लेना चाहिये, जो उस बैठकमें, जिसका कि वह विवरण है, उपस्थित रहे हों, फिर भी प्रथा यह है कि सभी उपस्थित सभासद भाग लेते हैं। ऐसे वादविवादमें सभापतिको इस बातपर बहुत अधिक ध्यान

देना पड़ता है कि बहस करते समय लोग विषयसे बाहरकी बातें न कहने लगें। इस वादविवादके पश्चात् विवरणमें जो संशोधन किये जायं, वे यथा स्थान शुद्ध करके मन्त्रीद्वारा लिखे जाने चाहिये। मन्त्रीको संशोधित स्थानोंमें अपने हस्ताक्षर भी कर देना चाहिये। इसके बाद सभापति अपने हस्ताक्षर करेगा। हस्ताक्षर करनेवाले सभापति अथवा स्वीकृत करनेवाले सभासदोंके लिये यह आवश्यक नहीं होता कि वे उस बैठकमें उपस्थित ही रहे हों, जिसका वह विवरण है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सभाके कार्यके साथ-ही-साथ कार्य-विवरण लिख लिया जाता है और उसी समय सभाकी समाप्तिपर उपस्थित सभासदों द्वारा स्वीकृति प्राप्त कर सभापतिके हस्ताक्षर भी करा लिये जाते हैं। परन्तु यह प्रथा अधिक उपयुक्त नहीं प्रतीत होती, क्योंकि उसी समय सब बातोंका साफ-साफ उल्लेख करना असुविधाप्रद हो जाता है। इसी लिये इस प्रथाका प्रचार भी अधिक नहीं है। फिर भी इतना तो अवश्य होना ही चाहिये कि एक कागज अथवा कापीपर याददाश्तके लिये सब बातोंका उल्लेख कर लिया जाय।

कार्य-विवरण प्राय: सभाके मंत्रीद्वारा लिखा जाता है—कम-से-कम उसका दायित्व तो मन्त्रीपर रहता ही है। सभाद्वारा उसकी जो स्वीकृति होती है, उसका अर्थ केवल यह होता है कि सभा कार्य-विवरणको ठीक मानती है। परन्तु उसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि सभाने उन प्रस्तावों और कार्योंका समर्थन भी कर दिया जो उस कार्य-विवरणमें आये हैं। इसी लिये गत बैठकके कार्यों और विचारोंपर आगामी बैठकोंमें विरोधात्मक या निषेधात्मक प्रस्ताव भी आ सकते हैं।

पत्र-व्यवहार——गत मीटिंगके कार्य-विवरणके पढ़ चुकनेके बाद अथवा

तात्कालिक सार्वजनिक आदि ऐसी सभाओंमें, जिनमें गत मीटिंगकी कार्यवाही पढ़नेका कोई अवसर ही नहीं आता, कार्यक्रम-पत्र उपस्थित हो जानेके बाद सभामें आये हुए आवश्यक पत्र व्यवहारपर विचार किया जाता है। इन पत्रोंमें सभाकी अवस्थाके अनुसार किसीकी नियुक्ति, वेतन-वृद्धि किसीको दिये गये किसी विशेष आदेश, आदिका वर्णन रहता है। किसी वार्षिक या विशेष अधि-वेशनमें आनेवाले शुभ-सन्देश और सफलताकी कामनावाले पत्रों और तारोंके पढ़नेके लिये भी यही अवसरपर उपयुक्त होता है। हालांकि प्रथा कुछ ऐसी पड़ गयी है कि सभापतिके प्रारम्भिक भाषणके बाद ये सन्देशे पढ़े जाते हैं।

पत्र-व्यवहार इतने प्रकारका होता है कि उसका वर्णन करना असम्भव-सा है। उसका विचार और निर्णय उपस्थित जनसमूहके विवेकपर निर्भर करता है।

प्रश्न—इतनी कार्यवाही समाप्त हो जानेके बाद कुछ समय सदस्योंको इसलिये मिलता है कि वे किसी विषयपर कुछ प्रश्न पूछना चाहें तो पूछ सकें। यह अवसर विशेष रूपसे धारा सभाओं, व्यवस्थापिका सभाओं, म्युनिसिपल बोर्डों तथा सामान्यतः संगठित सभाओंमें दिया जाता है। तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें इसके लिये स्थान नहीं होता। जिन सभाओंमें प्रश्न पूछनेका नियम है, उन सभाओंमें पूछे जानेवाले प्रश्नकी सूचना कुछ समय पहिलेसे सभापति या मंत्री या क्लार्क आदिके पास भेज देनी होती है। इसके लिये कोई सर्व-मान्य निश्चित या निर्धारित नियम नहीं है कि किस प्रश्नकी सूचना कितने समय पूर्व दी जानी चाहिये। प्रत्येक सभा अपने लिये अवस्थाके अनुरूप अलग अलग अवधियाँ निर्धारित करती है। ऐसा भी हो सकता है कि पूर्व सूचना दिये बिना ही कोई प्रश्न सभापतिकी आज्ञा प्राप्त कर पूछा जाय। सभापतिको

इस प्रकारके प्रश्नोंको पूछनेकी स्वीकृति देने अथवा अस्वीकार कर देनेका पूर्ण अधिकार होता है।

प्रश्नोंके विषय अनेक होते हैं। किसी स्थानपर कोई विशेष घटना घटी हो, किसी पदाधिकारी या कर्मचारीने कोई विशेष बात कर डाली हो, किसी पत्र-व्यवहारमें कोई विशेष बात आ गयी हो, आदि अनेक विषयोंको लेकर प्रश्न किये जा सकते हैं। परन्तु इस सम्बन्धमें यह ध्यान रखनेकी आवश्यकता होती है कि प्रश्नोंमें, यदि अनिवार्य न हो तो, किसीके व्यक्तिगत नाम न आने पावें, प्रश्न केवल प्रश्नके रूपमें हो, उसमें प्रमाण, युक्तियां, अन्दाजा, निन्दात्मक और व्यङ्गात्मक वाक्य आदि न हों; क्योंकि उससे पूछे जानेवाले विषयपर आलोचना हो जाती है, जो नियम विरुद्ध है। प्रश्नोंमें आलोचनाका भाव न होना चाहिए। प्रश्नोंमें एक बातकी ओर और भी ध्यान देना चाहिए। वह यह कि किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें प्रश्न करते हुए केवल उन्हीं आचरणोंके आधारपर प्रश्न करना चाहिए जिनका रूप सार्वजनिक हो। किसीके निजी जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंके सम्बन्धमें प्रश्न करना अशिष्ट और अनुचित है। ऐसे प्रश्न भी नहीं पूछे जा सकते जिनके उत्तरसे सभाका या सरकारका किसी महत्वपूर्ण विषय या सिद्धान्तपर मत स्थिर होता हो। ऐसे प्रश्न प्रस्ताव द्वारा ही उपस्थित किये जाने चाहिए।

प्रश्नोंको उपस्थित करनेके लिए सभापति उसी क्रमसे आज्ञा देता है जिस क्रमसे उसके पास उनकी सूचना पहुंचती है। जो प्रश्न जितना पहिले सूचित किया जाता है उसे पेश करनेकी उतनी ही पहिले आज्ञा मिलती है। परन्तु यदि सभापति उचित समझे तो क्रम बदल भी सकता है। फिर भी इतना तो निश्चय ही है कि प्रश्न सभाकी वास्तविक कार्यवाही आरम्भ होनेके पहिले ही

पूछ लिये जाने चाहिए, बादमें नहीं। कौंसिल, एसैम्बली आदि व्यवस्थापक सभाओंमें नित्यकी कार्यवाही आरम्भ होनेके पूर्व सभासदोंकी आवश्यक उपस्थिति हो जानेपर पहिले ही घंटेमें प्रश्न पूछनेकी प्रथाका पालन किया जाता है।

यदि किसी प्रश्नकर्त्ताने कोई प्रश्न पूछनेकी सूचना दी हो और उसके बाद वह न पूछना चाहता हो, तो वह उसे वापस ले सकता है। उस दशामें यदि कोई अन्य सदस्य उस प्रश्नको पूछना चाहे तो पूछ सकता है। इसी प्रकार यदि पूर्व सूचना देनेवाला प्रश्नकर्त्ता किसी कारण वश अनुपस्थित हो तो भी कोई अन्य सदस्य यदि आवश्यक समझे तो वह प्रश्न पूछ सकता है और उसका उत्तर देनेके लिए सभाके अधिकारीगण वाध्य होंगे। कभी-कभी प्रश्नोंके ऐसे उत्तर दिये जाते हैं, जिनसे प्रश्नकर्त्ता जिस स्थितिको स्पष्ट करना चाहता है वह स्पष्ट नहीं होती। ऐसी अवस्थाओंमें प्रश्नकर्त्ता अथवा अन्य सदस्यको यह अधिकार होता है कि विषयको अधिक स्पष्ट करनेके लिए वह तत्क्षण उसी सिलसिलेमें अन्य प्रश्न पूछे। इन प्रश्नोंको अतिरिक्त प्रश्न (Supplimentary Questions) कहते है। इनके लिए पूर्व सूचना देना आवश्यक नहीं होता। परन्तु अतिरिक्त प्रश्नोंमें भी मूल प्रश्नोंकी भांति शिष्टाचारके सब नियम पालन तो करने ही पड़ते हैं। प्रश्नोंके सम्बन्धमें साधारण नियम यह है कि उनपर वाद-विवाद न हो, परन्तु विशेष अवस्थाओंमें उनपर विवाद भी हो सकता है। फिर भी इस नियमका पालन नहीं किया जाता।

सभापतिका भाषण—इसके बाद सभापति अपना प्रारम्भिक भाषण देता है। इस अवसरपर शिष्टाचारके लिए सभापति अपने निर्वाचकोंको

धन्यवाद भी देता है। यह प्रथा अब धीरे-धीरे कम हो रही है। भारतीय राष्ट्रीय महासभा के गत कुछ अधिवेशनोंके सभापतियोंने भी इसकी उपेक्षा की है। यह विषय उतना आवश्यक है भी नहीं। अपने प्रारम्भिक भाषणमें सभापति कृतज्ञता ज्ञापनके अतिरिक्त उस विषयपर अपने विचार व्यक्त करता है जिस विषयके लिए सभा नियोजित कीजाती है। यह बात धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि संगठित सभाओंमें अधिक अनुकरण की जाती है। इन सभाओंमें प्रारम्भिक भाषणके बाद सभापतिको एक बार फिर भाषण देनेका अवसर मिलता है। जिसे अन्तिम भाषण कहते हैं। अन्तिम भाषणमें सभापति सभाकी कार्यवाही पर भी अपने विचार व्यक्त करता है।

परन्तु तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें सभापतिके दो बार भाषण देनेका नियम नहीं है। इसलिए सभापति प्रारम्भमें भाषण नहीं देते। सभाके कार्यकी समाप्ति पर ही भाषण देते हैं। फिर भी यह केवल प्रथा है, नियम नहीं है। इसलिए सभापति जिस समय उचित समझे उस समय भाषण दे सकता है। परन्तु वादविवाद सभाओंमें तो उसे निश्चित रूपसे अन्तमें ही भाषण देनेका नियम है। वह भी जब वादविवादके विषयपर वोट लिये जा चुके हों और उसका निर्णय किया जा चुका हो तब, बीचमें नहीं। यही नियम सभापतिको संगठित सभाओंमें भी प्रस्तावोंके वादविवादके अवसरपर पालन करना पड़ता है। जबतक किसी प्रस्तावपर निर्णय न दिया जा चुका हो तबतक प्रस्ताव पेश हो जानेके बाद सभापति अपना मत प्रकाश नहीं कर सकता।

रिपोर्टोंकी स्वीकृति—सभापतिके प्रारम्भिक भाषणके बाद सभाकी कार्यवाही कुछ आगे बढ़ चुकी होती है। उस दशामें उप-सभापतियोंकी

रिपोर्टोंपर पहिले विचार किया जाता है। जिस कामके लिये जो उप-समिति बनी थी, उसके सम्बन्धमें क्या बातें लिखी हैं, क्या अनुसन्धान किये हैं, किन बातोंकी सिफ़ारिशें की हैं आदि बातोंपर सभामें विचार किया जाता है।

इनके पेश करनेका नियम यह है कि अवसर आनेपर सभापति उप-समितिकी रिपोर्टें पेश करनेका आदेश देता है। उस समय उस उप-समितिकी रिपोर्ट पेश करनेवाला सदस्य (यह सामान्यतः उस समितिका अध्यक्ष होता है) उठकर रिपोर्ट सुनाता है और सुना चुकनेके बाद सभापतिको, मन्त्रीको अथवा अन्य किसी अधिकारी व्यक्तिको दे देता है। परन्तु यदि सभापति रिपोर्ट पेश करनेका आदेश देना भूल जाय या न देना चाहे और रिपोर्ट तैयार हो, जिसे उप-समिति पेश करना चाहती हो, तो उसके अध्यक्षको चाहिए कि वह उस समय, जब सभाके सामने कोई प्रश्न न छिड़ा हो, उठकर सभापतिका ध्यान आकृष्ट करते हुए यह कहे कि रिपोर्ट तैयार है। उस समय सभापतिका यह कर्तव्य होता है कि सभासे यह पूछे कि क्या रिपोर्ट उपस्थित की जाय? यदि सभा सम्मति दे दे तब तो उसी समय अन्यथा जब सभाका बहुमत निश्चय करे उस समय रिपोर्ट पेश करनेका आदेश सभापति उप-समितिके अध्यक्षको दे। कभी-कभी रिपोर्टके पढ़ चुकनेके बाद यह प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है कि रिपोर्ट 'पेश' की जाय, यह बड़ी गल्ती है। कभी-कभी यह रिपोर्ट 'पेश' करनेके लिए प्रस्ताव करनेके समय प्रस्ताव किया जाता है कि रिपोर्ट 'स्वीकार' की जाय। यद्यपि इससे प्रस्तावकका तात्पर्य केवल यह होता है कि उसका पेश करना स्वीकार किया जाय तथापि इसका अर्थ यह हो जाता है कि रिपोर्टमें कही गयी बातें स्वीकारकी जायं। यह बात गलतके साथ भयंकर भी है।

रिपोर्ट स्वीकार करनेके सम्बन्धमें रिपोर्टमें कही गयी बातोंके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रथाएं काममें लायी जाती हैं। यदि रिपोर्टमें केवल किसी बातके अनुसंधानकी बात हुई, अथवा किसी विशेष विषयपर विशेषज्ञोंकी उप-समिति बनाकर उसकी राय मांगी गयी हो और वह राय रिपोर्टमें हो अथवा कोई ऐसा ही अन्य विषय हो जिसमें मतभेदकी गुञ्जाइश न हो तब तो रिपोर्ट सुनाकर ही स्वीकृत समझी जाती है, परन्तु जब किसी ऐसे विषय पर रिपोर्ट दी जाती है जिसमें मतभेदकी गुञ्जाइश हो तब उसे स्वीकार करानेके लिए बाकायदा प्रस्ताव रखना पड़ता है और उस प्रस्तावके बहुमत द्वारा पास हो जानेपर ही वह स्वीकृत मानी जाती है। आर्थिक आय-व्यय आदिके सम्बन्धमें यदि समिति कोई रिपोर्ट देती हो तो वह रिपोर्ट आडीटर (हिसाब परीक्षक) के पास स्वीकृतिके लिए भेज दी जाती है। और यदि वह स्वीकार करले तो वह रिपोर्ट सभा द्वारा भी स्वीकृत समझी जाती है।

जब रिपोर्ट सभामें स्वीकृतिके लिये पेश कर दी जाती है, तब सभासदोंको यह अधिकार होता है कि वे उस रिपोर्टमें जहां-जहां संशोधन करना चाहे वहां-वहां संशोधन कनेके प्रस्ताव पेश करें और उनपर नियमित वाद-विवाद हो और उसके बाद वह संशोधित रूपमें स्वीकार की जाय।

आर्थिक प्रश्न—समितियोंकी रिपोर्टोंके बाद और कभी-कभी उनके पहले भी आर्थिक समस्याओंपर विचार कर लिया जाता है। इन समस्याओंमें आय-व्ययका विवरण, आगामी वर्षके लिये बजट, आदि विषय सम्मिलित रहते हैं। इनके सम्बन्धमें जो भूतकालकी बातें हैं, उनके लिये तो हिसाब-परीक्षक द्वारा जांचा हुआ हिसाब-किताब मन्त्री या कोई अन्य अधिकारी व्यक्ति पेश

करता, है और जो खर्च आदि भविष्यमें होनेवाले हैं, उनका आनुमानिक विवरण मन्त्री बिना किसीसे जांच कराये ही उपस्थित कर सकता है। इन दोनों विवरणोंमें सभाके सभासदोंको विचार करने और आलोचना करनेका पूर्ण अधिकार होता है। यदि किसी मदमें खर्च अधिक हो गया हो, या किसीमें आवश्यकतासे कम खर्च किया गया हो, जिसके कारण काममें बाधा पड़ी हो,अथवा अनुमान पत्रमें खर्चका अनुमान अधिक किया गया हो, या धनका विभिन्न मदोंमें विभाजन ठीक ढंगसे न किया गया हो, तो इन सब अवस्थाओंमें सभासद पदाधिकारियोंकी आलोचना कर सकते हैं और यदि विषय अधिक गम्भीर हो गया हो, गलतियां बड़ी भयङ्कर हो गयी हों, अथवा जान-बूझकर खर्चमें बेईमानी की गयी हो, तो सभासदोंको यह अधिकार होता है कि वे उस पदाधिकारीपर अविश्वासका प्रस्ताव लावें तथा आवश्यकता समझ पड़े तो उनपर मामला-मुकदमा भी चलावें।

अन्य विशेष विषय—सभाकी मुख्य कार्यवाही—प्रस्तावादि पेश होनेके पहले अब केवल एक ही विषय ऐसा रह जाता है, जो प्रारम्भिक कार्यवाहीमें आ सकता है—वह है कोई विशेष विषय, जिसकी सूचना सभाकी सूचनाके साथ दी गयी हो। इन विशेष विषयोंमें किसी रिक्त स्थानकी पूर्त्ति, किसी विशेष कर्मचारीकी नियुक्ति, किसीकी बर्खास्तगी, आदि अनेक प्रकारके विषय हो सकते हैं। परन्तु यह ध्यान रहे कि ये विषय हों ऐसे जिनकी सूचना सभाकी सूचनाके साथ अवश्य दी जा चुकी हो। जो विषय ऐसे होते हैं, जिनकी सूचना पहले नहीं दी जा चुकी, वे सभाकी कार्यवाहीके इस अव-सरपर नहीं आ सकते। उनका अवसर प्रस्तावादि मुख्य कार्य समाप्त हो जानेके बाद आता है।

इतनी प्रारम्भिक कार्यवाही हो चुकनेके बाद सभाका मुख्य विषय—प्रस्ताव आदि पेश किया जाता है और प्रस्तावोंके संशोधन, वाद-विवाद, निर्णय आदिके पश्चात् आवश्यकतानुसार सभापतिकी आज्ञासे अन्य विविध विषय उपस्थित किये जाते हैं, और उनपर विचार होता है। अन्तमें सभापतिको धन्यवाद दे सभा विसर्जित की जाती है।

वक्तृताधिकार

सभाका सबसे प्रधान कार्य प्रस्तावके रूपमें होता है। इसीलिये प्रस्ताव सभाका सबसे प्रधान और सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। प्रस्ताव कई प्रकारके होते हैं; जिनका वर्णन प्रसंगके अनुसार आगे किया जायगा। परन्तु प्रस्ताव उपस्थित करनेके पहले सभासदको बोलनेका अधिकार प्राप्त करना पड़ता है। यह अधिकार किसी प्रस्तावपर या सभामें उपस्थित किसी अन्य विषयपर भाषण देनेके समय भी प्राप्त करना पड़ता है। यहां उसी अधिकारकी चर्चा की जाती है।

बोलनेका अधिकार—(Obtaining the floor) प्रस्ताव पेश करनेको अथवा अन्य किसी विषयपर भाषण देनेकी इच्छा रखनेवाले सभासदको पहले सभापतिकी स्वीकृति लेनी पड़ती है। इसके प्राप्त करनेका नियम यह है

कि सभासद अपने स्थानपर खड़ा हो जाता है और सभापतिका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करनेका प्रयत्न करता है। यदि सभासदके खड़े होते ही सभापतिका ध्यान स्वतः आकृष्ट हो जाता है, तब तो कोई बात नहीं, अन्यथा सभासद सभापतिको सम्बोधित कर केवल यह कहता है 'श्रीमान् सभापति महोदय' अथवा 'माननीय सभापतिजी' या 'श्रीमती सभानेत्री महोदया,' आदि जैसी अवस्था हो। इससे सभापतिका ध्यान सभासदकी ओर आकृष्ट होगा और फिर वह उस सभासदका नाम पुकार कर उसे बोलनेका अधिकार प्रदान करेगा। साधारणतः नियम यह है कि बोलनेका अधिकार प्रदान करते हुए सभापति इस प्रकार कहे:—'अब श्रीमात् देवदत्तजी अपने विचार व्यक्त करेंगे।' परन्तु रिवाज ऐसा है कि सभापति बोलनेवालेका केवल नाम पुकारता है। यह बात छोटी-छोटी सभाओंमें, जहां प्रायः सब सभासद एक दूसरेसे परिचित होते हैं, बहुत आसान होती है। सभासदके खड़े होते ही सभापति उसे पहचान लेता है और उस समय तो साधारणतः सभापति नाम पुकारता भी नहीं, केवल सर हिलाकर स्वीकृति दे देता है, और उतना ही पर्याप्त हो जाता है। परन्तु बड़ी-बड़ी सभाओंमें जहां उपस्थित सभासदोंको सभापति पहचानता भी नहीं है; वहां नियम यह है कि वक्तृताधिकारका इच्छुक सभासद खड़ा होने और सभापतिका ध्यान आकृष्ट करनेपर अपना नाम भी बताता है, जिससे कि सभापति उसे पुकार कर बोलनेका अधिकार दे सके।

बोलनेका अधिकार प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले व्यक्ति जब एकसे अधिक होते हैं, तब साधारण नियम यह है कि जो व्यक्ति पहले उठता है उसको पहले बोलनेका मौका दिया जाता है और जो बादमें उठता है, उसे बादमें। इस नियमसे लाभ उठानेके लिये कभी-कभी कोई सदस्य उसी समय

खड़ा हो जाता है, जब एक सदस्य सभामें भाषण दे रहा होता है। परन्तु जिस समय सभामें कोई भाषण दे रहा हो, उस समय बोलनेका अधिकार प्राप्त करनेकी इच्छा और आशासे खड़ा होना अनियमित और अनुचित है। अतः जो सदस्य इस नियमका उल्लङ्घन कर किसीके बोलनेके समयसे ही खड़ा हो, उसे पहले अवसर प्राप्त करनेका कोई अधिकार नहीं होता। वास्तवमें पूर्व वक्ताका भाषण समाप्त हो जानेके बाद जो सदस्य सबसे पहले खड़ा होता है, वही सबसे पहले बोलनेका अधिकारी होता है।

परन्तु यह नियम भी सदा प्रयोगमें नहीं लाया जा सकता। कभी-कभी सभामें ऐसे अवसर भी आते हैं, जब पीछे उठनेवालेको ही पहले बोलनेका अवसर देना पड़ता है। यदि किसी समय कई व्यक्ति एक साथ बोलनेका अधिकार चाहते हों, तो उपरोक्त नियमके अतिरिक्त एक नियम यह भी है कि उन बोलनेवालोंका विषय जानकर सभापति उस व्यक्तिको बोलनेका मौका दे, जिसका विषय सभाके हितकी दृष्टिसे अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण हो; फिर चाहे वह व्यक्ति सबसे पीछे ही क्यों न खड़ा हुआ हो। इन सब बातोंके होते हुए यदि सभा चाहती हो कि सभापतिने जिसे बोलनेका अधिकार नहीं दिया, वह बोले; तो यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है कि अमुक व्यक्तिको बोलनेकी आज्ञा दी जाये। इसके निर्णयके अनुसार सभामें बोलनेका अधिकार उसको मिलेगा।

सभामें जिन अवस्थाओंमें लोग भाषण देनेकी आज्ञा चाहते हैं, उनके तीन भेद किये जा सकते है। १— जब कोई विवादास्पद विषय छिड़ा हुआ हो। २— जब कोई विवाद रहित विषय छिड़ा हुआ हो। और ३—जबकोई बिषय छिड़ा हुआ ही न हो। उन तीनों अवस्थाओंमें सभापति निम्नलिखित ढंगसे काम लेतेहैं:—

जब विवादास्पद विषय छिड़ा हुआ हो—इस दशामें उस सदस्य-को सबसे पहले बोलनेका अधिकार दिया जाता है, जिसके प्रस्तावपर छिड़ा हुआ विषय विचारार्थ उपस्थित किया गया हो। इस सम्बन्धमें यह बात ध्यान रखनेकी है कि यदि वह व्यक्ति पहले भाषण दे चुका है, तो दुबारा उसे बोलनेका अधिकार न होगा (उसे अन्तमें उत्तर देनेका अधिकार होता है, इसका उल्लेख अन्यत्र होगा)। जब किसी कमेटीकी रिपोर्टपर बहस हो रही हो, सबसे पहले रिपोर्ट पेश करनेवाले व्यक्तिको (यह जरूरी नहीं है कि वह मन्त्री या सभापति या अन्य पदाधिकारी ही हो।) जब किसी स्थगित प्रश्नके उठानेका (Take from the table) विषय छिड़ा हुआ हो, तब उस व्यक्तिको जो प्रस्ताव करता है कि स्थगित प्रश्न छेड़ा जाय और जब किसी प्रस्तावपर पुनर्विचार करनेका प्रश्न छिड़ा हुआ होता है तब उस व्यक्तिको जो प्रस्ताव करता है कि उस पहलेवाले प्रस्तावपर दुबारा विचार किया जाय, सबसे पहले बोलनेका अधिकार प्राप्त होता है। परन्तु किसी ऐसे सदस्यको जो छिड़े हुए विषयपर पहिले भाषण दे चुका है, दुबारा भाषण देनेका अधिकार उस समयतक नहीं प्राप्त हो सकता, जबतक कि सभामें अन्य सदस्य, जिन्हें सभा समय देना चाहती है, उस विषयपर भाषण देनेके इच्छुक हैं। सभाका हित इस बातसे होता है कि छिड़े हुए विषयपर पक्ष और विपक्ष दोनोंको बारी बारीसे बोलनेका अवसर दिया जाय इसलिये अनेक सदस्योंके एक साथ आवेदन करनेपर सभापतिको चाहिये कि वह उस व्यक्तिको पहिले अवसर दे जो पूर्व वक्ताके विरोधमें बोलना चाहता हो।

जब विवाद रहित विषय छिड़ा हो—इस दशामें, अविवादास्पद विषयके प्रस्तावको सबसे पहिले बोलनेका अवसर दिया जाय, यह आवश्यक

नहीं है। ऐसे विषयोंपर बोलनेवाले आवेदकोंमें से किसको पहिले और किसको बादमें अवसर दिया जाय, यह निर्णय विषयके महत्वके अनुसार सभापति अपनी विवेक बुद्धिसे देता है। इसमें सामान्यतः उन सिद्धान्तोंसे काम लिया जाता है, जिनका उल्लेख आगेके पैराग्राफोंमें आया है।

जब कोई विषय न छिड़ा हो—यह अवस्था दो प्रकारसे आ सकती है—एक तो सभाके प्रारम्भमें जब कोई विषय विचारार्थ उपस्थित ही न किया गया हो, और दूसरे उस समय जब सभामें एक विशेष विषयके सब प्रश्नोंपर विचार किया जा चुका हो, और प्रस्ताव स्वीकृत या अस्वीकृत किया जा चुका हो। इस अवस्थामें जो आवेदक खड़े होते हैं, उसमें से उस सदस्यको बोलनेका मौका पहिले दिया जाता है जो दूसरी प्रस्तावमाला पेश करना चाहता है। वास्तवमें जबतक सभामें पेश करनेके लिए सूचित की गयी प्रस्तावमालाओं पर विचार नहीं हो जाता, तबतक कोई अकेला प्रस्ताव नहीं लिया जाता। परन्तु यदि प्रस्तावमाला अथवा अकेला प्रस्ताव पेश हो और उस समय कोई व्यक्ति खड़ा होकर यह प्रस्ताव करे कि छिड़ा हुआ विषय रोक रखा जाय (should be laid on tabe) तो पहिले इसपर विचार होगा और प्रस्तावके स्थगित हो जानेपर यदि स्थगित करनेका प्रस्ताव रखनेवाला व्यक्ति बोलना चाहे तो सबसे पहिले उसे बोलनेका अवसर मिलेगा। इसका अर्थ यह है कि स्थगित करनेका प्रस्ताव रखनेवाला व्यक्ति किसी अन्य अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक विषयको पहिले छेड़ना चाहता है। अतः उसे उस अधिक आवश्यक विषयको छेड़नेका अवसर दिया जाना चाहिए। इसी प्रकार जब किसी प्रस्तावको पेश करनेके लिए कोई नियम स्थगित किया गया हो, तब उस आदमीको, जिसने नियम स्थगित करनेका प्रस्ताव रखा था, बोलनेका अधिकार इसलिए

प्राप्त होता है, ताकि वह उस प्रस्तावको पेश करे जिसके लिए नियम स्थगित किया गया था। इस अवस्थामें बोलनेका अधिकार उस समय भी प्राप्त होता है जब उसके पहिले कोई अन्य सदस्य अधिकार प्राप्तिकी आशासे खड़ा हो चुका हो। जब कोई व्यक्ति मतगणनापर फिरसे विचार करनेका प्रस्ताव यह कहकर पेश करे कि वह सम्बन्धित प्रस्तावका संशोधन करना चाहता है, तब यदि पुनर्विचारका प्रस्ताव स्वीकृत हो जाय, तो उसी मनुष्यको पहिले बोलनेका मौका दिया जायगा, जो संशोधन पेश करना चाहता है, और वह अपना संशोधन पेश करेगा।

जब यह अवस्था हो कि सभाके सामने कोई प्रश्न विचारार्थ उपस्थित न हो, और न कोई ऐसी प्रस्तावमाला छेड़ी जा चुकी हो, जिसपर विचार करना बाकी हो, तब यदि कोई सदस्य इसलिए बोलनेका अधिकार चाहे कि वह मतगणनापर पुनर्विचारका प्रस्ताव पेश करेगा, अथवा मतगणनाके पुनर्विचारके लिए पहिलेहीसे उपस्थित प्रस्तावको विचारार्थ उपस्थित करेगा अथवा—यदि युक्तिसंगत हो तो—रोका हुआ नया विषय उठाकर (Take from the table) विचारार्थ पेश करेगा तो उस व्यक्तिको अन्य सदस्योंसे, जो नया प्रस्ताव रखना चाहते हैं, पहिले बोलनेका मौका दिया जायगा। परन्तु इस दशामें शर्त यह है कि उसे स्पष्ट रूपसे यह कहना पड़ेगा कि वह अमुक कामके लिए बोलनेका अधिकार चाहता है। यदि उपरोक्त तीनों प्रकारके प्रस्ताव रखनेवाले एक साथ खड़े हुए हों, तो जिस क्रमसे ऊपर इन प्रस्तावोंका उल्लेख किया गया है, उसी क्रमसे उन्हें मौका दिया जायगा। यदि किसी कमेटीके निर्माणका प्रश्न छिड़ा हो, अथवा यदि किसी विषयको किसी कमेटीके सुपुर्द कर देनेका प्रश्न हो, तो जबतक उस समितिके सम्बन्धकी सब बातें—यह कि

कमेटीमें कितने सदस्य होंगे, किस प्रकार उसकी नियुक्ति होगी अथवा अन्य कोई आदेश जो सभा देना चाहती हो उसका उल्लेख—तय न हो जायं तबतक दूसरा कोई विषय नहीं उठाया जायगा। इस सम्बधमें यह नहीं है कि जिस आदमीने कमेटी बनाने अथवा कमेटीमें किसी विषयको पेश करनेका प्रस्ताव किया है, उसे उपरोक्त बातें पेश करनेके लिए पहिले मौका दिया जायगा। यदि उसे उक्त बातोंपर अपनी राय देनी हो तो यह उचित है कि कमेटीकी नियुक्तिके प्रस्तावके साथ सब बातें लिख दे।

यदि बोलनेका अधिकार प्रदान करनेके सम्बन्धमें दी गयी सभापतिकी आज्ञासे किसीको असन्तोष हो तो सभासदोंको यह अधिकार होता है कि वे उस निर्णयकी अपील करें और उसके बाद यदि सभापतिको ही अपने निर्णयपर कुछ सन्देह हो तो वह उसका निर्णय सभा द्वारा करा सकता है, और बहुमतके निर्णयके अनुसार सदस्यको बोलनेकी अनुमति दे सकता है। इस प्रकारकी अपील करनेवालेका एक समर्थक होना अनिवार्य है। तभी उसपर विचार हो सकेगा। परन्तु यदि अपीलके बाद भी सभापति ऐसा निर्णय दे जिससे सभाको सन्तोष न हो, तो सभाका कोई सदस्य बाकायदा प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है, कि अमुक सदस्यको बोलने दिया जाय और बहुमतके निर्णयके अनुसार सभापतिको आज्ञा देनी पड़ेगी। इस नियमका पालन जहांतक हो सके, बचाना चाहिए, क्योंकि इससे सभा और सभापतिमें वैमनस्य पैदा होता है। यदि किसी समय ऐसा प्रसंग आ जाय कि जिस आदमीको बोलनेका अधिकार दिया गया है, उसके मार्गमें वाधा डालनेके गुप्त अभिप्रायसे बीच-बीचमें प्रश्न पूछे जाने लगें, अथवा सभाको स्थगित करनेका प्रस्ताव लाया जाय, अथवा तात्कालिक विषय स्थगित करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया जाय, तो

सभापतिका यह कर्तव्य है, कि उस कुव्यवस्थासे वक्ताकी रक्षा करे और सभामें शान्ति और व्यवस्था स्थापित करे। यदि सभापति किसीको बोलनेकी अनुमति न दे तो वह सभामें साधारणतया बोल नहीं सकता। परन्तु यदि सभाकी सम्मति उसके पक्षमें हो तो वह बोल सकता है। जब कोई व्यक्ति बिना अधिकार प्राप्त किये हुए ही बोलने खड़ा हो गया हो, तब उसके बाद सभापतिकी आज्ञा चाहनेवाला वक्ता सभापतिकी आज्ञा पा सकता है, और पहिलेसे खड़े हुए व्यक्तिको बैठ जाना पड़ेगा।

एक व्यक्तिके वक्तृताधिकार प्राप्त करनेपर भी अन्य सदस्य बोल सकता है—जब कोई व्यक्ति वक्तृताधिकार प्राप्त कर चुका हो, तब साधारणतः कोई अन्य सदस्य अथवा स्वयं सभापति भी उसे बोलनेसे रोक नहीं सकता। परन्तु यदि कोई सदस्य (१) पुनर्विचारका प्रस्ताव पेश करना चाहे, (२) अनुशासनकी रक्षा (Point of order) के लिए कुछ कहना चाहे, (३) प्रस्तुत प्रश्नके बिचारपर एतराज करना चाहे, (४) उस दिनके कार्यक्रमके अनुसार विषयको क्रमके अनुसार उपस्थित करनेकी वात कहे (जब वह क्रमसे उपस्थित न किया गया हो), (५) अधिकारका प्रश्न (Question of prevelege) उपस्थित करे, (६) प्रश्नके भाग करनेकी मांग या प्रार्थना करे (जब प्रस्तावमें विभिन्न विषय आ गये हों) या (७) सभा सम्बन्धी कोई ऐसी पूछताछ या प्रार्थना करे, जिसके उत्तर देनेकी तुरन्त आवश्यकता हो, तो उसे बोलनेसे रोका जा सकता है। फिर भी यदि उस अधिकारप्राप्त सदस्यने अपना भाषण आरम्भ कर दिया हो, तब तो इन उपायोंसे भी वह नहीं रोका जा सकता। हां, यदि कोई ऐसी ही उग्र आवश्यकता आ पड़े तो बात दूसरी है। परन्तु इस प्रकारकी कार्यवाहीसे वक्ताका अधिकार छिन नहीं जाता, और न

बाधा डालनेवालेको बोलनेका अधिकार ही मिल जाता है। जब उपरोक्त सब प्रश्न हल हो जाते हैं, तब उसी वक्ताको बोलनेका अधिकार प्राप्त होता है जिसके बोलनेके पहिले उपरोक्त बाधाएं डाली गयी थीं। इसी प्रकार यदि किसी कमेटीकी रिपोर्ट पेश करनेवाला सदस्य पढ़नेके लिए रिपोर्ट मन्त्री या किसी कर्मचारीको दे दे तो इससे वह बोलनेका अपना अधिकार नहीं खो देता और रिपोर्टका वाचन समाप्त हो जानेपर उसे रिपोर्टकी स्वीकृतिका प्रस्ताव करनेका मौका मिलता है।

संक्षेपमें बोलनेका अवसर या अधिकार देनेके सम्बन्धमें ये नियम हैं। परन्तु इनके होते हुए भी बहुत कुछ निर्भर करता है, सभापतिके निर्णयपर ही। वास्तवमें बोलनेवालोंका क्रम निर्धारित करनेमें कुछ तो तर्कसे, कुछ बुद्धिमानीसे और बहुत कुछ उपस्थित जनताके मनोभावोंसे सहारा लेना पड़ता है। फिर भी नियम अपना पृथक् महत्व रखते हैं, और जब विधान और अनुशासनकी बात आ जाय, तब ये ही निर्णायक होते हैं।

प्रस्ताव

—**—

(विचार पद्धति)

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, प्रस्ताव सभाका सबसे प्रधान अंग है। इसलिये इस विषयमें समय समयपर ऐसे ऐसे प्रश्न उपस्थित हुए हैं और होते रहते हैं, जिनके कारण इस सम्बन्धके नियमोंमें बहुत अधिक जटिलता आ गयी है, और इतने अधिक नियमादि बन जानेपर भी निश्चय पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि अब इस सम्बन्धमें और किसी बातपर विचार करना शेष नहीं रहा। ऐसी दशामें इस विषयका ऐसा विवेचन या विवरण तो शायद सम्भव नहीं है जिसमें सब बातें आ जायं, तथापि इस विषयकी महत्ताके अनुरूप इसकी विस्तृत विवेचनाका प्रयत्न अवश्य किया जायगा।

प्रस्ताव पेश करना—प्रस्तावके सम्बन्धकी सबसे पहिली बात है, प्रस्ताव पेश करना। इसके लिए तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें यह आवश्यक होता है, कि जो सभासद प्रस्ताव पेश करना चाहे, वह शुद्ध और स्पष्ट शब्दोंमें अपना प्रस्ताव लिखकर सभापतिको दे दे। सभापति यह देखेगा कि जो प्रस्ताव उसे दिया गया है, वह एकत्रित सभाके उद्देश्योंके विरुद्ध तो नहीं है अथवा उसमें और कोई आपत्ति या अनियमकी बात तो नहीं है। यदि ये बातें हुईं, तब तो सभापति उसे पेश करनेकी आज्ञा न देगा; और यदि ये बातें न हुईं, तब वह उस प्रस्तावके प्रस्तावकको; जब उसे नियमानुसार बोलनेका अधिकार प्राप्त हो चुका होगा तब, आदेश देगा कि वह अपना प्रस्ताव पेश करे।

यह व्यवस्था तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंके लिये है। संगठित सभाओं लोकल बोर्डों, कौंसिलों आदिमें सभासदके लिये यह आवश्यक होता है कि वह अपना प्रस्ताव लिखकर मंत्री या सभापतिके पास एक नियत समयसे पूर्व भेज दे। उस समयके बाद भेजनेपर वह प्रस्ताव आगामी मीटिंगमें पेश न हो सकेगा। इस प्रकार समयपर भेजे हुए प्रस्तावपर मंत्री या सभापति विचार करेगा, और यदि उसे उचित समझ पड़ा तो पेश करनेकी अनुमति दे देगा। तब, मीटिंगके लिये जो सूचना प्रकाशित की जायगी, उसमें उस प्रस्तावका उल्लेख रहेगा।

संगठित सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, और धार्मिक आदि संस्थाओंके वार्षिक या विशेष अधिवेशनोंके अवसरोंपर प्रस्ताव सम्बन्धी निर्णयके लिये एक अलग कमेटी बना दी जाती है, जिसे विषय निर्वाचिनी समिति कहते हैं। अतः इन अधिवेशनोंमें प्रस्ताव पेश करने की इच्छा रखनेवाले

सदस्यके लिये यह आवश्यक होता है कि वह अपने प्रस्तावकी सूचना विषय निर्वाचिनी समितिको दे। समितिमें यदि मूल प्रस्तावक स्वयं, सदस्य न होनेके कारण अथवा किसी अन्य कारणसे, उपस्थित न भी हो सकेगा तो भी समिति उसे पढ़कर सुनावेगी और यदि उपस्थित सदस्योंमेंसे किसी अन्य सदस्यने पेश करनेकी बात कही तो वह पेश किया जा सकेगा। अन्यथा वह पेश न हो सकेगा। खुले अधिवेशनमें पेश होनेवाले प्रायः सब प्रस्ताव विषय निर्वाचिनी समितिमें स्वीकृत होकर आते हैं और साधारणतः नियम यह है कि जो प्रस्ताव विषय निर्वाचिनी समितिमें अस्वीकृत हो जाय, वह खुले अधि-वेशनमें उपस्थित नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि विषय निर्वाचिनी समिति में वह सदस्य जिसका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया है, यह कहे कि वह अपना प्रस्ताव खुले अधिवेशनमें रखना चाहता है, और विषय निर्वाचिनी समितिके उपस्थित सदस्य उसे स्वीकार कर लें तो वह विषय निर्वाचिनी द्वारा अस्वीकृत प्रस्ताव भी अधिवेशनमें पेशकर सकता है।

प्रस्ताव पेश करनेके सम्बन्धमें ये साधारण नियम हैं। साधारणतः इस व्यवस्थाके अतिरिक्त प्रस्ताव सभामें पेश नहीं किये जा सकते। परन्तु विशेष अवस्थाओंमें सभापतिको अधिकार होता है, कि वह यदि उचित और आव-श्यक समझे तो किसी ऐसे नये प्रस्तावको भी पेश करनेकी आज्ञा दे सकता है, जिसकी पहिलेसे सूचना नहीं मिली और जो उपरोक्त व्यवस्थाके अनुसार कार्य समिति या विषय निर्वाचिनी समिति द्वारा अथवा सभापति या मन्त्री द्वारा स्वीकृत होकर नहीं आये। यदि उन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें दी गई सभापतिकी आज्ञाके सम्बन्धमें किसीको असंतोष हो तो वह वक्तृताधिकारवाले अध्यायमें बताये गये ढंगसे (अपील आदि करके) उसका परिमार्जन कर सकता है।

ये व्यवस्थाएं और विधान साधारण प्रस्तावोंके सम्बन्धके हैं। कुछ विशेष प्रस्ताव ऐसे होते हैं, जिनमें पूर्व सूचनाकी आवश्यकता ही नहीं होती और जिन्हें उपयुक्त अवसरपर उपस्थित करनेका अधिकार प्रत्येक सदस्यको होता है। इन प्रस्तावोंकी तालिका और उनका विवेचन आगे प्रसंग वश किया जायगा। इस प्रकारके प्रस्तावोंमें विषय स्थगित करने, वादविवाद बन्द करनेवाले प्रस्ताव आदि आते हैं। इन प्रस्तावोंके अतिरिक्त उस समय भी प्रस्तावोंके लिये पूर्व सूचनाकी आवश्यकता नहीं होगी, जब प्रस्ताव ऐसे विषयपर उपस्थित किये जाते हैं, जिसपर विचार करनेके लिये ही सभा बुलायी गयी हो।

समर्थन——कोई प्रस्ताव उस समय तक नियमित और विचारके योग्य नहीं माना जाता, जबतक कि उसका समर्थन नहीं हो जाता। साधारण नियम यह है कि जब प्रस्तावक अपने प्रस्तावकी सूचना सभापतिको दे देता है, तब सभापति पूछता है कि इस प्रस्तावका कोई समर्थन करता है? और यदि कोई अधिकारी व्यक्ति उसका समर्थन करनेके लिये तैयार हो जाता है, तो वह उस प्रस्तावको नियमित रूपसे सभाके सामने उपस्थित करनेकी अनुमति देता है। परन्तु यदि उसका कोई समर्थक नहीं मिलता, तो वह प्रस्ताव चाहे भला हो या बुरा, लाभप्रद हो या हानिकारक, रद्द कर दिया जाता है। समर्थनका अर्थ यह है कि प्रस्तावमें जो विचार व्यक्त किये गये हैं, अथवा जिस कार्यका निर्देश किया गया है, उससे सभाका वह सदस्य सहमत है, जो समर्थन करता है। अतः जिस प्रस्तावका एक सदस्य भी समर्थन न करता हो, वह स्वभावतः अनुपयुक्त होता है, अथवा यह कि उसका अस्वीकृत हो जाना भी निश्चय ही है। ऐसी दशामें उसे पेश करनेकी आज्ञा देकर उसपर भाषण आदि दिलानेमें

समय खोकर सभाकी हानि क्यों की जाय। इसीलिये समर्थन विहीन प्रस्ताव रद्दकर दिये जाते हैं। परन्तु फिर भी कुछ प्रस्ताव ऐसे होते हैं जिनमें समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती। इनमें प्रस्ताव वापस लेने, किसी विषयपर विचार करनेपर एतराज करने आदिके प्रस्ताव आते हैं। इनका विशेष विवरण अन्यत्र किया जायगा।

कभी-कभी ऐसी परिस्थिति आती है कि प्रस्तावसे सहमत होते हुए भी सदस्यगण उसका समर्थन करनेके लिये खड़े नहीं होते। ऐसी अवस्थामें सभापति चाहे तो बिना समर्थनके भी प्रस्तावको विचारार्थ उपस्थित कर सकता है। परन्तु इस दशामें यदि कोई सदस्य वैधानिक आपत्ति (Point of order) उपस्थित करे तो सभापतिको नियमानुसार प्रस्तावका समर्थन अवश्य करवाना होगा। इसलिये जब किसी प्रस्तावका समर्थन अपने आप कोई न कर रहा हो, तब सभापतिके लिये यह अच्छा होता है कि वह सभासे पूछे—"क्या प्रस्तावका समर्थन हो चुका ?" इस प्रश्नसे कोई-न-कोई सदस्य अवश्य खड़ा होकर समर्थन कर देगा, और यदि इसके बाद भी उसका समर्थन न हो तो थोड़ी देरतक समर्थनकी प्रतीक्षा करके उस प्रस्तावको समर्थन-विहीन समझ कर सभापति दूसरी कार्यवाही आरम्भ कर सकता है।

समर्थन करनेमें सदस्य यह कहकर किसी प्रस्तावका समर्थन करते हैं कि "मैं अमुक प्रस्तावका समर्थन करता हूं।" इसके लिये उन्हें वक्तृताधिकार प्राप्त करनेकी आवश्यकता भी नहीं होती और छोटी-छोटी सभाओंमें तो इसके लिये उन्हें खड़े होनेकी भी जरूरत नहीं मानी जाती। किन्तु बड़ी सभाओंमें खड़े होकर बोलना ही आवश्यक और उचित होता है। और जब पहिलेहीसे कोई समर्थक न मिले तब खासकर बड़ी सभाओंमें समर्थककी खोज करते

समय सभापतिको वह प्रस्ताव भी पढ़कर सुनाना होता है, जिसके लिये समर्थककी आवश्यकता है।

संशोधन—प्रस्तावके उपस्थित हो जाने और समर्थन हो जानेके बाद ही वास्तवमें वह प्रस्ताव सभाके सामने विचारार्थ आ सकता है। परन्तु केवल इतना हो जानेके बाद ही इसपर वादविवाद नहीं छिड़ सकता। वादविवाद छेड़नेका अधिकार सभापतिको ही है। अतः जब किसी प्रस्तावका उपस्थितीकरण और समर्थन हो जाता है, तब सभापति उसे सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित करता है, उस समय वह यह कहता है कि अमुक प्रस्ताव आपके सामने है। जो सज्जन इसके पक्ष विपक्षमें बोलना चाहें, वे बोल सकते हैं। इतना कह चुकनेके बाद जिन सदस्योंको जो कुछ कहना होता है, कहते हैं।

प्रस्ताव जब सभापतिद्वारा विचारार्थ उपस्थित कर दिया जाता है, तब जहां सदस्यगण पक्ष और विपक्षमें बोलनेके लिये स्वतन्त्र हो जाते हैं, वहीं उन्हें यह अधिकार भी मिल जाता है कि प्रस्तावमें संशोधन करें। इस प्रकार संशोधन करवानेकी इच्छा रखनेवाले सदस्यको अपने संशोधनकी बात प्रस्तावके रूपमें लानी पड़ती है, और इसी लिये उसके भी समर्थनकी आवश्यकता होती है, और समर्थक मिलने न मिलनेकी हालतोंमें उसकी भी वही दशा होती है जो अन्य प्रस्तावोंकी। इसका उल्लेख ऊपर आ ही चुका है।

संशोधनके लिये एक अवस्था और भी होती है। सभापतिद्वारा सभाके सामने किसी प्रस्तावके विचारार्थ उपस्थित होनेके पहिले उस प्रस्तावके प्रस्तावकको, यदि वह चाहे तो, यह अधिकार मिल सकता है कि वह अन्य सदस्योंसे विचार परामर्श करके अपने प्रस्तावमें अपनी रुचिके अनुसार संशोधन कर ले। परन्तु इस प्रकारका अधिकार प्रदान करनेमें सभापतिको सावधानीसे काम

लेना चाहिये। ऐसी अवस्थाओंमें प्रायः सभामें बड़ा हो-हल्ला मचने लगता है और शान्ति और व्यवस्थाकी रक्षा नहीं हो पाती। इसी लिये यह नियम साधारणतः पालन नहीं किया जाता।

इस नियमके अनुसार यदि प्रस्तावक अपने मूल प्रस्तावमें कोई संशोधन कर ले तो समर्थकको यह अधिकार होता है कि वह अपना समर्थन वापस ले ले। उस दशामें प्रस्तावका समर्थन किसी अन्य सदस्य द्वारा होना आवश्यक हो जाता है; क्योंकि किसी दशामें भी समर्थन-विहीन प्रस्ताव सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार यदि मूल प्रस्तावको देख कर किसी सदस्यने उसमें संशोधन करनेकी सूचना दे रखी हो (इस प्रकार की अवस्था संगठित सभाओं और संस्थाओंके वार्षिक अधिवेशनों आदिमें अधिक आती है) तो, यदि सदस्योंकी निजी बातचीतके आधारपर किया गया मूल प्रस्तावके प्रस्तावकका संशोधन उसे उपयुक्त और पर्याप्त प्रतीत हुआ तो संशोधक अपना संशोधन वापस ले सकता है।

प्रस्ताव वापस लेना——कभी-कभी ऐसी अवस्था आ जाती है, जब प्रस्तावक अपना प्रस्ताव वापस ले लेना चाहता है। ऐसी अवस्था विभिन्न कारणोंसे आ सकती है। उन सब कारणोंका उल्लेख तो सम्भव न होगा, परन्तु दो एक बातें ऐसी अवश्य हैं, जिनका उल्लेख होना चाहिये। प्रस्तावक अपने प्रस्तावमें जिस कामका निर्देश करना चाहता है, यदि वह काम पहिलेहीसे हो चुका हो, अथवा यदि अधिकारीवर्ग यह विश्वास दिलावें कि वह काम हो जायगा तो प्रस्तावक अपना प्रस्ताव वापस ले लेता है। इसी प्रकार यदि उसके प्रस्तावमें व्यक्त किये गये विचार किसी अन्य प्रस्तावमें आ चुके हों, या आगे आनेवाले प्रस्तावमें अधिक सुन्दरताके साथ आनेवाले हों, तो भी वह अपना

प्रस्ताव वापस लेना चाहेगा और प्रस्तावकको यह अधिकार होता भी है कि वह अपना प्रस्ताव वापस ले सके। परन्तु यह अधिकार इतना अनियंत्रित नहीं है कि प्रस्तावक जब चाहे तब प्रस्ताव वापस कर ले।

प्रस्ताव वापस करनेका नियम यह है कि यदि प्रस्ताव पेश करनेके पहिले ही प्रस्तावक अपना प्रस्ताव वापस ले ले तब तो कोई बात ही नहीं है। इसी प्रकार यदि प्रस्ताव पेश किया जा चुका हो और उसका समर्थन भी हो चुका हो; परन्तु सभापति द्वारा वह सभामें विचारार्थ उपस्थित न किया गया हो तो भी प्रस्तावक अपनी इच्छाके अनुसार प्रस्ताव वापस ले सकता है। परन्तु यदि प्रस्ताव और समर्थनके पश्चात् सभापतिने उसे विचारार्थ सभामें उपस्थित भी कर दिया हो तो प्रस्तावकका यह अधिकार कि वह अपने इच्छानुसार वापस ले ले, छिन जाता है। उस दशामें प्रस्तावकको सभासे अनुमति लेनी पड़ेगी कि वह अपना प्रस्ताव वापस ले ले और जब सभा इस प्रकारकी अनुमति दे देगी तभी वह अपना प्रस्ताव वापस ले सकेगा, अन्यथा नहीं।

कभी-कभी (और अपने यहां तो प्रायः ही) ऐसी अवस्था आ जाती है कि प्रस्ताव पेश होने तथा उसका समर्थन हो जानेके बाद सभापतिद्वारा विषयके विचारार्थ उपस्थित होनेकी प्रतीक्षा किये बिना ही पक्ष विपक्षमें भाषण होने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि एक ही आध भाषण होनेके बाद प्रस्तावक अपना प्रस्ताव वापस ले लेना चाहे तब तो वह ले सकता है, परन्तु यदि अधिक भाषण हो चुके हों तो इस आधारपर कि सभापति द्वारा विषय विचारार्थ उपस्थित नहीं किया गया, वह अपना प्रस्ताव वापस नहीं ले सकता; क्योंकि इतने अधिक भाषण हो जानेके बाद मान लिया जाता है कि विषय सभापति द्वारा विचारार्थ उपस्थित किया जा चुका।

प्रस्तावकके इस प्रकार अपना प्रस्ताव वापस ले लेनेपर अन्य सभासदका यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह उस प्रस्तावको अपनी ओरसे पेश करे। इस दशामें पहिलेसे इस प्रस्तावकी सूचना देनेका बन्धन भी नहीं रहता।

इस नियमसे प्रस्तावका उपस्थितीकरण, समर्थन आदि हो जानेपर सभापतिद्वारा वह विचारार्थ उपस्थित किया जाता है, फिर उसपर वादविवाद होता है, अन्तमें सभापति सम्मति गणनाके लिये उसे फिर सभामें उपस्थित करता है और पक्ष विपक्षकी मतगणना करके बहुमतके अनुसार अपना निर्णय देता है।

सभापति द्वारा प्रस्ताव उपस्थित करना—सभामें कभी-कभी ऐसे प्रसंग भी आते हैं, जब स्वयं सभापति प्रस्ताव पेश करता है। ऐसे प्रस्ताव प्रायः सर्वसम्मतिसे स्वीकृत होते हैं, और इनपर वादविवाद भी नहीं होता। सभापति ऐसे प्रतावोंको उपस्थित करता है (उसे ऐसे प्रस्ताव ही उपस्थित करना भी चाहिये) जिनके सन्बन्धमें सभामें कोई मतभेद नहीं होता। कभी कभी थोड़े (बहुत थोड़े) मतभेदवाले प्रस्ताव भी सभापति उपस्थित करता है। यह खास तौरसे उस समय करना पड़ता है, जब सभाके सामने अनेक कार्य होते हैं, जिनका एक निश्चित अवधिके अन्दर पूरा करना कठिन होता है। तब सभापति कुछ प्रस्ताव अपने आप पेश कर उन्हें खतम कर देता है। कार्यकी सुविधाकी दृष्टिसे यह पद्धति ठीक अवश्य होती है, परन्तु विधान-रक्षाकी दृष्टिसे यह ठीक नहीं मानी जा सकती। अतः यदि कोई सभासद एतराज करे तो अविवादास्पद प्रस्तावोंको छोड़ कर अन्य प्रस्ताव सभापति उपस्थित न कर सकेगा।

स्वीकृत प्रस्तावका रद्द करना—कभी कभी ऐसी परिस्थिति आती

है, जब सभाद्वारा पूर्व स्वीकृत प्रस्तावको रद्द करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। इस प्रकारकी अवस्था अनेक कारणोंसे आ सकती है, जिनका पूरा पूरा उल्लेख न तो सम्भव ही है न आवश्यक ही। इस बातका अनुमान सभासद गण आसानीसे लगा सकते हैं।

प्रस्तावको रद्द करनेके लिये संगठित सभाओंमें तो अपने अपने अलग अलग नियम होते हैं, और उसीके अनुसार उन सभाओंमें प्रस्ताव वापस लिये या रद्द किये जा सकते हैं। परन्तु अनेक सभाएँ ऐसी हो सकती हैं, जिनमें इस प्रकारकी कोई विशेष बात तो होती नहीं है, केवल इतना उल्लेख होता है कि कितने समयके अन्दर प्रस्ताव रद्द नहीं किया जा सकता। अन्य सब बातोंमें एक साधारण प्रस्तावमें जो नियम बरते जाते हैं, वे ही सब नियम इसमें भी बरते जाते हैं, क्योंकि प्रस्ताव रद्द करनेके लिये भी तो एक नया प्रस्ताव उपस्थित करना पड़ता है। अवधिका प्रश्न ऐसा है, जिसके लिए कोई निश्चित और अटल नियम नहीं बनाया जा सकता। फिर भी अधिकांश संगठित संस्थाओंमें यह नियम है कि एक बारका स्वीकृत प्रस्ताव छः महीनेके भीतर वापस नहीं लिया या रद्द नहीं किया जा सकता। फिर भी अवधि निर्धारणका यही नियम ठीक है; यह नहीं कहा जा सकता। आवश्यकतावश इसके पूर्व भी प्रस्ताव रद्द करना पड़े तो सभाकी हितरक्षाके लिए उसे कर देना चाहिए। इसलिए इस सम्बन्धमें कोई नियम न बनाना ही अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है। इस सम्बन्धमें अगर अधिक बारीकीसे सोचा जाय तो एक ही दिनमें परिस्थितियां ऐसी आ सकती हैं, जिनमें प्रस्ताव का वापस लेना या रद्द करना आवश्यक और उपयुक्त हो। फिर भी यह नियम तो बन ही सकता है, और बना हुआ है भी कि कोई प्रस्ताव उसी मीटिंगमें

रद्द नहीं किया जा सकता, जिस मीटिंगमें वह पास किया गया हो। यदि ऐसी अवस्था आ पड़े कि प्रस्ताव स्वीकृत हो जानेके बाद तुरन्त ही उसे रद्द करना आवश्यक हो जाय तो भी उस सभामें उसे रद्द नहीं किया जा सकता। उसके लिए करना यह पड़ेगा कि वह सभा भंग करके उसी समय दूसरी सभाका आयोजन किया जायगा—चाहे उस सभामें भी वे ही सब सभासद हों और चाहें वही सभापति भी हो—और उस नव संगठित सभा द्वारा उस प्रस्तावको रद्द करवाना पड़ेगा। यह सब होते हुए भी यदि किसी संस्थाने यह नियम बना रखा हो कि चाहे जिस समय और चाहे जिस अवस्थामें स्वीकृत प्रस्ताव रद्द किये जा सकते हैं, तो उसी सभामें, स्वीकृत होनेके बाद प्रस्ताव रद्द किये जा सकते हैं।

प्रस्तावको बातोंमें टाल देना—(Talk out) समाचारपत्रोंमें हम प्रायः पढ़ते हैं कि एसेम्बलीमें कार्यवाही स्थगित करनेका अमुक प्रस्ताव बातोंमें ही टाल दिया गया (The motion was talked out) इसका क्या अर्थ होता है, यह जिज्ञासा जनसाधारणके लिए स्वाभाविक है। बात यह है कि कभी-कभी प्रस्तावोंके लिए समय निर्धारित होता है (और स्थगित करनेवाले प्रतावोंमें तो सदा ऐसा ही होता है) इस अवस्थामें उस प्रस्तावको उसी अवधिके अन्दर समाप्त कर देना पड़ता है। उसके बाद फिर न तो उस प्रस्तावपर वादविवाद हो सकता है, और न सम्मति गणना। इस प्रकार यदि कोई विशेष प्रस्ताव उस अवधिके अन्दर समाप्त नहीं होता, अर्थात् यदि उस अवधिके अन्दर किसी प्रस्तावपर वादविवाद और उसकी सम्मति-गणना समाप्त नहीं हो जाती तो सभा उस प्रस्तावपर अपना कोई निर्णय नहीं दे पाती। और उसी दशामें वह प्रस्ताव बातोंमें टाल दिया गया कहा जाता है।

ऐसी अवस्थाओंमें कभी-कभी शरारत भी की जाती है। किसी विषयके विरोधी लोग जान-बूझकर लम्बे-लम्बे भाषण देकर समय लेते और निर्धारित अवधिको टालनेकी कोशिश करते हैं, ताकि उसपर सभा अपना निर्णय न दे सके। ऐसी चालबाजियां कौंसिलों और एसेम्बलियोंमें प्रायः होती हैं, जब सरकार और जनताके प्रतिनिधियोंमें संघर्ष होता है। इस परिस्थितिमें सभापतिको खूब सावधान रहने और ऐसा नियन्त्रण करनेकी आवश्यकता होती है, जिससे निर्धारित अवधिके भीतर ही वादविवाद समाप्त होकर उस विषयपर सभाकी सम्मति ली जा सके।

प्रस्ताव

(भेदोपभेद प्रकरण)

प्रस्तावोंका रूप—किसी सभामें उपस्थित अधिकारी व्यक्तियों—प्रतिनिधियों, सभासदों आदि—के द्वारा सभामें विचार करनेके लिये एक निश्चित ढंगसे लिखित रूपमें जो विषय पेश किया जाता है, उसे प्रस्ताव कहते हैं। प्रस्तावका लिखा हुआ होना आवश्यक होता है। यद्यपि हमारे यहाँ इस प्रथापर उतना जोर नहीं दिया जाता तथापि यह आवश्यक है और इसका पालन दृढ़ता पूर्वक किया जाना चाहिये। प्रस्तावोंमें प्रायः दो प्रकारकी बातें रहती हैं। एक तो यह कि किसी कार्यका निर्देश किया जाता है, और दूसरे यह कि किसी विषयपर सभाके विचार व्यक्त किये जाते हैं। प्रस्ताव नपे तुले आवश्यक शब्दोंमें होना चाहिये, उसमें अनावश्यक व्यर्थ शब्द न होने चाहिये। प्रस्ताव-की भाषा स्पष्ट और सुबोध एवं विचार निश्चयात्मक होने चाहिये।

अंग्रेज ग्रंथकारोंने इस बातपर विशेष रूपसे जोर दिया है, और अंग्रेजी सभाओंमें इस नियमका पालन भी किया जाता है कि प्रस्तावका प्रारम्भ 'That' शब्दसे हो। That का हिन्दी अर्थ होता है 'कि'। इसका तात्पर्य केवल यह मालूम होता है कि प्रस्ताव पेश करते समय इस शब्दके प्रयोगसे सुविधा आ जाती है जैसे I propose that or I move that। उसी प्रकार यदि हिन्दीमें भी प्रस्ताव 'कि' से आरम्भ हों, तो बोलनेमें सुविधा हो सकती है जैसे "मैं प्रस्ताव करता हूँ कि…………।" परन्तु इस प्रथाकी इतनी सख्त पाबन्दीकी जरूरत नहीं है। वास्तवमें प्रस्तावके इस प्रकारके शब्द नहीं, वरन् प्रस्तावके विचारोंका व्यक्तीकरण करनेवाले शब्द अधिक ध्यान देने योग्य होते हैं। अतः यदि इस प्रकारके शब्दोंके सम्बन्धमें कुछ उपेक्षा हो जाय, तो कोई हानि नहीं।

अंग्रेजीमें प्रस्तावोंके सम्बन्धमें दो शब्द व्यवहारमें आये हैं एक Motion और दूसरा Resolution। Motion का अर्थ है प्रस्ताव और Resolution का अर्थ है निश्चय। सभामें प्रस्ताव और निश्चय दोनों प्रकारके प्रस्ताव आते हैं। जिस प्रस्तावके द्वारा सभा अपना अन्तिम मत या आदेश प्रकट करती है, वह निश्चय (Resolution) कहा जाता है उसके लिये "प्रस्ताव (Move) किया जाता है" न लिखकर "निश्चय (Resolve) किया जाता है" लिखा जाता है।

जब किसी संगठित संस्थामें किसी कर्मचारीको कोई आदेश देना तय किया जाता है, तब "प्रस्ताव करता हूँ" या "निश्चय किया गया" के स्थानपर 'हुक्म दिया गया' या 'आदेश दिया गया' आदि शब्द भी लिखे जा सकते हैं। जब कोई व्यक्ति सभाके किसी निश्चय (Resolution) को स्वीकृत या

अस्वीकृत करना चाहता है, तब वह कहता है—"मैं प्रस्ताव करता हूँ कि निम्नलिखित निश्चय (Resolution) स्वीकार किया जाय।" इसके बाद वह उस निश्चयको पढ़कर सुनाता है।

परन्तु इस प्रकारका भेद अपने यहां नहीं किया गया; यहां तो निश्चय (Resolution) को ही प्रस्तावके नामसे पुकारा जाता है और Motion के लिये कोई अलग शब्द नहीं रखा गया। अपने यहां प्रस्ताव लिखनेका ढंग भी यह नहीं है कि प्रत्येक प्रस्तावके पहले प्रस्ताव किया गया (Motion) या निश्चय किया गया (Resolution) शब्द लिखे जायँ। इसलिये प्रस्ताव और निश्चयके इस भेदोपभेदकी आवश्यकता भी नहीं रह जाती।

जब कभी प्रस्तावके साथ उसके कारण बतानेकी भी आवश्यकता प्रतीत होती है, तब प्रस्तावके प्रारम्भमें 'चूंकि' शब्द जोड़कर कारण बताया जाता है। जितने कारण बताने होते हैं, उनके लिये उतने ही अलग-अलग पैरेग्राफ रखने पड़ते हैं और अन्तिम पैरेग्राफको छोड़कर प्रत्येक पैरेग्राफके आदिमें 'चूंकि' शब्द जोड़ा जाता है और अन्तमें अल्प विराम (,) का चिन्ह तथा 'और' शब्द जोड़ा जाता है। जिस पैरेग्राफमें कारण बतानेकी क्रिया समाप्त की जाती है, उसके आदिमें तो 'चूंकि' शब्द पूर्ववत् ही रहता है, परन्तु अन्तमें अल्प विराम (,) या अर्द्ध विराम (;) के बाद 'और' शब्द न होकर 'इसलिये' शब्द होता है। जब एक ही सिलसिलेमें कई बातें कहनी हों, तब या तो प्रस्तावमालाके रूपमें अलग-अलग १, २, ३ आदि संख्या देकर उन्हें लिखना चाहिये या फिर एक ही प्रस्तावमें अलग-अलग पैरेग्राफ करके अलग-अलग बातका उल्लेख करना चाहिये। पिछली हालतमें प्रत्येक पैरेग्राफके आदिमें 'कि' शब्दका प्रयोग उसी प्रकार किया जाता है, जैसे स्वतन्त्र प्रस्ताव

रखनेमें। उदाहरणके लिये इस प्रकारके प्रस्तावका एक नमूना नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"चूंकि हम समझते हैं कि परदा स्त्रियोंके आत्म-विकासका बाधक है, और

चूंकि हमारे समाजमें परदेकी प्रथाका प्रबल प्रचार है, इसलिये

(निश्चय किया गया कि) सभाकी राय है; कि परदा शीघ्र ही हट जाना चाहिये।

(निश्चय किया गया कि) पाँच सज्जनोंकी एक कमेटी बना दी जाय, जो समाजके प्रतिनिधियोंसे मिलकर इस प्रथाको उठा देनेका प्रयत्न करे।"

अपने यहां प्रचलित प्रथाके अनुसार इस प्रस्तावके पिछले दोनों पैरेग्राफों-मेंसे प्रारम्भके *'निश्चय किया गया कि'* शब्द उठ जायंगे।

प्रस्तावोंके भेद—प्रस्तावोंमें कई प्रकारसे भेद किये जा सकते हैं। जिस उद्द`श्यसे जो प्रस्ताव रखा जाता है, उसे लक्ष्य करके, जिस ढंगसे प्रस्तावोंपर वोट लेना आवश्यक होता है; उसे लक्ष्य करके, जिस ढंगसे वे पेश किये जाते हैं; उसे लक्ष्य करके—इस प्रकार भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे प्रस्तावके भेद किये जाते हैं; और किये गये हैं। यहांपर उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

उद्देश्यके अनुसार प्रस्तावोंके भेद—उद्देश्यको लक्ष्य करके प्रस्तावों-के ६ भेद हो सकते हैं।

(१) **संशोधन करनेके लिये**—जब कोई ऐसा प्रस्ताव सामने आया हो, जिसमें कुछ शब्दोंके संशोधनोंकी आवश्यकता हो, तब इस प्रकारके प्रस्ताव आते हैं। इनके अनुसार प्रस्तावके किसी स्थानपर कोई शब्द बढ़ा देने, या

किसी स्थानसे हटा देने और किसी स्थानपर जोड़ देने या किसी प्रयुक्त शब्द या शब्द समूहके स्थानपर दूसरे शब्द या शब्द समूह रखनेकी बातें प्रस्तावमें कही जाती है।

(२) **उपयुक्त विषय पेश करनेके लिए**—कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं, जब कोई सदस्य चाहता है कि छिड़ा हुआ विषय कुछ समयके लिए स्थगित कर दिया जाय। यह वह इसलिए चाहता है कि या तो अन्यान्य विषय अधिक आवश्यक हैं, इसलिए इसे स्थगित कर उनपर विचार किया जाय, या इसलिए कि अन्यान्य विषयोंपर विचार कर चुकनेके बाद उस विषयपर अच्छी तरह विचार करनेका पर्याप्त अवसर मिलेगा।

(३) **वाद-विवाद रोकनेके लिए**—कभी-कभी ऐसे प्रसंग आते हैं, जब वादविवादमें ही सभासदगण अधिक समय ले लेते हैं। उस अवस्थामें यदि कोई व्यक्ति उस विवादको रोकना चाहता है, तब इस प्रकारके प्रस्ताव पेश किये जाते हैं। इन प्रस्तावोंमें निम्नलिखित ढङ्गकी बातें होती हैं:—

इस विषयपर विचार स्थगित किया जाय, अमुक समयके अन्दर इस विषयका विचार समाप्त कर दिया जाय, प्रत्येक वक्ताको अमुक समयसे अधिक न बोलने दिया जाय, आदि।

(४) **विषयको दबा देनेके लिए**—वैसे तो समुचित और नियमानुसार पेश किया गया विषय सभामें दबाया नहीं जा सकता; परन्तु यदि दो तिहाई वोटोंसे सभासद यह निश्चय करें कि इसे दबा ही देना चाहिए, तो उसके लिए जो प्रस्ताव काममें लाये जाते हैं, वे इस श्रेणीमें आते हैं। इन प्रस्तावोंमें विचार पर एतराज करनेके प्रस्ताव, विषयको स्थगित करनेके प्रस्ताव आदि प्रस्ताव आते हैं।

(५) विषयपर पुनर्विचार करनेके लिए—कभी-कभी पूर्व स्वीकृत या पूर्व स्थगित विषय विचार करनेके लिए पड़े रहते हैं। उस दशामें उचित प्रस्ताव करके उन विषयोंपर पुनर्वार विचार किया जाता है। इस कार्यके लिए जो प्रस्ताव पेश किये जाते हैं, उनमें सूचित विषयोंमेंसे प्रश्न उपस्थित करनेका प्रस्ताव, पुनर्विचारका प्ररताव या स्वीकृत प्रस्तावको अस्वीकृत करनेका प्रस्ताव आदि अनेक प्रकारके प्रस्ताव आ सकते हैं।

(६) किसी विषयकी अन्तिम कार्यवाहीको रोकनेके लिये—जब किसी विषयमें की जानेवाली अन्तिम कार्यवाहीको रोकना हो, तब इस प्रकारके प्रस्ताव पेश किये जाते हैं। इस प्रकारके प्रस्ताव अक्सर छोटी सभाओंमें आते हैं, जिनमें सदस्योंकी काफी संख्या उपस्थित नहीं होती। इस प्रकारकी सभामें यदि कोई ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है, जिसके सम्बन्धमें किसी सभासदको यह आशंका हो कि सभाके सब सदस्योंको मिला-कर बहुमत इसके विरुद्ध होगा, तो पहिले तो उपस्थित जनताके साथ वोट देकर वह उस प्रस्तावको स्वीकृत करा सकता है; परन्तु उसके बाद वह उस प्रश्नपर पुनर्विचार करने आदिका प्रस्ताव करके उसके आगेकी कार्यवाही रोक सकता है।

सूचनाके आधारपर प्रस्तावोंके भेद—सूचनाके आधारपर प्रस्तावोंके दो भेद हो सकते हैं:—

(१) वे जिनमें पूर्व सूचना देना आवश्यक होता है—ऐसे प्रस्ताव प्रायः सब हैं, इसलिए इनकी गणना यहां अनावश्यक है।

(२) वे जिनमें पूर्व सूचना देना आवश्यक नहीं है—ऐसे प्रस्तावोंमें—क—सभापतिके निर्वाचनका प्रताव—ख—सभापति द्वारा विशेष

रूपसे उपस्थित किये गये किसी विषय या पत्र व्यवहार पर विचार करनेका प्रस्ताव—ग—सभा स्थगित कर देनेका प्रस्ताव—घ—किसी रिपोर्टको प्राप्त करने, कार्यवाहीके विवरणमें (minute) दर्ज करने, अस्वीकार करने, कार्यान्वित करने अथवा पुनर्विचारार्थ वापस भेजनेके प्रस्ताव—ङ—कागजातोंके पढ़ने और उत्तर देनेके सम्बन्धके प्रस्ताव—च—किसी आवेदककी बात सुनने के प्रस्ताव—छ—किसी विशेष विषयपर पहिले विचार करनेका प्रस्ताव—ज—किसी भविष्यत् मीटिंगके लिए किसी विशेष विषयकी नियुक्ति करनेके प्रस्ताव, झ—कमेटी तथा उसके सदस्य नियुक्त करनेके प्रस्ताव—ञ—और अन्य विषय जो बहुत जरूरी हों आदिके प्रस्ताव शामिल माने जाते हैं। इन प्रस्तावों को सदस्य गण बिना पूर्व सूचना दिये भी सभामें उपस्थित कर सकते हैं।

वादविवादके आधारपर प्रस्तावोंके भेद—वादविवादके आधार पर प्रस्तावोंके दो भेद हो सकते हैं।—

(१) वे प्रस्ताव जो वादविवादके लिये नया विषय उपस्थित करते हैं। ऐसे प्रस्तावोंमें अनिश्चित समय तकके लिए स्थगित करनेके प्रस्ताव, विचारास्पद विषयपर पुनर्विचार करनेवाले प्रस्ताव और किसी स्वीकृत विषयको पुनः समर्थन करनेवाले प्रस्ताव आदि प्रस्ताव सम्मिलित होते हैं।

(२) वे प्रस्ताव जिनपर वाद विवाद नहीं होता—ऐसे प्रस्तवोंमें—(क)—स्थगित सभाका समय निर्धारित करनेवाले प्रस्ताव, (जब यह अधिकारका प्रश्न—Privileged question—हो तब)—ख—किसी सभाको स्थगित करनेका प्रस्ताव (जब किसी ऐसी सभामें जिसमें भविष्यत् मीटिंगकी व्यवस्था की गयी हो यह आया हो)—ग—विश्राम लेनेके प्रस्ताव (जब अधिकारात्मक Privileged हो)—घ—विशेष समयके निर्धारित

क्रमको उपयुक्त समयपर लाने तथा किस कार्यको पहले करना चाहिये इसपर विचार करनेके लिए आनेवाले प्रस्ताव, —ङ—किसी छिड़े हुए अविवादास्पद विषयपर, अथवा केवल शिष्टाचारहीनतापर, अथवा कार्यकी उपयुक्ततापर अपील करनेके प्रस्ताव,—च—नियमोंको स्थगित करनेके प्रस्ताव,—छ—किसी विषयपर विचार करनेपर एतराज करनेके प्रस्ताव,—ज—प्रसंगजन्य प्रस्ताव (incidental motion)—झ—प्रस्ताव रोक रखनेके (Lay on the table) प्रस्ताव,—ञ—विषय स्थगित कर देने, वाद-विवाद बन्द कर देने या उसकी अवधिको घटा या बढ़ा देनेके प्रस्ताव,—ट—किसी अविवादास्पद प्रस्तावका संशोधन करनेके प्रस्ताव,—ठ—किसी अविवादास्पद प्रस्तावपर पुनर्विचार करनेके प्रस्ताव आदि प्रस्ताव आते हैं।

(३) वे प्रस्ताव जिनमें समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती— कुछ प्रस्ताव ऐसे भी होते हैं,जिनमें समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती। इनमेंसे सब प्रस्ताव ऐसे नहीं हैं, जिनपर वाद-विवाद नहीं होता। इसलिये वास्तवमें ये प्रस्ताव इस श्रेणीके प्रस्तावोंमें नहीं आते फिर भी चूंकि इनमें समर्थनकी आवश्यकता नहीं पड़ती और समर्थन भी एक प्रकारसे वाद-विवादका अंग ही है इनकी गणना इस स्थानपर अनुपयुक्त न होगी। ऐसे प्रस्तावोंमें—क—अधिकारका प्रश्न (Question of privilege),—ख—व्यवस्थाका प्रश्न (Question of order),—ग—किसी विषयपर विचार करनेपर आपत्ति घ - निर्धारित क्रमके अनुसार काम करनेकी मांग—ङ—किसी विषयके वर्गीकरणकी मांग (Division of the question)--च—मतगणनामें वर्गीकरणकी मांग (Division of the assembly)—छ—प्रस्तावपर पुनर्विचार—ज—स्थान-पूर्त्ति (Filling blanks)—झ—नामजदगी

(nomination)—अ—प्रस्तावको वापस करनेकी अनुमति आदि विषयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रस्ताव अथवा किसी विषयकी पूछताछ आदि विषय सम्मिलित माने जाते हैं।

मतगणनाके आधारपर प्रस्तावोंके भेद—मतगणनाके अनुसार प्रस्तावोंके तीन प्रधान भेद होते हैं।

(१) **बहुमतसे स्वीकृत होनेवाले**—विशेष अवस्थाओंको छोड़कर जिनका उल्लेख नीचे किया जायगा, साधारण अवस्थामें प्रत्येक नियमित प्रस्तावकी स्वीकृतिके लिए यह आवश्यक होता है कि जिनके वोट पड़ें (जितने आदमी सम्मति दें) उनमेंसे यदि आधेसे अधिक वोट प्रस्तावके पक्षमें आयें तो प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है। प्रायः सभी प्रस्ताव इस श्रेणीके होते हैं।

(२) **प्रायः सर्व सम्मतिसे स्वीकृत होनेवाले**—सभाओंमें कुछ प्रस्ताव ऐसे आते हैं, जिनके लिए आवश्यक होता है, कि उनका समर्थन प्रायः सर्व सम्मतिसे हो। ऐसे प्रस्ताव किसी विशेष वक्ताके बोलनेके समय, जब एक निर्धारित समयसे वह अधिक बोलना चाहता हो, उसे निर्धारित समयसे अधिक समय देनेके लिए आते हैं। किसी विशेष पदाधिकारीके चुनावके समय भी ऐसे प्रस्ताव आते हैं। इनकी संख्या कम ही होती है।

(३) **दो तिहाई सम्मतिसे स्वीकृत होनेवाले**—ऐसे प्रस्तावोंकी संख्या काफी बड़ी है, जो दो तिहाई सम्मतिसे स्वीकृत माने जाते हैं, कममें नहीं। इनमें किसी सभाके नियमों, उपनियमों, आदिमें संशोधन करनेके लिए किये जानेवाले प्रस्ताव, (ख) किसी नियमको, किसी कार्यक्रमको, या किसी स्वीकृत प्रस्तावको रद्द करने या संशोधित करनेके लिये पूर्व सूचना बिना किये जानेवाले प्रस्ताव, (ग) जिस क्रमसे काम करना निश्चय किया गया हो, उससे

भिन्न क्रमसे किसी प्रश्नको उठानेके लिए किये जानेवाले प्रस्ताव, (घ) किसी नियमको स्थगित करनेके प्रस्ताव, (ङ) विशेष क्रम निर्धारित करनेके प्रस्ताव, (च) किसी विशेष दिनके लिए निर्धारित कार्यक्रमके किसी कार्यपर उसके पेश होनेके पहिले ही विचार करने (Discharge an order of the day before it is pending.) के प्रस्ताव, (छ] निर्धारित कार्य-क्रमके अनुसार काम करनेसे इन्कार करनेके प्रस्ताव, (ज) किसी विषयपर विचार करनेके सम्बन्धमें एतराज करनेके प्रस्ताव, (झ) किसी विषयको स्थगित कर देनेके प्रस्ताव, (ञ) वादविवादके समयको बढ़ाने या घटानेके प्रस्ताव, (ट) सभाको स्थगित करने या विश्राम लेनेके लिए निर्धारित समयको बढ़ानेके प्रस्ताव, (ठ) नाम जदगी nomination या मत गणना (polls) को बन्द करनेके प्रस्ताव, (ड) जिन नामोंपर मत दिये जानेवाले हों, उनकी संख्या निर्धारित करनेवाले प्रस्ताव, (ढ) किसी व्यक्तिको सदस्यतासे हटा देनेके प्रस्ताव, (ण) किसी व्यक्तिके हाथसे किसी कामको छीन लेनेके लिए किये जानेवाले प्रस्ताव, (त) पूर्व सूचना बिना ही किसी कमेटीको भंग करनेके लिए किये गये प्रस्ताव, (थ) किसी कमेटीमें उस दशामें किसी विषयपर पुनर्विचार करनेवाले प्रस्ताव, जब कि कमेटीके बहुमतका कोई सदस्य अनुपस्थित हो और उसे पुनर्विचार वाले प्रस्तावकी सूचना न दी गयी हो। इत्यादि प्रस्ताव आते हैं।

अन्य दृष्टियोंसे प्रस्तावोंके भेद—अन्य दृष्टियोंसे भी प्रस्तावोंके अनेक भेद हो सकते हैं। सबसे प्रधान और स्थूल भेद तो यह हो सकता है कि कुछ प्रस्ताव शिष्टाचार या विधानके लिए ही होते हैं,और कुछ कामके लिए।

(१) विधान या शिष्टाचार सम्बन्धी प्रस्ताव (Formal

(resolutions) इन प्रस्तावोंकी गणनामें —क—विषयको रोक देनेके प्रस्ताव Previons question—ख—दूसरा विषय उठानेके प्रस्ताव—वाद विवाद बन्द कर देनेके प्रस्ताव —घ— किसी विषय पर बिचार करना स्थगित करने के प्रस्ताव—ङ—वादविवाद स्थगित करनेके प्रस्ताव —च—सभाको स्थगित करनेके प्रस्ताव छ—किसी कमेटीके द्वारा की गयी सिफारिशोंको फिर विचारार्थ कमेटीके सुपुर्द करनेके प्रस्ताव आदि प्रस्ताव आते हैं।

(२) **कामकाज सम्बन्धी प्रस्ताव**—जिन प्रस्तावों द्वारा किसी कार्य का निर्देश किया जाता है, अथवा जिसके द्वारा किसी विशेष विषय पर सभाकी राय घोषित की जाती है, वे सब प्रस्ताव इस श्रेणीमें आ जाते हैं। इस कोटि के प्रस्तावोंकी संख्या निर्धारित करना कठिन है। साथ ही अन्यान्य प्रसंगों पर प्रस्तावोंका विस्तृत विवेचन आनेकी संभावना है ही, अतः यहां इस सम्बन्ध में अधिक लिखना आवश्यक नहीं है।

काम काज और शिष्टाचार या विधान सम्बन्धी प्रस्तावोंको मिलाकर फिर इनके निम्नलिखित भेद किये जा सकते हैं।

१—प्रधान प्रस्ताव—(Main or principal motions) प्रधान प्रस्ताव उन प्रस्तावोंको कहते हैं, जिनके द्वारा सभाके सामने कोई विशेष विषय विचारार्थ उपस्थित किया जाता है। ये प्रस्ताव किसी अन्य प्रस्तावका अतिक्रमण नहीं कर सकते ; अर्थात् यदि और कोई विषय छिड़ा हुआ हो ; तो यह प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता। इसके बिपरीत यदि यह प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो ; तो अन्य कई प्रस्ताव आ सकते हैं। साधारणतः इन प्रस्तावोंको पास करानेके लिए सिर्फ बहुमतकी आवश्यकता होती है, परन्तु विशेष अवस्थाओंमें दो तिहाई वोटोंकी भी आवश्यकता पड़ती है।

प्रधान प्रस्तावके भी दो भेद होते हैं—एक मौलिक प्रधान प्रस्ताव (original main motion) और दूसरा प्रसंगजन्य प्रधान प्रस्ताव (Incidental main motion) मौलिक प्रधान प्रस्ताव उस प्रस्तावको कहते हैं जो सभाके सामने एक नया विषय विचारार्थ उपस्थित करता है। ये प्रायः निश्चय (Resolution) के रूपमें आते हैं, जिनपर सभाको कार्यवाही करनी पड़ती है। घटनाक्रमसे उत्पन्न होनेवाले प्रधान प्रस्ताव उन प्रस्तावोंको कहते हैं; जो सभामें उपस्थित विषयसे सम्बन्ध रखते हैं; या उसके भूतकालिक या भविष्यत् कार्योंसे सम्बन्ध रखते हैं। जैसे यदि किसी कमेटीने ऐसे विषयपर अपनी रिपोर्ट दी हो जो उसे सौंपा न गया था, और उस दशामें यदि उस रिपोर्टको स्वीकार करनेका प्रस्ताव किया जाय तो वह प्रस्ताव मौलिक प्रधान प्रस्ताव होगा परन्तु यदि रिपोर्ट ऐसे बिषय पर दी गयी हो जो कमेटीके सुपुर्द किया गया हो; तो उसे स्वीकार करनेका प्रस्ताव प्रसंग जन्य प्रधान प्रस्ताव कहा जायगा। प्रसंग जन्य प्रधान प्रस्तावोंमें —क— निर्दिष्ट विषयपर दी गयी किसी कमेटीकी रिपोर्टको स्वीकार करने —ख— किसी भविष्यत् समयके लिए स्थगित करने—ग—आगामी मीटिंगके लिए समय, स्थान आदि निर्धारित करने (जब कोई अन्य विषय न छिड़ा हो)-घ— स्थगित करने (ऐसी अवस्थामें जब उसका प्रभाव यह पड़ रहा हो कि सभा भंग हो रही हो और आगेकी मीटिंगके लिए कोई निर्देश न हो)—ङ— जो नियम कानून प्रस्ताव आदि (Cons titution, by laws standing rules or Resolution) सभा द्वारा स्वीकृत हो चुके हों उनका संशोधन करने,—च—पहिलेसे किये जा चुके हुए कार्यका समर्थन या स्वीकार करने —छ—पहिलेके किये गये कार्यको रद्द करने आदिके प्रस्ताव आते हैं।

२—सुविधाजनक प्रस्ताव—(Subsidiary motion) इस श्रेणीमें वे प्रस्ताव आते हैं जिनसे मूल प्रस्तावोंपर अधिक सुविधा और उपयुक्तता पूर्वक कार्यवाही की जा सके। ये प्रस्ताव किसी भी प्रधान प्रस्तावके सम्बन्धमें पेश किये जा सकते हैं, और स्वीकार होनेकी हालतमें मूल प्रस्ताव के पहिले इसपर निर्णय कर लिया जाता है। इस श्रेणीमें वे प्रस्ताव आते हैं जिनमें —क— विषयको रोक रखने (lay on the table) -ख- विषयको निषेध करने (Previons question) - ग - का विचारको घटाने बढ़ाने, —घ— किसी विषयको निर्धारित समयके लिये स्थगित करने —ङ— किसी विषयको किसी कमेटीके सुपुर्द करने —च— संशोधन करने, -छ- अनिश्चित समयके लिए स्थगित करने आदिके प्रस्ताव आते हैं।

३—प्रसंग जन्य प्रस्ताव—(Incidental motions) उन प्रस्तावोंको कहते हैं जो सभामें छिड़े हुए अन्य प्रश्नसे उत्पन्न होते हैं उसका निर्णय हो जानेके पहिले इनके सम्बन्धमें निर्णय हो जाना आवश्यक होता है। कुछ विशेष अवस्थाओंको छोड़ कर इनपर वाद विवाद भी नहीं किया जाता। इस श्रेणीमें -क- अपील और कार्यक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले —ख— विषय स्थगित करने वाले -ग-- किसी विषयपर विचार करनेपर आपत्ति करनेवाले —घ— किसी विषयके विभाग करके एक एक भागपर विचार करनेके लिये पेश किये जानेवाले —ङ— मतगणनाके सम्बन्धमें प्रत्येक पक्षके मतदाताओं को अलग अलग करनेके अभिप्रायसे रखे जाने वाले —च— नामजदगी (nomination) करनेके ढंगके सम्बन्धमें अथवा उसे रोक देने या पुनः करनेके सम्बन्धमें कियेजाने वाले—छ—छिड़े हुए कार्यके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी प्रार्थना आदि करनेके लिए पेश किये जानेवाले इत्यादि अनेक प्रस्ताव आते हैं।

४—अधिकारात्मक प्रस्ताव—(privileged motions) अधिकारात्मक प्रस्ताव उन प्रस्तावोंको कहते हैं जो यद्यपि छिड़े हुए प्रश्नोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते तथापि इतने महत्वके होते हैं कि किसी प्रश्नके छिड़े हुए होनेपर भी वे पेश किये जा सकते हैं। इसी लिए उनपर वादविवाद भी नहीं किया जाता। इस श्रेणीमें —क— सभा किस समयके लिए स्थगित की जाय यह निर्धारित करनेवाले (उस समय जब दूसरा प्रश्न छिड़ा हुआ हो) ख— सभा स्थगित करनेवाले (यदि उस सम्बन्धमें कोई विशेष बातें न कही गयी हो ; अथवा यदि उसका प्रभाव यह न पड़ता हो कि सभा भंग हो जाय) -ग-- विश्राम लेनेके सम्बन्धमें (यदि ये प्रस्ताव उस समय किये जायं जब दूसरा प्रश्न छिड़ा हुआ हो) -घ- अधिकारका प्रश्न छेड़नेवाले -ङ- दिनके लिए निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार काम करनेका आदेश देनेवाले आदि प्रस्ताव आ जाते हैं।

फुटकर प्रस्ताव—कुछ ऐसे प्रस्ताव होते हैं, जो उपरोक्त किसी वर्गमें नहीं आते। इन प्रस्तावोंमें—क—रोके हुए प्रस्तावपर विचार करने—ख— पास शुदा प्रस्तावपर पुनर्विचार करने—ग—रद्द करने—घ—किसी प्रस्तावको पुनः उपस्थित करने—ङ –समर्थन करने (Rectify) —च—सभासदोंकी उपस्थितिके लिए आग्रह करने आदिक तथा वे माने, व्यर्थके प्रस्ताव, आदि आते हैं। सभासदोंकी उपस्थितिका आग्रह करनेवाले प्रस्ताव भी हमेशा नहीं आते। वे ऐसी ही सभाओंमें आ सकते हैं, जिनमें सभासदोंको या पदाधिका-कारियोंको यह अधिकार होता है कि वे अनुपस्थित व्यक्तियोंको बुला सकें।

संक्षेपमें प्रस्तावोंका यही वर्गीकरण है। इनमेंसे अन्य दृष्टियोंसे प्रस्तावके भेद तथा फुटकर प्रस्ताव शीर्षकके नीचे जिन प्रस्तावोंका उल्लेख किया गया

है, उन प्रस्तावोंके अन्दर प्रायः सब प्रकारके प्रस्ताव आ जाते हैं। अतः इन प्रस्तावोंका निश्चित् विस्तृत विवेचन करनेका प्रयत्न आगे किया जायगा।

परन्तु उन प्रस्तावोंके विस्तृत विवेचन करनेके पहिले एक बात जान लेना आवश्यक है। 'अन्य दृष्टियोंसे प्रस्तावोंके भेद' अन्तः शीर्षकके नीचे जिन प्रस्तावोंका उल्लेख किया गया है, उनमें प्रधान प्रस्ताव, सुविधाजनक प्रस्ताव, प्रसंग जन्य प्रस्ताव और अधिकारात्मक प्रस्तावका उल्लेख जिस क्रमसे आया है, उसी क्रमसे एकसे दूसरा प्रस्ताव अधिक महत्वपूर्ण होता है। महत्वपूर्ण इस अर्थमें नहीं कि उससे सभाको उतना अधिक लाभ होता है, वरन् इस अर्थमें कि जब एक पर विचार हो रहा हो, तब यदि दूसरा प्रस्ताव छेड़ दिया जाय, तो पहिले वाले प्रस्तावपर विचार करना स्थगित करके दूसरे प्रस्तावपर पहिले विचार हो लेगा, तब पहिले वालेपर विचार होगा। उदाहरणार्थ; मान लीजिए कि कोई प्रधान प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित हो और उसी समय सुविधाजनक प्रस्ताव छेड़ दिया जाय, तो पहिले सुविधाजनक प्रस्तावपर विचार हो जायगा और उसके बाद प्रधान प्रस्तावपर विचार किया जायगा। इसी प्रकार प्रसंग जन्य प्रस्तावोंपर और पहिले और अधिकारात्मक प्रस्तावों पर सबसे पहिले विचार होगा। इस दृष्टिसे अधिकारात्मक प्रस्ताव सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

प्रधान और फुटकर प्रस्ताव.

प्रधान प्रस्ताव सभाके सामने एक बिलकुल नया विषय विचारार्थ उपस्थित करते हैं। ये उसी समय पेश किये जा सकते हैं, जब सभाके सामने कोई अन्य विषय छिड़ा हुआ न हो, और उनके छिड़े हुए होनेपर अन्य प्रायः सब प्रकारके प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकते हैं। इनपर वाद-विवाद हो सकता है, संशोधन हो सकता है तथा सुविधाजनक प्रस्ताव लागू हो सकते हैं। यदि प्रधान प्रस्ताव समितिके सुपुर्द कर दिया जाय तो उसके साथ छिड़े हुए संशोधन भी स्वभावतः समितिके सुपुर्द हो जायंगे। साधारण अवस्थामें इस कोटिके प्रस्ताव बहुमतसे पास किये जाते हैं, परन्तु जब नियमो-पनियमका संशोधन करना हो, अथवा पहले जो कार्य सभा द्वारा हो चुका है उसे रद्द करना हो तो दो तिहाई बहुमतकी आवश्यकता होती है या सदस्योंकी कुल संख्याके (केवल उपस्थितिकी ही नहीं) बहुमतकी आवश्यकता होती है।

नया विषय छेड़ना प्रधान प्रस्तावका अधिकार है। परन्तु ऐसा "नया विषय वह नहीं छेड़ सकता जो सभाके नियमोपनियमका विरोधी हो। और यदि किसी प्रकार नियमोपनियम विरोधी प्रधान प्रस्ताव पेश भी किया जाय तो वह पास हो जानेपर भी रद्द समझा जायगा। उसी प्रकारसे ऐसे प्रस्ताव भी, जो उसी मीटिंगमें स्वीकृत पहिलेवाले प्रस्तावोंके विरोधी होंगे, अनियमित समझे जायंगे। ऐसी अवस्थाओंमें नियमावलीमें संशोधन करना, या पूर्व स्वीकृत प्रस्तावपर पुनर्विचार कर लेना पहिले आवश्यक होता है। यदि पूर्व स्वीकृत प्रस्तावपर पुनर्विचारका समय निकल गया हो तो दो तिहाई वोटोंसे उसे रद्द किया जा सकता है। संगठित संस्थाओंमें जहां मासिक या त्रैमासिक मीटिंगें होती हैं, संस्थाकी दूसरी बैठकमें भी जिनमें कोरम संख्या बहुत कम होती है, पहिली बैठकमें स्वीकृत प्रस्तावका विरोधी प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि उपस्थित करना ही हो तो पहिले पूर्व स्वीकृत प्रस्तावको रद्द करवाना पड़ेगा।

प्रधान प्रस्तावोंकी संख्या या भेद इतने अधिक हो सकते हैं कि उनकी सम्यक रूपसे गणना करना सम्भव ही नहीं, अतः उनकी गणनाकी बात छोड़कर यहाँपर कुछ फुटकर प्रस्तावोंका विवेचन किया जाता है।

(१) रोका हुआ प्रस्ताव पेश करना—(to take from the table) किसी सभामें किसी प्रस्तावको रोक रखनेका अभिप्राय यह होता है कि बीचमें कोई अन्य कार्य करके, उसपर विचार किया जायगा अथवा जब उसके लिये उपयुक्त समय आयेगा, तब विचार किया जायगा। इस दृष्टिसे जब वह समय आता है, तब रोका हुआ प्रस्ताव फिर विचारार्थ उपस्थित किया जाता है। परन्तु उसको उपस्थित करनेके लिये भी एक प्रस्ताव करना पड़ता

है। इसी प्रस्तावको रोके हुए प्रस्तावको उपस्थित करनेका प्रस्ताव (to take from the table) कहते हैं। यह प्रस्ताव उस समय किया जा सकता है, जब सभाके सामने कोई विषय विचारार्थ उपस्थित न हो। ज्योंही वह प्रश्न जिसके कारण प्रस्ताव स्थगित किया गया था समाप्त हो जाय, त्योंही कोई भी सदस्य स्थगित प्रस्तावको पेश करनेका प्रस्ताव कर सकता है। ऐसी दशामें वह खड़ा होकर वक्तृताधिकार चाहेगा। उस समय यदि सभापति किसी अन्य व्यक्तिको वह अधिकार दे रहा हो, तो खड़े हुए सदस्यको कहना चाहिये कि वह रोके हुए प्रस्तावको उपस्थित करनेकी अनुमति चाहता है। इसपर सभापति उसे वक्तृताधिकार देगा। यदि सभापतिने नया विषय छेड़ दिया हो तो जबतक वह विषय समाप्त न हो जाय, तबतक उस सदस्यको रोके हुए प्रस्तावको पेश करनेके लिये रुकना चाहिये। जब रोका हुआ प्रस्ताव पुनर्बार विचारार्थ उपस्थित होता है, तब उसके साथ अन्य सब सहायक प्रस्ताव उसी प्रकार सम्मिलित माने जाते हैं, जिस प्रकार उस समयके, जब प्रस्ताव रोका गया था। इसके अनुसार यदि रोक रखनेके समय साथमें यह उप-प्रस्ताव उपस्थित था कि प्रश्न समितिके सुपुर्द कर दिया जाय, तो पहिले सुपुर्दगीके प्रस्तावपर विचार किया जायगा। परन्तु यदि पहिले प्रस्तावको एक निश्चित समयतकके लिये स्थगित करनेका प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो, तो उस दशामें नियम यह है कि दुबारा विचार करनेके समय इस प्रस्तावपर विचार न किया जायगा। परन्तु यह नियम उसी समयके लिये उपयुक्त मालूम होता है, जब प्रस्ताव पुनर्विचारार्थ इतनी अवधिके बाद पेश हो, जितनीके लिये स्थगित करनेका प्रस्ताव पहिले उपस्थित किया गया था। परन्तु यदि वह उस समय निर्धारित अवधिके पहिले ही पुनर्विचारार्थ उपस्थित कर दिया गया

हो तो उचित यही है कि पहिले उस निर्दिष्ट समयतक स्थगित करनेके प्रस्ताव पर विचार कर लिया जाय और उसके बाद मूल प्रस्तावपर। यदि प्रस्ताव उसी दिन पुनर्विचारार्थ उपस्थित किया जाय, जिस दिन कि वह रोका गया था तो उस प्रस्तावपर जो लोग पहिले बोल चुके थे, उन्हें दुबारा बोलनेका अधिकार न होगा। परन्तु यदि दूसरे दिन वह पेश किया जाय, तो इस बातकी चिन्ता न की जायगी कि रोक रखनेके पहिले कौन बोल चुका था, कौन नहीं। यदि एक ही अधिवेशनमें (चाहे दूसरे दिनकी बैठकमें ही क्यों न हो) प्रस्ताव पुनर्विचारार्थ उपस्थित किया गया हो और रोक रखनेके समय उसके सम्बन्धमें निषेधार्थक प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो तो पुनर्विचारार्थ पेश करते समय भी निषेधार्थक प्रस्ताव नियमित और साधिकार माना जायगा।

यह प्रस्ताव उस समय नहीं छेड़ा जा सकता, जब सभामें कोई दूसरा प्रश्न छिड़ा हुआ हो। परन्तु यदि यह छिड़ा हुआ हो तो अधिकारात्मक और प्रसंगजन्य प्रस्ताव पेश किये जा सकते हैं। परन्तु सुविधाजनक प्रस्ताव नहीं पेश किये जा सकते। इस प्रस्तावपर वाद-विवाद नहीं हो सकता और न इसपर कोई सुविधाजनक प्रस्ताव लाया जा सकता है। जब प्रस्ताव रोका जाय, उसके बाद यदि बीचमें कोई कार्यवाही न हो, तो पुनर्विचारार्थ यह प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि रोके हुए प्रस्तावको पेश करनेका प्रस्ताव एक बार अस्वीकृत कर दिया जाय, तो वह तबतक दुबारा न पेश किया जा सकेगा, जबतक कि बीचमें अन्य कोई कार्यवाही न हो जाय। रोके हुए प्रस्तावको उपस्थित करनेके प्रस्तावपर पुनर्विचार (Reconsider) नहीं किया जा सकता। परन्तु अस्वीकृत हो जानेपर यह बार-बार पेश (Renew) किया जा सकता है। यदि एक बार रोके हुए प्रस्तावपर

विचार आरम्भ भी हो जाय तो उसके बाद भी यदि उस प्रश्नपर यथेष्ट वाद-विवाद हो चुका हो अथवा कोई अन्य कार्य हो चुका हो, प्रस्ताव रोक रखनेका प्रस्ताव फिर पेश हो सकता है।

२ *पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव*—(Reconsider) कभी-कभी ऐसे प्रसंग आते हैं, जब किसी पूर्व स्वीकृत प्रस्तावपर फिरसे विचार करनेकी आवश्यकता पड़ जाती है। यह आवश्यकता अधिकांशमें इसलिये पड़ती है, कि स्वीकृत कर लेनेके बाद सभाको यह अनुभव होता है कि जिस रूपमें प्रस्ताव स्वीकार किया गया है, वह रूप उपयुक्त नहीं है, और उसका रूप बदलनेकी आवश्यकता है, या शीघ्रताके कारण जब कोई कार्य ऐसे ढंगसे कर डाला जाता है, जो अनुपयुक्त है और जिसके सुधारकी आवश्यकता है, तब भी इस की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्थामें पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि पूर्व स्वीकृत प्रस्तावपर लिये गये वोटों पर फिरसे विचार किया जाय अर्थात् उस प्रस्तावपर फिरसे वोट लिये जायं। जब ऐसा प्रसंग आता है, तब एक सदस्य (प्रायः यह सदस्य उनमेंसे होता है, जिन्होंने मूल प्रस्तावपर वोट देते समय बहुमतके पक्षमें वोट दिया था, परन्तु विशेष अवस्थाओंमें इस पाबन्दीकी जरूरत नहीं होती) उठकर सभापतिकी आज्ञासे कहता है—'मैं अमुक प्रस्तावके वोटोंपर पुनर्विचार करनेका प्रस्ताव करता हूँ।' अथवा मैं 'अमुक संशोधनपर लिये गये वोटोंपर पुनर्विचार करनेका प्रस्ताव करता हूँ।' (यह प्रस्ताव उस समय किया जाता है, जब मूल प्रश्न छिड़ा हुआ हो) अथवा 'मैं अमुक प्रस्ताव और अमुक संशोधन पर लिये गये वोटोंपर पुनर्विचार करनेका प्रस्ताव करता हूँ।' (यह प्रश्न उस समय उठाया जाता है, जब मूल प्रस्तावपर वोट ले लिये गये हों और उसके

बाद यह आवश्यक समझा गया हो कि संशोधनपर पुनर्विचार किया जाय) जब इस प्रकारके प्रस्ताव सामने आते हैं, तब यदि वे उसी समय विचार करनेके योग्य हुए तब तो सभापति उनपर तुरन्त विचार करता है अन्यथा वह मन्त्रीको यह आदेश देता हैः—"श्री० अमुकने अमुक प्रस्ताव या संशोधनके वोटोंपर पुनर्विचार करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया है। मन्त्री महोदय इसे लिख लें।" इसके बाद सभापति दूसरे आवश्यक काममें लग जाता है। फिर जब पुनर्विचारार्थक प्रस्तावका समय आता है, तब फिर कोई सदस्य (अधिकांशमें प्रस्तावक) उठकर सभापतिसे कहता है "मैं अब अमुक पुनर्विचारार्थक प्रस्तावको सभाके सामने उपस्थित करनेकी प्रार्थना करता हूँ।" इस प्रार्थनाके लिये समर्थन या वोटकी आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि यह प्रार्थना नियमित हुई तो सभापति कहता है—"अमुक प्रस्तावपर लिये गये वोटोंपर पुनर्विचार करनेके प्रस्तावको पेश करनेकी प्रार्थना की गयी है। अब प्रश्न यह है कि क्या सभा उस प्रस्तावपर लिये गये वोटोंपर पुनर्विचार करेगी? आप लोग इसके लिये तैयार हैं?" जब पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव, पेश करनेके साथ ही, सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित किया जाता है, तब भी सभापति इसी प्रकारसे उसे उपस्थित करता है। इसके बाद यदि प्रस्ताव वादविवाद लायक हुआ, तो इसपर वादविवाद होता है और उसकी समाप्तिपर इसपर वोट लिये जाते हैं। यदि वह अस्वीकृत हो गया, तब तो यहींसे सब कार्य समाप्त हो जाता है, परन्तु यदि यह स्वीकृत हुआ, तो मूल प्रस्ताव ठीक उस रूपमें सभाके सामने माना जाता है, जिस रूपमें वह वोट लेनेके पहिले था। फिर उसपर संशोधन और वादविवाद किया जा सकता है। परन्तु उस संशोधन और वादविवादमें वे ही सदस्य भाग ले सकते हैं, जिन्होंने मूल प्रस्तावपर

पहिले भाषण दिया हो। परन्तु यदि जिस दिन पुनर्विचारार्थक प्रस्तावपर विचार किया गया हो उस दिन मूल प्रस्तावपर विचार न किया जा सकता हो तो दूसरे दिन सब सदस्योंको उसपर बोलनेका अधिकार हो जाता है।

इस प्रस्तावके स्वीकृत हो जानेका अर्थ यह होता है कि जबतक पुनर्विचार न हो जाय, तबतक मूल प्रस्तावसे सम्बन्ध रखनेवाले कोई काम नहीं किये जा सकते। परन्तु यदि यह प्रस्ताव लिख लिया गया हो, पर उसके पेश करनेकी प्रार्थना न की गयी हो तो मूल प्रस्तावपर किया जानेवाला कार्य केवल उस अधिवेशनतक ही रुका रहेगा। उसके बाद पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव व्यर्थ हो जायगा और मूल प्रस्तावपर अमल करनेका अधिकार सभाको मिल जायगा। परन्तु जिन संस्थाओंमें नियमित रूपसे अधिवेशन होते हों (जिनकी अवधि तिमाहीसे अधिक न हो) इन संस्थाओंके दूसरे अधिवेशनतक इसका प्रभाव चल सकता है। जबतक ये प्रभावमें रहते हैं, तबतक इनके पेश करने की प्रार्थना की जा सकती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि जब पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है, तब मूल प्रस्ताव उस रूपमें सभाके सामने आता है, जो रूप उसपर वोट लेनेके पहिले था। परन्तु यदि निषेधार्थक प्रस्तावके समय लिये गये वोटोंपर पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव स्वीकार किया जाय तो मूल प्रस्तावपर निषेधार्थक प्रस्तावका प्रभाव न माना जायगा बशर्ते कि पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश करनेके पहिले उन तमाम प्रश्नोंपर वोट ले लिये गये हों, जो निषेधार्थक प्रस्तावकी सीमामें आते हैं। स्थायी समितियों और विशेष समितियोंके वोटोंपर किसी समय भी पुनर्विचार किया जा सकता है। उसमें अवधिका प्रतिबन्ध नहीं रहता। परन्तु शर्त यह अवश्य रहती है कि पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश किया जाय उसी सदस्यकी ओरसे, जिसने

अल्पमतके साथ वोट न दिये हों और बहुमतवाले सब सदस्य या तो उपस्थित हों या उन्हें इस बातकी सूचना दी जा चुकी हो कि अमुक विषयपर पुन-र्विचार करना है। पूरी सभाकी कमेटीमें (Committee of the whole) दिये गये वोटोंपर पुनर्विचार नहीं किया जा सकता।

कभी-कभी सभाओंमें विशेषकर ऐसी स्थायी संस्थाओंमें जिनमें कोरम संख्या कम रहती है, ऐसे प्रसंग आते हैं कि उस समय उपस्थित बहुमत (जो सभाके सदस्योंका वास्तविक बहुमत नहीं है) किसी ऐसे विषयको स्वीकृत कर लेता है जो अनिष्ट होता है और उपस्थित अल्पमत (जो वास्तवमें सभा के सदस्योंका बहुमत है) संख्याकी कमीके कारण निरुपाय हो जाता है। उस दशामें यदि वोट लेनेके बाद पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश करके उसको मन्त्री द्वारा कार्यवाहीमें लिखा दिया गया हो, तो ऐसा अवसर उपस्थित किया जा सकता है कि दूसरे दिन अल्पमतके लोग अपने मतके अन्य सदस्योंको बुला कर अपने अनुसार प्रस्ताव स्वीकृत करा लें। इस प्रकार यह प्रस्ताव अल्पमत की रक्षाके लिये भी उपयोगी होता है। जब ऐसी परिस्थिति हो तब प्रस्ताव लिखकर ही छोड़ देना चाहिये, उसे पेश करनेकी प्रार्थना उस दिन न करके दूसरे दिन करनी चाहिये। ऐसी अवस्थामें उस समयके अल्पमतवालोंमेंसे एक आध आदमीको मूल प्रस्तावके बहुमतवालोंकी ओरसे वोट देना चाहिये ताकि उसे पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश करनेका मौका मिले। और प्रस्ताव इस रूपमें पेश करना चाहिये—"मैं प्रस्ताव करता हूँ कि अमुक प्रस्तावके वोटोंपर पुन-र्विचार किया जाय और यह कार्य-विवरणमें लिख लिया जाय।" इससे उस मूल प्रस्तावपर होनेवाली कार्यवाही रुक जायगी और फिर दूसरे दिन वह सभासद अपने पक्षके आदमियोंको बुलाकर अपने इच्छानुसार परिवर्तन करा

सकेगा। यदि तात्कालिक अल्पमतके किसी सदस्यने उस समयके बहुमतके साथ वोट न दिया हो तो वह पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव उपस्थित न कर सकेगा। परन्तु वह उसी समय यह सूचना दे सकता है कि आगामी बैठकमें वह उस प्रस्तावको रद्द करनेका प्रस्ताव पेश करेगा। इससे भी काम किसी हदतक रुक सकता है।

कभी-कभी कुछ लोग केवल परेशान करनेके लिये इस प्रकारका प्रस्ताव उपस्थित करते हैं। जब मूल प्रस्तावपर आगामी बैठकके पहिले ही अमल कर डालना आवश्यक हो, तब यदि शरारतन कोई सदस्य उपरोक्त ढंगका प्रस्ताव उपस्थित करे तो अन्य सदस्योंको चाहिये कि वे तुरन्त यह प्रस्ताव उपस्थित करें कि आजकी सभा जब स्थगित हो तब उसकी दूसरी बैठक अमुक दिन (ऐसा दिन निर्देश किया जाय, जब पुनर्विचारार्थक प्रस्तावपर विचार करके मूल प्रस्तावपर अमल करनेके लिये पर्याप्त समय रह जाय) की जाय। इससे उन अड़ंगेबाजोंका अभिप्राय नष्ट हो जायगा।

'पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव और उसका कार्य-विवरणमें उल्लेख' उसी दिन उपस्थित किया जा सकता है, जिस दिन मूल प्रस्तावपर वोट लिये गये हों। इसके अतिरिक्त प्रस्तावका यह विशेष रूप उस समय भी पेश किया जा सकता है, जब साधारण पुनर्विचारार्थक प्रस्तावपर वोट ले लिये गये हों; परन्तु उनका परिणाम घोषित न किया गया हो। जब यह पेश होता है तो साधारण रूप दब जाता है। यह रूप उन्हीं वोटोंके सम्बन्धमें पेश किया जा सकता है, जो मूल प्रस्तावके अन्तिम निर्णयपर दिये गये हों, अर्थात् जिन वोटोंके बाद फिर मूल प्रस्तावके सम्बन्धमें कोई बात विचारार्थ बाकी न रह जाती हो। जहांपर ऐसी संस्थाएं हों, जिनकी बैठकें नियमित रूपसे होती हों, वहां सबसे अन्तवाली

बैठकमें यह प्रस्ताव नहीं उपस्थित किया जा सकता; क्योंकि उसके बाद उस सभाकी बैठककी आशा ही नहीं रहती। प्रस्तावका यह रूप जिस दिन पेश किया गया हो, उसी दिन इसको विचारार्थ उपस्थित करनेकी प्रार्थना नहीं की जा सकती। परन्तु यदि किसी संगठित संस्थाकी अन्तिम बैठकमें यह पेश किया गया हो तो यह प्रार्थना की जा सकती है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस प्रस्तावको वही आदमी पेश कर सकता है, जिसने बहुमतके साथ वोट दिया है। परन्तु इसका समर्थन कोई भी सदस्य कर सकता है। यह प्रस्ताव उस समय भी पेश किया जा सकता है, जब दूसरा विषय छिड़ा हुआ हो। दूसरे आदमीको वक्तृताधिकार मिल चुका हो, तब भी यह प्रस्ताव पेश किया जा सकता है, और उस समय भी पेश किया जा सकता है, जब सभा स्थगित करनेका प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका हो, परन्तु स्थगित करनेकी घोषणा न की गयी हो। यह उस समय भी उपस्थित किया जा सकता है, जब निषेधार्थक प्रस्तावकी स्वीकृति दी जा चुकी हो। इस दशामें यह प्रस्ताव तथा मूल प्रस्ताव, दोनों वादविवादके योग्य हो जाते हैं। यद्यपि पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव, पेश होनेकी अवस्थामें अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है, तथापि विचार करनेमें वह उसी कोटिका माना जाता है, जिस कोटिका प्रस्ताव वह होता है, जिसपर पुनर्विचार करना है। पुनर्विचारार्थक प्रस्तावपर न संशोधन किया जा सकता है, न अनिश्चित समयके लिये यह स्थगित किया जा सकता है, न किसी कमेटीके सुपुर्द किया जा सकता है। यदि पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव रोक रखा जाय (Laid on the table) या एक निश्चित समयके लिये स्थगित कर दिया जाय (Postpone deffinitely) तो जिस प्रस्तावपर पुनर्विचार करना है, वह प्रस्ताव तथा उसके

साथके अन्य प्रस्ताव भी उस समयके लिये स्थगित हो जायंगे। जब यह वादविवादके योग्य हो जाता है, तब इसके सम्बन्धमें निषेधार्थक प्रस्ताव और वादविवाद-नियंत्रक प्रस्ताव उपस्थित किये जा सकते हैं। जब यह विवाद योग्य होता है, तब इसके साथ मूल प्रस्तावके गुण-अवगुणोंपर भी वादविवाद हो सकता है। यदि इसके पेश हो जानेके बाद इतना समय बीत जाय कि फिर नये रूपमें प्रस्ताव उपस्थित न किया जा सके, तो यह वापस नहीं किया जा सकता। यदि यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है, तो जबतक सभाकी प्रायः सर्वसम्मति न मिले, तबतक यह दुबारा पेश नहीं किया जा सकता। किसी प्रश्नपर यदि एक बार पुनर्विचारका प्रस्ताव आ चुका हो तो दुबारा उसी प्रश्नपर पुनर्विचारका प्रस्ताव साधारणतः नहीं आ सकता। परन्तु यदि पहिले पुनर्विचार के पश्चात् मूल प्रश्नमें इतना परिवर्तन हो गया हो कि उसका रूप ही बहुत कुछ बदल गया हो, तो उसपर दुबारा पुनर्विचारका प्रस्ताव आ सकता है। पुनर्विचारके प्रस्तावकी स्वीकृतिके लिये केवल बहुमतकी आवश्यकता होती है, चाहे उस सम्बन्धके मूल प्रस्तावके लिये दो-तिहाई या अधिक वोटोंकी ही आवश्यकता क्यों न होती हो।

पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव उन प्रस्तावोंपर लिये गये वोटोंके सम्बन्धमें पेश नहीं किया जा सकता, जो उपयुक्त अवधिके अन्दर दुबारा पेश किये जा सकते हैं, और न यह उसी समय पेश किया जा सकता है, जब उसका काम किसी अन्य प्रस्तावसे निकल सकता हो। इसी प्रकार जब किसी विषयपर (वाद-बिवाद-नियंत्रक प्रस्तावको छोड़कर) कुछ वोट लिये जा चुके हों, या पहिले वोट लेनेके बाद इस सम्बन्धमें कोई ऐसा काम सभा द्वारा किया जा चुका हो, जिसका निराकरण सम्भव न हो, या किसी कण्ट्राक्टकी स्वीकृतिके रूपमें वोट

दिये जा चुके हों; और उसके अनुसार, जिसके साथ कण्ट्राक्ट करना है, उसे सूचना दी जा चुकी हो, तब भी पुनर्विचारका प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता। पुनर्विचारके प्रस्तावपर भी पुनर्विचारका प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता। इस सिद्धान्तके अनुसार सभा स्थगित करने, विश्रामावकाश लेने, प्रस्ताव रोक रखने, रोके हुए प्रस्तावको पेश करने, नियम स्थगित करने और पुनर्विचार करनेके प्रस्तावोंपर पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार निम्नलिखित प्रस्तावोंपर स्वीकृति देनेवाले वोटोंपर भी पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव नहीं पेश किया जा सकता। वे प्रस्ताव ये हैं :— कार्यक्रमके अनुसार कार्य करनेका प्रस्ताव; किसी नियम, विधान आदि ऐसे नियमोंको, जिनके संशोधनके लिये पूर्व सूचना आवश्यक हो, स्वीकार करने, या स्वीकार करनेके बाद संशोधन या रद्द करनेके प्रस्ताव; रिक्त स्थानके लिये नये व्यक्तिके निर्वाचनका प्रस्ताव और दुबारा नामज़दगीके प्रस्ताव। यदि किसी प्रश्नके सम्बन्धमें आये हुए अनिश्चित समयतकके लिये स्थगित करनेके प्रस्तावका विरोध हुआ हो तो उस विरोधात्मक वोटपर पुनर्विचारका प्रस्ताव उपस्थित नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसकी स्वीकृतिके बाद भी जब मूल प्रस्तावोंपर वोट लिये जायंगे, तब लगभग वही प्रश्न उपस्थित किया जायगा। यदि किसी प्रश्नके सम्बन्धमें, जो उसे सुपुर्द किया गया हो, समितिने काम करना आरम्भ कर दिया हो तो उस प्रश्नपर पुनर्विचारका प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता। हां, यदि आवश्यकता समझी जाय तो समिति अधिकार च्युत भले की जा सकती है। परन्तु यदि वादविवाद-नियंत्रक प्रस्तावके अनुसार वादविवाद आरम्भ हो चुका हो तो वादविवाद-नियंत्रक प्रस्तावके वोटोंपर पुनर्विचारका प्रस्ताव आ सकता है, क्योंकि उस दशामें वादविवादके

द्वारा ऐसी बातें सामने आ सकती हैं, जो वादविवादके प्रचलित नियमोंका पालन करनेकी ओर ध्यान देना आवश्यक कर दें। कार्य-विवरण (संक्षिप्त और विस्तृत) किसी समय भी बिना उनकी स्वीकृतिके वोटोंपर पुनर्विचार किये हुए ही सुधारे जा सकते हैं।

यदि मूल प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो और उसके उप-प्रस्तावों, प्रसंगजन्य प्रस्तावों अथवा अधिकारात्मक प्रस्तावोंपर लिये गये वोटोंके पुनर्विचारका प्रस्ताव उपस्थित किया जाय तो उचित समय होते ही सभापति उसे विचारार्थ पेश करेगा। इस प्रकार जब समितिके सुपुर्द करनेका प्रस्ताव, निषेधार्थक प्रस्ताव, प्रस्तावको रोक रखनेका प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो, तब यदि एक निश्चित समयतक स्थगित करनेके प्रस्तावपर लिये गये नकारात्मक वोटोंपर पुनर्विचार करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया जाय; तो सभापति सबसे पहिले प्रस्तावको रोक रखनेके प्रस्तावपर वोट लेगा, और जब वह गिर जायगा, तब निषेधार्थक प्रस्तावपर वोट लेगा, और उसके बाद स्थगित करनेके वोटोंपर पुनर्विचारार्थक प्रस्तावपर वोट लेगा। और जब यह पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जायगा, तब स्थगित करनेके प्रस्ताव, और यदि वह गिर जाय तो सुपुर्द करनेके प्रस्तावपर वोट लेगा। यदि प्रश्नको रोक रखनेका प्रस्ताव स्वीकृत हो जाय तो जिस समय यह रोका हुआ प्रश्न फिर पेश किया जायगा, तब उसी विधिसे वोट लिये जायंगे, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यदि किसी संशोधनके छिड़े हुए होनेपर पूर्व स्वीकृत संशोधनके वोटोंपर पुनर्विचा-रार्थक प्रस्ताव रखा गया हो तो पहिले उस छिड़े हुए संशोधनपर विचार कर लिया जायगा, तब पहिलेवालेपर पुनर्विचार किया जायगा। यदि किसी ऐसे विषयके संशोधनपर पुनर्विचार करनेका प्रस्ताव आया हो, जो उस समय

छिड़ा हुआ हो तो सभापति पुनर्विचारवाले प्रस्तावपर तुरन्त विचार करेगा। यदि ऐसे समय पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश किया गया हो, जब सभामें किसी अन्य विषयपर विचार हो रहा हो तो उस प्रस्तावके द्वारा छिड़ा हुआ प्रश्न रोका नहीं जा सकता। परन्तु उसके समाप्त होते ही पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश किया जायगा। परन्तु ऐसी अवस्थामें यह आवश्यक है कि कोई सदस्य उस समय उस प्रस्तावको पेश करनेकी प्रार्थना करे। यदि ऐसे समय पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश किया जाय, जब किसी अन्य सदस्य द्वारा या उसी सदस्य द्वारा पहिलेसे किया गया पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश करनेकी प्रार्थना की जा सकती हो तो सभापति तुरन्त पुनर्विचारवाले प्रश्नको पेश करेगा। परन्तु यदि प्रस्तावक पुनर्विचारार्थक प्रस्तावके साथ यह भी जोड़ दे कि यह प्रस्ताव कार्य-विवरणमें लिख लिया जाय तो उसे तुरन्त पेश करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। यदि किसी मूल प्रस्तावपर वोट ले लिये जानेके बाद उसके किसी संशोधनपर पुनर्विचार करनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो ऐसा प्रस्ताव पेश करना चाहिये, जिससे मूल प्रस्ताव और संशोधन, दोनोंपर पुनर्विचार किया जा सके। इसी रीतिका पालन उस समय किया जाता है, जब संशोधन और अन्तः संशोधनकी यह अवस्था हो। इस प्रकार जब पुनर्विचारार्थक प्रस्तावसे दो-तीन (प्रकारके) वोटोंपर विचार करना होता है, तब वाद-विवाद केवल उसी विषयपर होता है, जिसपर पहिले वोट लिये गये हों। इस प्रकार प्रस्ताव, संशोधन और अन्तः संशोधन—तीन—वोटोंपर पुनः विचार करना हो तो वाद-विवाद अन्तः संशोधनपर ही होगा। जब पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव स्वीकार हो जाता है, तब उपरोक्त अवस्थामें, सभापति अन्तःसंशोधनको विचारार्थ पेश करता है, और उसपर

बोलनेका सर्वप्रथम अधिकार होता है पुनर्विचारार्थक प्रस्तावके प्रस्तावकको। इसके बाद प्रश्न अपने उस रूपमें आ जाता है जिस रूपमें उस संशोधनपर वोट लेनेके पहिले था और उसपर नियमित कार्यवाही की जाती है।

(३) *स्वीकृत प्रस्ताव रद्द करना*—जो प्रस्ताव पहिले पास किये जा चुके हैं वे (कुछको छोड़कर जिनका वर्णन आगे किया जायगा) आगे चलकर रद्द किये जा सकते हैं। इसके लिये यदि पिछली बैठकमें अथवा उस बैठककी सूचनाके साथ सूचना दी जा चुकी हो, तब तो प्रस्ताव रद्द करनेके प्रस्तावपर यदि बहुमत आ जाय तो वह रद्द हो जायगा। परन्तु यदि पूर्व सूचना न दी गयी हो तो वह तिहाई वोटोंसे अथवा सभाके सब सदस्योंकी सम्मिलित संख्याके हिसाबसे बहुमत द्वारा पूर्व स्वीकृत प्रस्ताव रद्द किये जा सकते हैं। ऐसा हो सकता है, कि इस प्रस्तावकी सूचना उस समय दी जाय जब कोई अन्य विषय छिड़ा हुआ हो, परन्तु इससे उस प्रश्नके विचारमें बाधा नहीं डाली जा सकती। रद्द करनेका प्रस्ताव उस संशोधनके समान है जिसमें किसी पूर्व स्वीकृत प्रस्तावको पूराका पूरा निकाल डालनेकी बात कही जाती है, और सूचना तथा मतगणना आदिमें इसपर उसी संशोधनकी भांति काम किया जाता है। यह विशेष अधिकार विहीन प्रधान प्रस्ताव है, और उसी समय पेश किया जा सकता है, जब सभाके सामने कोई अन्य प्रश्न विचारार्थ उपस्थित न हो। परन्तु यदि पुनर्विचारार्थक प्रस्तावके द्वारा मूल विषय फिरसे विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता हो, तो इस प्रस्तावका प्रयोग न किया जा सकेगा। इसे कोई भी सदस्य पेश कर सकता है। इसपर वाद-विवाद भी हो सकता है और अधिकारात्मक प्रस्तावों एवं प्रसंगजन्य प्रस्तावोंको इसपर तरजीह दी जाती है। इनमें सुविधाजनक प्रस्ताव भी उपस्थित किये

जा सकते हैं। साधारणतः रद्द करनेका प्रस्ताव तमाम प्रधान प्रस्तावोंके सम्बन्धमें जिनमें अधिकारके प्रश्न तथा अपील आदि भी शामिल हैं, पेश किया जा सकता है। परन्तु निम्नलिखित अवस्थाओंमें रद्द करनेका प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता:—

जब उस प्रस्तावकी, जिसे रद्द करना है, स्वीकृतिके कारण ऐसा काम हो चुका हो जिसका सभा निराकरण न कर सकती हो,अथवा जब वह वादा करनेके ढंगका प्रस्ताव हो जिसकी सूचना उस व्यक्तिको दी जा चुकी हो, जिसके प्रति वादा किया गया है, अथवा जब किसीका इस्तीफा मंजूर कर लिया गया हो या कोई निर्वाचित कर लिया गया हो और वह या तो उस समय सभामें उपस्थित रहा हो अथवा इस कार्यकी सूचना उसे दी जा चुकी हो तो इन अवस्थाओंमें वोट रद्द करनेका प्रस्ताव नहीं आ सकता। यदि किसी निकाले हुए आदमीको फिर लेना हो तो उसका निर्वाचन नये आदमीकी भाँति किया जा सकता है।

जब किसी प्रस्तावके रद्द करनेकी साधारण बात ही भर न हो बल्कि उसके प्रति घोर अस्वीकृति प्रकट करना भी हो तो उसे रद्द करने और उसको कार्य-विवरणसे निकाल डालनेका प्रस्ताव किया जाता है और उसकी स्वीकृति की अवस्थामें मन्त्री कार्य-विवरणके उस स्थानपर रेखाएँ खींचकर साफ-साफ शब्दोंमें अपने हस्ताक्षरोंके साथ यह लिख देगा कि यह स्थल सभाके आदेशानुसार कार्य-विवरणसे निकाल डाला गया। परन्तु यह काम उसी समय हो सकता है जब सभाके समस्त सदस्योंके सम्मिलित बहुमतसे निकाल डालनेका प्रस्ताव पास किया जाय। अन्यथा यदि कोरम पूरा हो और सब-के-सब उपस्थित सदस्यतक इस प्रस्तावके पक्षमें वोट दें, तो भी यह नहीं निकाला जा

सकता बशर्ते कि यह कार्य-विवरणमें ठीक ढंगसे लिखा जा चुका हो और वह विवरण सभाद्वारा पहिले स्वीकृत हो चुका हो।

प्रस्तावका दुबारा पेश करना—(Renewal of a motion) जब कोई प्रधान प्रस्ताव या संशोधन स्वीकृत या अस्वीकृत हो गया हो, या कोई प्रधान प्रस्ताव अनिश्चित समयके लिये स्थगित कर दिया गया हो, या आपत्ति करनेपर उसपर विचार करना रोका जा चुका हो, तब वे या प्रायः वैसे ही दूसरे प्रस्ताव सभाके उसी अधिवेशनमें नहीं पेश किये जा सकते। हां पुनर्विचारार्थक अथवा रद्द करनेके प्रस्ताव उपस्थित करके उनपर विचार किया जा सकता है। परन्तु उस अधिवेशनके बाद अन्य अधिवेशनमें वे पुनः पेश किये जा सकते हैं। संगठित संस्थाओंमें, जिनमें नियमित रूपसे कम-से-कम त्रैमासिक बैठकें होती हैं, कोई प्रधान प्रस्ताव निम्नलिखित अवस्थाओंमें उस समयतक पुनः उपस्थित नहीं किया जा सकता, जबतक कि दूसरा अधिवेशन समाप्त न हो जाय। वे अवस्थाएँ ये हैं:—यदि पहिली मीटिंगमें वह प्रस्ताव दूसरी मीटिंगके लिये स्थगित कर दिया गया हो, अथवा रोक रखा (Lay on the table) गया हो, अथवा स्वीकार या अस्वीकार या अनिश्चित समयके लिये स्थगित किया जा चुका हो और पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव पेश होकर उसपर कोई कार्यवाही न की गयी हो, आदि। परन्तु जिन सभाओंमें नियमित बैठकें कम-से-कम त्रैमासिक नहीं होतीं, उनमें ऐसा कोई प्रस्ताव जो आगामी बैठकके लिये स्थगित न किया गया हो या कमेटीके सुपुर्द न किया गया हो तो दूसरी बैठकमें पुनः उपस्थित किया जा सकता है। स्थगित करनेके प्रस्ताव, विश्रामावकाश लेनेके प्रस्ताव, प्रस्ताव रोक रखनेके प्रस्ताव पर्याप्त कार्यवाही बीचमें हो जानेपर बारबार पेश किये जा सकते हैं। इनपर वोट लेना प्रस्तावको पुनः उप-

स्थित करना नहीं माना जाता। अनिश्चित समयके लिये स्थगित करनेका प्रस्ताव या संशोधन भी उसी अधिवेशनमें पुनः उपस्थित नहीं किया जा सकता। परन्तु अन्य उप-प्रस्ताव उस दशामें उसी अधिवेशनमें दुबारा उपस्थित किये जा सकते हैं, जब बीचमें इतनी और ऐसी कार्यवाही हो चुकी हो, जिससे वह प्रश्न ताजा मालूम पड़े। रोके हुए प्रस्तावको पेश करने और कार्यक्रमके अनुसार काम करनेके प्रस्ताव उस समय दोहराये जा सकते हैं, जब उस प्रश्नपर, जो उस समय छिड़ा हुआ था, जब उक्त प्रस्ताव एक बार अस्वीकार किये जा चुके थे, विचार किया जा चुका हो। परन्तु अनिश्चित समयके लिये स्थगित करनेका प्रस्ताव नहीं दोहराया जा सकता, चाहे उसके अस्वीकार करनेके बाद मूल प्रस्तावमें संशोधन भी क्यों न हो गये हों। यदि किसी विषयपर उठाया गया अधिकार का प्रश्न (Point of order) एक बार गिर गया हो तो उसी सभामें उसी या उसी प्रकारके अन्य प्रश्नपर फिर वह प्रश्न न उठाया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि किसी निर्णयपर अपील हो चुकनेके बाद भी सभापतिने अपने निर्णयको नियमित माना हो तो फिर उसी प्रकारके निर्णयपर उस सभामें दुबारा अपील भी न की जा सकेगी। कार्य-विवरणका सुधार हर हालतमें दुबारा हो सकता है। चाहे जितना समय बीत गया हो और चाहे पहिले कार्य-विवरणके संशोधनका प्रस्ताव गिर भी चुका हो।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी समितिके सुपुर्द किया गया विषय उसी मीटिंगमें समितिकी रिपोर्टके साथ पेश हो जाता है, अथवा रोक रखा गया (Laid on the table) प्रस्ताव उसी मीटिंगमें फिर पेश किया जाता है। (Taken from the table) उस अवस्था में उनपर नियमित रूपसे विचार किया जा सकता है। वह प्रस्तावका पुनः

उपस्थित करना नहीं है। निम्नलिखित प्रस्ताव यदि वे वापस न लिये गये हों, तो, उसी अधिवेशनमें पुनः उपस्थित नहीं किये जा सकते—किसी मौलिक प्रधान प्रस्तावको स्वीकार करना या अनिश्चित समयके लिये स्थगित करना, संशोधन, पुनर्विचारार्थक प्रस्ताव (यदि पुनर्विचारणीय प्रश्न प्रथम बार पुन-र्विचारार्थक प्रस्ताव उपस्थित करनेके बाद काफी परिवर्तित हो गया हो तो उस दशाको छोड़कर) किसी प्रश्नपर विचार करनेपर एतराज करना, एक ही समयके लिये सभा स्थगित करना, (यदि स्थगित करनेका समय बदल दिया जाय तो यह दुबारा पेश किया जा सकता है।) उसी बैठकमें उसी उद्देश्यसे नियमोंको स्थगित करना (हालांकि दूसरी मीटिंगमें चाहे वह उसी दिन क्यों न हुई हो, यह दुबारा पेश किया जा सकता है।) इन प्रस्तावोंके सम्बन्ध में सभापतिको इसलिये सावधान रहनेकी आवश्यकता है कि लोग इस अधि-कारका दुरुपयोग न करें। और यदि कोई सदस्य केवल कार्यमें बाधा डालनेके लिये इन्हें पेश करे, तो सभापतिको चाहिये कि वह उन प्रस्तावोंको पेश करने की अनुमति न दे।

५ *समर्थनात्मक प्रस्ताव*—(Ratify) यह भी प्रधान प्रस्ताव है और उस समय पेश किया जाता है, जब किसी ऐसे कामके लिये, जिसमें सभाका समर्थन आवश्यक है, सभाका समर्थन प्राप्त करना होता है। सभाको केवल ऐसे ही कार्योंका समर्थन करना चाहिये, जिनका आदेश देनेका उसे अधिकार हो। परन्तु अपने नियमोंके विरुद्ध किये गये कार्योंका समर्थन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सरकारी कानूनोंका उल्लंघन करनेवाले कार्योंका समर्थन भी नहीं करना चाहिये। परन्तु यदि कोई आवश्यक कार्य हो और बिना कोरमके ही वह कर डाला गया हो, यद्यपि नियमानुसार कोरमका उप-

स्थित होना आवश्यक माना गया हो, तो इस अवस्थामें सभाद्वारा समर्थन किया जा सकेगा। इसी प्रकार आवश्यकताके अनुसार सभाके हितके लिये यदि और भी काम कर डाले गये हों, जो वास्तवमें चाहे नियमोंके थोड़ा विरुद्ध भी चले गये हों तो उनका भी समर्थन कर लेना चाहिये। परन्तु इसके बहाने नियमकी बड़ी और महत्वपूर्ण अवहेलना न होनी चाहिये। कौनसा कार्य समर्थन योग्य है, कौन नहीं यह विवेकसे जाना जा सकता है। समर्थनके प्रस्तावपर उस कार्यकी निन्दा करनेके अभिप्रायसे संशोधन पेश किया जा सकता है। यह विवाद योग्य है और इसके पेश होनेपर तमाम कार्य या प्रश्न विवादके लिये उपस्थित किया जा सकता है।

६ *अनर्गल और व्यर्थके प्रस्ताव*——कभी-कभी सभामें अनर्गल और व्यर्थके प्रस्ताव भी उपस्थित किये जाते हैं। जैसे मान लीजिये सभामें यह प्रस्ताव उपस्थित है कि अमुक तारीखको अमुक सज्जन यहां आ रहे हैं, उनका भाषण अपनी सभामें कराया जाय। अब यदि कोई व्यक्ति यह संशोधन प्रस्ताव उपस्थित करे कि यह प्रश्न समितिके सुपुर्द कर दिया जाय, तो यह व्यर्थ है; क्योंकि इसमें न तो किसी बातका अनुसन्धान करना है, न कोई ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न ही है, जिसपर बड़े गम्भीर विचारकी आवश्यकता है। ऐसे प्रस्ताव सभामें अनियमित करार दे दिये जाने चाहिये। इसी प्रकार जब जानबूझ कर सभा-विधानद्वारा प्रदत्त अधिकारोंका दुरुपयोग करके कोई सदस्य विशेष अधिकार प्राप्त प्रस्तावोंको—स्थगित करना, विभाजन (Division) की मांग पेश करना, सभापतिके आदेशोंपर अपील करना आदि प्रस्तावोंको— बार-बार दोहरा कर काममें बाधा डाल रहा हो, तब या तो सभापति उस प्रकार बाधा डालनेवालेको वक्तृताधिकार न देकर वैसे ही रोक सकता है, अथवा इसके प्रस्तावोंको अनियमित करार दे सकता है।

७ *सदस्योंको उपस्थितिके लिये मजबूर करना*---साधारण सभाओंको यह अधिकार नहीं होता कि वे अपने सदस्योंको उपस्थित होनेके लिये मजबूर करें; परन्तु कुछ विशेष सभाएँ ऐसी अवश्य होती हैं, जो अपने सदस्योंको उपस्थित होनेके लिये मजबूर कर सकती हैं। ऐसी सभाएँ अब दिन प्रतिदिन कम होती जा रही हैं और भारतवर्षमें तो इनका अभाव ही है। ऐसी सभाओंमें यदि कोरम पूरा न भी हो, तो भी कुछ विशिष्ट व्यक्तियोंका समुदाय अनुपस्थित सदस्योंको उपस्थितिके लिये मजबूर कर सकता है। इसके लिये साधारण नियम यह है कि यदि सभामें कोरम पूरा न हो और उपस्थित सदस्योंमेंसे निर्वाचित सदस्योंकी पूर्ण संख्याका एक पंचमांश उपस्थित हो तो सभा अपने बहुमतसे अनुपस्थित सदस्योंको उपस्थित होनेके लिये मजबूर करनेका प्रस्ताव पास कर सकती है। और उसके बाद साधारणतः उस समयतक कोई कार्यवाही नहीं होती, जबतक कि कोरमभरके लिये सदस्य नहीं आ जाते। यदि कोरम पूरा हो तो अधिकारात्मक प्रस्तावोंकी भांति सदस्योंको बुलानेका प्रस्ताव बहुमतसे पास किया जा सकता है, परन्तु यदि यह एकबार अस्वीकृत हो जाय, तो दोहराया नहीं जा सकता। जब सदस्य बुलानेका प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है, तब जबतक इस विषयकी सब कार्यवाही समाप्त नहीं हो जाती, तबतक स्थगित करनेके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारका प्रस्ताव नियमित नहीं माना जाता। इस अवस्थामें सभा स्थगित करनेके पहिले और कोई काम तो नहीं हो सकता; परन्तु यदि कोरम पूरा हो तो जितने सदस्य उस प्रस्तावके अनुसार गिरफ्तार करके आये हैं, उनसे यह कहा जा सकता है कि स्थगित मीटिंगमें अपनी अनुपस्थितिका कारण बतावें।

इस प्रस्तावके सम्बन्धमें कार्यवाही यों होती है:—जब प्रस्ताव पास हो

जाता है, तब क्लार्क अक्षरानुक्रमसे एक-एक करके सब सदस्योंके नाम पुकारता है और अनुपस्थित लोगोंका नाम लिखता जाता है। इसके बाद फिर वह केवल अनुपस्थित लोगोंके नाम पुकारता है और यदि उनमेंसे कोई आ गये हों तो उन्हें अनुपस्थितिका कारण बतानेका मौका देता है। इसके बाद सभा-भवनके दरवाजे बन्द कर दिये जाते हैं और कोई सदस्य बाहर नहीं जाने पाता। फिर अनुपस्थित लोगोंके नाम लगभग इस मजमूनका एक वारण्ट जाता है—"आज्ञा दी गयी है कि पुलिसका अधिकारी ऐसे सदस्योंको, जो बिना आज्ञा अनुपस्थित रहे हैं, गिरफ्तार करके सभाके सामने पेश करे।" इस मजमूनपर सभापतिके हस्ताक्षर होंगे, उसके बाद मन्त्रीके हस्ताक्षरोंके सहित अनुपस्थित सदस्योंकी नामावली इसके साथ जोड़ दी जायगी। इसे लेकर पुलिसका अधिकारी उन सदस्योंकी गिरफ्तारीके लिये तुरन्त जायगा। और गिरफ्तार करके सब सदस्योंके साथ सभापतिके सम्मुख उपस्थित होगा। उस समय सभापति प्रत्येक सदस्यसे जवाब-तलब करेगा और उसपर जुर्माना या फीस लगाकर उसे गिरफ्तारीसे मुक्त करेगा। फिर उसे सभामें बैठनेका अधिकार मिल जायगा। परन्तु यदि कोई सदस्य फीस दाखिल न करेगा, तो उसे सभामें भाग लेनेका कोई अधिकार न होगा।

सुविधाजनक प्रस्ताव

जो प्रस्ताव किसी अन्य मूल प्रस्तावके सम्बन्धमें इसलिये पेश किये जाते हैं जिससे मूल प्रस्ताव पर कार्यवाही करना अधिक सुविधाजनक हो जाय इन्हें सुविधाजनक प्रस्ताव (subsidiary motions) कहते हैं । सुविधाजनक प्रस्तावोंके द्वारा मूल प्रस्ताव संशोधित किया जा सकता है, उसपर किया जानेवाला कार्य स्थगित किया जा सकता है, या किसी कमेटीके सुपुर्द इसलिए किया जा सकता है, कि वह उस विषयपर अनुसंधान करे और अपनी रिपोर्ट पेश करे । ये किसी भी प्रधान प्रस्तावके सम्बन्धमें पेश हो सकते हैं और जब ये पेश होते हैं ; तब मूल प्रस्तावके पूर्व ही इनपर विचार किया जाता है । परन्तु इनमेंसे संशोधन, वाद विवादको बन्द करना, घटाना या बढ़ाना आदिके सम्बन्ध के प्रस्तावोंको छोड़कर अन्य किसी प्रकारके सुविधा-जनक प्रस्ताव स्वयं सुविधा-जनक प्रस्तावों, प्रसंग जन्य प्रस्तावों, (कुछ अवस्थाओंमें अपीलको छोड़ कर)

और अधिकारात्मक प्रस्तावोंके सम्बन्धमें पेश नहीं किये जा सकते। सुविधा-जनक प्रस्तावोंमें संशोधन केवल प्रस्तावको रोक रखने (Lay in the table) के प्रस्ताव निषेधात्मक प्रस्ताव (Previous question) और अनिश्चित समयके लिये स्थगित कर देने (Pospone indefinitly) के प्रस्ताव का ही हो सकता है अन्योंका नहीं। बाद विवादकी सीमा निर्धारित करनेके प्रस्ताव किसी भी बिवाद योग्य प्रस्ताव पर लाये जा सकते हैं चाहे उन प्रस्तावोंके अधिकार किसी प्रकारके क्यों न हों। परन्तु इनकी स्वीकृतिके लिये दो तिहाई बोटोंकी आवश्यकता होती है। वाद-विवादकी सीमा निर्धारित करनेके प्रस्तावसे निम्न श्रेणी वाले प्रस्तावोंपर वाद-विवाद किया जा सकता है औरोंपर नहीं। किसी ऐसे प्रश्नको जो सभा द्वारा स्वीकार किया जा चुका है,संशोधित करनेका प्रस्ताव सुविधाजनक प्रस्ताव नहीं माना जाता, वह प्रधान प्रस्ताव हो जाता है। और उस दशामें उसपर अन्य आवश्यक सुविधाजनक प्रस्ताव लाये जा सकते हैं। सुविधाजनक प्रस्ताव तो छिड़े हुए प्रश्नोंके सम्बन्धमें ही लाये जानेवाले प्रस्ताव कहलाते हैं। इस प्रस्ताव श्रेणीमें निम्नलिखित प्रस्ताव आते हैं।—(१) प्रस्ताब रोक रखना (Lay on the table) (२) निषेधात्मक प्रस्ताव Previous question) (३) वाद-विवादका समय बढ़ाने या घटानेका प्रस्ताव (Limit or extend limits of debate) (४) किसी निश्चित समयके लिए अथवा किसी निर्धारित समयके लिए प्रस्ताव स्थगित करनेका प्रस्ताव (Postpone definitely or to a certain time) (५) किसी प्रस्तावको किसी कमेटी आदिके सुपुर्द करना या पुनः सुपुर्द करना (Commit or refer or Recommit) (६) संशोधन (७) अनिश्चित समयके लिए किसी प्रस्तावको स्थगित करना (Postpone

indefinitely) जिस क्रमसे ये प्रस्ताव रखे गये हैं, उसी क्रमसे एकसे दूसरा कम महत्वपूर्ण माना जाता है। अब नीचे इन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें पृथक-पृथक विचार किया जायगा।

(१) *प्रस्ताव स्थगित करना*—(Lay on the table) यह प्रस्ताव ऐसे ही विषयके सम्बन्धमें किया जा सकता है, जो सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित होता है और यह किया उस समय जाता है, जब सभा यह चाहती है कि छिड़े हुए प्रश्नको रोक करके अन्य आवश्यक या उपयोगी विषयों पर विचार किया जाय। जब सभाके सामने ऐसे प्रसंग आयें, तब सभाका कोई भी सदस्य वक्तृताधिकार प्राप्त करके इस प्रकार प्रस्ताव पेश कर सकता है :— "मैं प्रस्ताव करता हूँ कि अमुक प्रस्तावको रोक रखा जाय।" इस प्रस्तावपर किसी प्रकारकी शर्त नहीं रखी जा सकती। मसलन प्रस्तावका यह रूप नहीं हो सकता कि "अमुक प्रस्ताव २ बजे तकके लिए रोक रखा जाय।" क्योंकि उस दशामें वह प्रस्ताव स्थगित (Postpone) करनेका प्रस्ताव हो जायगा और विवाद योग्य हो जायगा। इस प्रकार पेश कर चुकनेके बाद इसपर किसी प्रकारका वादविवाद नहीं होता और इसपर तुरन्त ही वोट ले लिये जाते हैं। यह प्रस्ताव वास्तवमें सभाकी सुविधाके लिये होता है, अतः इसपर तुरत ही वोट ले लेना अच्छा भी होता है। इसलिए जब यह प्रश्न छिड़ जाता है तो अन्य सब प्रकारके विवाद योग्य प्रस्तावोंसे पहिले इसपर विचार किया जाता है। यह बहुमतसे स्वीकृत हो सकता है। कभी-कभी इसका परिणाम यह भी होता है कि जो प्रस्ताव इस प्रकार रोका गया है, वह सदाके लिये दब जाय। इस प्रकार उसका प्रभाव अल्पस्थायी न होकर चिरस्थायी बन जायगा। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, चिरकालके लिये स्थगित कर देनेके प्रस्तावको स्वीकृत

करनेमें दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है। वह काम इस ढंगसे केवल बहुमतके बलपर भी किया जा सकता है। इस लिए कभी-कभी लोग इस अधिकारका दुरुपयोग भी करने लगते हैं। ऐसी दशामें जब दुरुपयोग बढ़ता हुआ दिखलायी दे, तब इसकी स्वीकृति भी दो तिहाई वोटोंसे करनी चाहिये।

यह प्रस्ताव समस्त सुविधाजनक प्रस्तावोंसे तथा अन्य ऐसे प्रसंग-जन्य प्रस्तावोंसे जो सभामें उस समय छिड़े हुए हों, पहिले विचारणीय माना जाता है, परन्तु अधिकारात्मक प्रस्तावों पर, तथा ऐसे प्रसंग-जन्य प्रस्तावोंपर जो इसीके प्रसंगसे उत्पन्न हुए हों, इस प्रस्तावसे पहिले विचार किया जाता है। यह किसी भी प्रधान प्रस्ताव पर, अधिकार तथा दिवसके कार्यक्रमके प्रश्नपर, जब वह सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित हो चुका हो, किसी ऐसी अपीलपर जो मूल प्रश्नके साथ इस प्रकार सम्बद्ध न हो जिससे यदि सभापति अपीलके सम्बन्धमें अपना निर्णय दें तो उससे मूल प्रश्न ही बदल जाय, लागू हो सकता है। पुनर्विचारका प्रश्न यदि तत्काल छिड़ा हुआ हो तो उसपर भी यह लागू हो जायगा और उस दशामें इसके साथ ही वह प्रश्न भी स्थगित हो जायगा जिसपर पुनर्विचार करना था। जिस प्रश्नके सम्बन्धमें स्थगित करनेका इस प्रकारका प्रस्ताव आया हो, उस प्रश्नके साथ और ऐसे प्रश्न भी स्थगित हो जाते हैं जो उससे सम्बद्ध हैं। और फिर जब वे विचारार्थ पुनः उपस्थित किये जाते हैं तो जितने प्रश्न स्थगित किये गये थे सब साथ ही उपस्थित होते हैं। परन्तु यदि कोई प्रस्ताव ऐसे प्रश्नको संशोधित करनेके लिये किया गया हो जो पहिले सभा द्वारा स्वीकृत किया जा चुका है, और उस प्रस्तावको रोक रखनेकी बात स्वीकृत हो गयी है, तो उसके साथ सभा द्वारा पहिलेसे स्वीकृत प्रश्न स्थगित न माना जायगा। यदि किसी विषयपर वादविवाद बन्द हो चुका

हो, तो भी अन्तिम वोट लेनेके समय तक जो प्रश्न सभाके सम्मुख होता है उसे इस प्रस्तावके अनुसार रोका जा सकता है। मान लीजिए कि एक प्रस्ताव पेश है, उसपर संशोधन भी पेश हो चुका है, साथ ही उसे कमेटीके सुपुर्द कर देनेका प्रस्ताव भी छिड़ा हुआ है, इस प्रश्नमालाके सम्बन्धमें निषेधार्थक प्रस्ताव (Previous question) भी स्वीकृत हो चुका है और सुपुर्द करनेके प्रस्तावपर मत लिये जा चुके हैं जिसके परिणाम स्वरूप वह प्रस्ताव अस्वीकृत किया जा चुका है—इतनी सब कार्यवाही हो चुकी हो तब भी यह प्रस्ताव करना न्यायानुमोदित होगा और यदि स्थगित करना स्वीकार किया गया तो मूल प्रस्ताव और उससे सम्बद्ध संशोधन सब स्थगित हो जायंगे।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस प्रकारके प्रस्ताव छिड़े हुए प्रश्नोंपर ही आते हैं। अतः कार्यक्रम, (Orders of the day) या अपूर्ण कार्य, कमेटीकी रिपोर्ट आदि सबको रोक रखनेका प्रस्ताव इसके अनुसार नहीं किया जा सकता। इस प्रकारके कार्योंको रोक कर अन्य प्रश्नपर विचार करनेके लिए तो उपनियमोंको दो-तिहाई वोटोंसे स्थगित करना पड़ेगा। सभाकी प्रायः सर्व-सम्मतिसे यों भी एक कार्यको रोक कर दूसरा उठाया जा सकता है। यदि रोक रखनेका प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया हो, या यदि रोका हुआ प्रस्ताव उठाया गया हो, तो यह समझना चाहिए कि सभा उस विषयपर विचार करना चाहती है। ऐसी दशामें जबतक कोई विशेष आवश्यकता न पैदा हो, अथवा बीचमें 'काफी काम' न हो चुका हो, तबतक उसी दिन, जिस दिन यह अस्वीकृत हो गया हो, यह दुबारा उसी प्रश्नके सम्बन्धमें नहीं लाया जा सकता। मामूली कामोंको, इस प्रस्तावको पेश करनेके लिए काफी होनेवाला काम भी नहीं माना जा सकता। जैसे मान लीजिए कि बीचमें सभा स्थगित करने या

विश्रामावकाश लेनेके प्रस्ताव आ चुके हों, और वे अस्वीकृत कर दिये गये हों, तो केवल इतनेसे यह न माना जायगा कि अब उक्त प्रस्ताव फिर पेश किया जा सकता है। परन्तु यदि उस प्रश्नके किसी महत्वपूर्ण संशोधन अथवा उसे समितिके सुपुर्द कर देनेके प्रस्ताव स्वीकृत हो चुके हों, तो उसके बाद उक्त प्रस्ताव अवश्य उपस्थित किया जा सकता है। रोक रखने (Lay on the table) के प्रस्तावपर लिये गये वोटोंपर पुनर्विचार नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि स्वीकृत कर लिया जाय तो, यदि सभा आवश्यक समझे तो उस प्रश्नको, बीचकी कार्यवाही समाप्त हो जानेपर अथवा जब कोई अन्य प्रश्न न छिड़ा हो, और उसी कोटिकी कार्यवाही, अथवा नयी या अपूर्ण कार्यवाही न्यायानुकूल उपस्थित न की जा सकती हो, तो वह प्रश्न तुरन्त विचारार्थ उठाया (Take from the table) जा सकता है। जब कोई प्रश्न इस प्रकार रोक दिया गया हो, तब उसी विषयका दूसरा प्रस्ताव, जिसका प्रभाव रोके हुए प्रस्तावपर पड़ता हो, पेश न हो सकेगा।

(२) *निषेधार्थक प्रस्ताव*—(Previous question) सभाओं के सामने कभी-कभी ऐसे प्रस्ताव आते हैं, जिनपर सम्मति प्रकट करना अनुपयुक्त या अनुचित प्रतीत होता है। ऐसी अवस्थामें सबसे पहिले तो यह प्रयत्न किया जाता है कि जिस व्यक्तिने वह प्रस्ताव किया है, वह उसे वापस ले ले, और यदि यह प्रयत्न सफल हो जाय तो आगे और कुछ करना नहीं रह जाता। परन्तु यदि प्रस्तावक अपना प्रस्ताव वापस लेनेसे इन्कार करे तो सभाको स्थगित कर देने, वादविवादको रोक देने, दूसरा कार्य आरम्भ कर देने, सभाको विसर्जित कर देने या कार्यक्रमको बदल देनेके प्रस्ताव उपस्थित करके भी वह छिड़ा हुआ प्रश्न टाला जा सकता है। परन्तु जब अवस्था यह हो कि

उस प्रश्नपर वादविवाद होनेसे सभाका कोई हित होनेकी आशा हो या अन्य किसी कारणसे सभाके कुछ सदस्य यह आवश्यक समझते हों कि उसपर वाद-विवाद हो जाय, पर सम्मति न ली जाय; तब वादविवादकी समाप्तिपर निषेधार्थक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। इसका अभिप्राय केवल यह है कि जिस विषयके सम्बन्धमें यह उपस्थित किया गया है, उस विषयपर वोट न लिये जायं। और इसका प्रभाव यह पड़ता है कि इसके पेश होते ही बहस-मुबाहसा समाप्त हो जाता है।

इस प्रस्तावको पेश करनेका ढंग यह है कि जो सदस्य इसे पेश करना चाहता है, वह खड़ा होकर सभापतिको सम्बोधित करता हुआ कहता है—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि अमुक प्रश्न (जिस प्रश्नको हटाना अभीष्ट हो, उसका उल्लेख) पर सम्मति न ली जाय।" या "मैं अमुक प्रश्नपर निषेधार्थक प्रस्ताव उपस्थित करता हूं।" चूंकि इस प्रस्तावपर न वहस की जा सकती है और न संशोधन, इसलिए यह तुरन्त ही सम्मतिके लिए पेश कर दिया जाता है। उस दशामें सभापति कहता है—"अमुक प्रश्नपर निषेधार्थक प्रस्ताव रखा गया है। पक्ष-विपक्षके सदस्य सम्मति दें" और यदि इसके पक्षमें दो-तिहाई वोट आ गये तो यह स्वीकृत कर लिया जाता है। परन्तु यदि एक बारकी गणनामें सन्देह हो तो दुबारा गणना की जायगी। स्वीकृत होनेकी दशामें छिड़ा हुआ मूल विषय तुरन्त हट जाता है और उसपर फिर सम्मति नहीं ली जा सकती। परन्तु यदि वह अस्वीकृत हो जाय तो प्रस्तुत मूल विषयपर वोट लिये जायंगे। अस्वीकृत हो जानेकी दशामें मूल विषयपर वादविवाद या संशोधन होनेके सम्बन्धमें दो रायें हैं। एक यह कि निषेधार्थक प्रस्तावके अस्वीकृत हो जानेपर मूल विषयपर तुरन्त वोट ले लिये जायं, और दूसरी यह कि उसपर

वादविवाद, संशोधन आदि हों और फिर वोट लिये जायं। ये दोनों अवस्थाएं उपयुक्त और अनुपयुक्त हो सकती हैं। यदि मूल विषयपर उस समय निषेधार्थक प्रस्ताव उपस्थित किया गया हो, जब उसपर पर्याप्त विचार किया जा चुका हो—और यही अधिकांशमें होता भी है—तो उपरोक्त दशामें मूल विषयपर तुरन्त वोट ले लेना उपयुक्त होगा। परन्तु यदि निषेधार्थक प्रस्ताव, मूल प्रस्तावपर वादविवादका पर्याप्त अवसर दिये बिना ही पेश कर दिया गया हो—(सभापतियोंको यह अवस्था बचानी चाहिए और निषेधार्थक प्रस्तावको पेश करनेकी आज्ञा पर्याप्त वादविवाद हो जानेके बाद ही देनी चाहिए)—तो उसपर वादविवाद होने देना उपयुक्त होगा। इस सम्बन्धमें पहिली परिपाटी अधिक मान्य है।

निषेधार्थक प्रस्ताव मूल विषयके सम्बन्धमें होता है, उसके संशोधन आदिके सम्बन्धमें नहीं। परन्तु यदि संशोधन आदि होकर मूल प्रस्ताव अपने संशोधित रूपमें सभाके सामने हो, तो उसपर अवश्य यह प्रस्ताव हो सकता है। इस प्रस्तावको, प्रस्ताव रोक रखनेके प्रस्ताव (Lay on the table) को छोड़कर अन्य सब सुविधाजनक प्रस्तावोंपर तरज़ीह दी जाती है। और अधिकारात्मक प्रस्ताव, प्रसंगजन्य प्रस्ताव तथा प्रस्तावको रोक रखने (Lay on the table) के प्रस्ताव इससे पहिले पेश किये जा सकते हैं। इसपर वादविवाद नहीं किया जा सकता और न इसके सम्बन्धमें कोई संशोधन ही उपस्थित किये जा सकते हैं और न कोई अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव ही इसपर लागू हो सकते हैं। इस सम्बन्धमें कुछ लोगोंकी सम्मति है कि इसपर वादविवाद तो किया जा सकता है पर संशोधन नहीं। इसी प्रकार इसके समर्थनके सम्बन्धमें भी मत-भेद है। परन्तु सभाकी सुविधा और समयकी बचतके लिये वादविवादक

अधिकार उठा लेना ही अधिक श्रेयस्कर मालूम पड़ता है। फिर भी इसका समर्थन होना अच्छा है। यह प्रस्ताव कुछ शर्तोंके साथ भी पेश किया जा सकता है। यह अवस्था उस समय आती है जब कोई प्रस्ताव माला सामने हो। उस समय कोई सभासद यह कह सकता है कि प्रस्तावमालाके अमुक भागपर वोट न लिये जायं। जब इस प्रकारसे इस प्रस्तावके साथ कुछ विशेषता जोड़ दी जाती है तब वह उसी समय पेश हो सकता है जब प्रस्तावमाला का वह विशेष भाग सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित हो। जब इस प्रकारकी कोई विशेष बात न कही गयी हो तब वह मूल प्रस्ताव या प्रस्तावमालाके पेश हो जानेपर किसी समय किया जा सकता है। इसकी स्वीकृतके लिए दो तिहाई वोटोंकी आवश्तकता होती है। जब निषेधार्थक प्रस्तावको पेश करने की इजाजत मिल गई हो तब उसका अन्तिम वोट लिये जानेतक कोई सदस्य यह प्रस्ताव कर सकता है कि मूल प्रस्ताव रोक रखा जाय (lay on the table) जब निषेधार्थक प्रस्तावकी आज्ञा मिल गयी हो या मांगी जा चुकी हो तो उसपर की गयी अपीलपर विवाद नहीं हो सकता। यदि निषेधार्थक प्रस्तावके सम्बन्धमें कोई वोट न लिये गये हों तो उसपर पुनर्विचार किया जा सकता है। परन्तु यदि उसपर कुछ भी कार्यवाही हो चुकी हो तो पुनर्विचार न हो सकेगा। यदि निषेधार्थक प्रस्तावके प्रभावकी समाप्तिके पहिले उस सम्बन्धमें दिये गये किसी वोटपर पुनर्विचार किया जाय,तो इसके लिए होनेवाले वादविवादमें मूल प्रश्नपर वादविवाद या संशोधन न होगा। परन्तु यदि निषेधार्थक प्रस्तावका कार्य समाप्त हो गया हो तो पुनर्विचारका प्रस्ताव अथवा वह विषय जिसपर पुनर्विचारका प्रस्ताव रखा गया है, विवाद योग्य बन जाता है। निषेधार्थक प्रस्ताव यदि एक बार अस्वीकृत हो जाय, तो यदि ऐसी अवस्था आ जाय कि

बीचमें कुछ और कार्यवाही हो तो—पर्याप्त कार्यवाही हो जानेके बाद वह दुबारा पेश किया जा सकता है।

यदि निषेधार्थक प्रस्तावमें किसी विशेष बातका उल्लेख न किया गया हो तो ज्योंही मूल प्रश्नपर सम्मति गणना हो चुकती है, त्योंही उसका कार्य समाप्त माना जाता है। परन्तु यदि निषेधार्थक प्रस्ताव छिड़े हुए विषयोंमेंसे अनेक विषयोंपर पेश किया गया हो तो जबतक सब विषयोंपर सम्मति गणना न हो जायगी, तबतक उसका प्रभाव रहेगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि निषेधार्थक प्रस्ताव पेश करनेके बाद मूल विषयको रोक रखा जाता है (Lay on the table)। उस दशामें निषेधार्थक प्रस्तावका प्रभाव उस समयतक रहता है, जब आगामी बैठकमें वह रोका हुआ प्रस्ताव फिर विचारार्थ सभाके सामने पेश किया जाता है। उस दशामें यदि वे प्रश्न उठते हैं, तो उनपर उसी प्रकार कार्यवाही की जाती है, जैसे निषेधार्थक प्रस्तावकी मौजूदगी में होनी चाहिये।

निषेधार्थक प्रस्तावकी स्वीकृतिके बाद जब मूल प्रस्ताव अपनी परिपक्वावस्थाके बाद पेश होता है, तब उसके प्रस्तावकको उत्तर देनेका अधिकार भी नहीं रहता। निषेधार्थक प्रस्ताव वही सदस्य पेश कर सकता है, जिसने मूल प्रस्ताव पर कुछ न कहा हो। इसके सम्बन्धकी पूर्व सूचना आवश्यक नहीं होती। निषेधार्थक प्रस्तावपर यदि बहस करना स्वीकार किया जाय तो उस दशामें उस पर बहस करते समय मूल प्रश्नकी बुराइयों और भलाइयोंपर भी विचार प्रकट किये जा सकते हैं। निषेधार्थक प्रस्ताव प्रधान विचारणीय प्रश्नके सम्बन्धमें ही आ सकते हैं। परन्तु सभापतिके निर्वाचनके सम्बन्धमें यह प्रस्ताव नहीं उपस्थित किया जा सकता।

इसका एक मनोरंजक इतिहास भी है। कहते हैं पहिले यह प्रस्ताव इस रूपमें रखा जाता था कि 'अब अमुक प्रस्तावपर वोट लिये जायं' और इसके बाद जो उसके विरोधी थे, वे इस प्रस्तावके विरोधमें वोट देते थे। अर्थात् होता यह था कि जो सदस्य निषेधात्मक प्रस्ताव [उसके पूर्व रूपमें, जो ऊपर दिया गया है] रखते थे, वे ही स्वयं उसके विरोधमें वोट देते थे। यह परिपाटी अच्छी न थी। अतः दूसरा और आधुनिक रूप सामने रखा गया, जिसका उल्लेख इस विषयके वर्णनके आदिम भागमें किया गया है।

३ वादविवाद नियंत्रक प्रस्ताव--(Limit or Extend limit of Debate) कभी-कभी ऐसे प्रसंग आते हैं, जब सभासदोंको इस बातकी आवश्यकता प्रतीत होती है कि प्रस्तुत विषयपर वादविवाद घटाया या बढ़ाया जाय। इन दोनों दशाओंमें प्रायः एक-ही-सी कार्यवाही होती है। जो सदस्य वादविवादके सम्बन्धमें इस प्रकारकी आवश्यकता समझते हैं, वे सभापतिको सम्बोधित करके अपने-अपने विचारके अनुसार निम्नलिखित ढंगसे प्रस्ताव करते हैं।

(क) जब वादविवाद बन्द करने और प्रस्तावपर वोट लेनेके लिये समय निर्धारित करना होता है, तब :"मैं प्रस्ताव करता हूँ कि इस विषयपर ९ बजे वादविवाद समाप्त कर दिया जाय और इसपर वोट ले लिये जायं।"

(ख) जब वादविवादकी अवधि निर्धारित करनी हो तबः—"मैं प्रस्ताव करता हूँ "संशोधनपर वादविवाद करनेकी अवधि २० मिनट रखी जाय।"

(ग) जब भाषणोंकी संख्या और उनकी अवधि घटानी हो तबः—
"मैं प्रस्ताव करता हूँ कि प्रस्तुत विषय और उसके संशोधनोंपर प्रत्येक सदस्य एक बार बोले और वह भी ५ मिनटसे अधिक नहीं"; "मैं प्रस्ताव करता हूँ

कि श्री० अमुकके भाषणके लिये १० मिनट दिये जायं"; "मैं प्रस्ताव करता हूँ कि श्री क और श्री ख (दोनों दलोंके दो नेता) को बीस-बीस मिनटका समय दिया जाय, जिसे वे अपने दोनों भाषणोंमें स्वेच्छानुसार विभाजित कर सकें और शेष सदस्योंमेंसे प्रत्येक सदस्यको एक बार २ मिनट बोलने दिया जाय और प्रस्तुत विषयपर ९ बजे वोट ले लिये जायं"; आदि ढंगसे प्रस्ताव उपस्थित किये जाते हैं।

वादविवाद घटाने या बढ़ानेके प्रस्ताव यदि स्वीकृत हो जाते हैं तो उसी अधिवेशनके लिये वे लागू रहते हैं, जिसमें स्वीकार किये जाते हैं। यदि किसी कारणसे वे अन्य अधिवेशनके लिये स्थगित हो जाय, तो फिर उनका यह अधिकार नहीं रहता और वे वादविवादके विषय हो जाते हैं। यदि एक बार वादविवादको एक निश्चित समय बन्द करने अथवा एक निर्धारित अवधि तक वादविवाद करनेके प्रस्ताव स्वीकृत हो जाते हैं तो स्थगित करने (Post-pone) या सुपुर्द करने (Commit) के प्रस्ताव उस विषयके सम्बन्धमें उपस्थित नहीं हो सकते। परन्तु यदि इन प्रस्तावोंको पेश करना ही हो तो पहिले उपरोक्त प्रस्तावोंके वोटोंपर पुनर्विचार करना होगा। परन्तु छिड़ा हुआ विषय रोका जा सकता है (Lay on the table) और उसके बाद यदि उस समयतक जबतकके लिये वादविवादको समाप्त करके प्रश्नपर वोट लेनेका प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है, वह रोका हुआ प्रश्न फिर उपस्थित न किया जाय, (Take from the table) तो उसके बाद फिर उस प्रश्नपर वादविवाद संशोधन आदि कुछ न हो सकेंगे। वह तुरन्त सम्मतिके लिये पेश कर दिया जायगा। जब वादविवादके भाषणोंकी संख्या अथवा उनके समयको बढ़ाने या घटानेका प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका हो तब कोई भी अन्य

सुविधाजनक प्रस्ताव (Subsidiary motion) उस मूल प्रश्नके सम्बन्धमें पेश किया जा सकता है।

निषेधार्थक प्रस्तावकी भांति वादविवाद-नियंत्रण-सम्बन्धी प्रस्ताव भी किसी भी विवाद योग्य प्रस्तावके सम्बन्धमें उपस्थित किये जा सकते हैं, और उन्हें अन्य सब विवादास्पद प्रस्तावोंपर तरजीह दी जायगी। साधारणतः ये प्रस्ताव उसी विषयसे सम्बन्ध रखते हैं, जो प्रस्तावके समय छिड़े हुए होते हैं। परन्तु यदि इन प्रस्तावोंमें किसी अन्य विषयका हवाला दे दिया गया हो, तो उस निर्दिष्ट विषयपर भी ये लागू हो सकते हैं। यदि यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया हो कि अमुक समय वादविवाद समाप्त कर दिया जाय, तो उस समयतक मूल प्रश्न-के सब प्रसंगजन्य प्रस्ताव, सुविधाजनक प्रस्ताव, पुनर्विचार सम्बन्धी प्रस्ताव आदि सब समाप्त हो जाने चाहिए। परन्तु जब वादविवादकी अवधि बढ़ानेका प्रस्ताव स्वीकृत होता है, तो उसका प्रभाव केवल उसी विषयपर पड़ता है, जो उस समय छिड़ा हुआ होता है, अथवा अन्य ऐसे विषय, जिनका संकेत उस प्रस्तावमें आ जाता है। इन प्रस्तावोंपर वादविवाद नहीं हो सकता, और इनकी स्वी-कृतिके लिए दो-तिहाई वोटोंकी जरूरत होती है। इनपर संशोधन तो हो सकता है, परन्तु अन्य कोई सुविधाजनक प्रस्ताव (Subsidiary motion) लागू नहीं हो सकता। इनके मुकाबले सब अधिकारात्मक प्रस्तावों, सब प्रसंगजन्य प्रस्तावों, प्रश्न रोक रखनेके प्रस्तावों तथा निषेधार्थक प्रस्तावोंको तरजीह दी जाती है। अर्थात् यदि ये सब प्रस्ताव एक ही समय उपस्थित हों, तो पहिले नीचेवाले अधिकारात्मक आदि प्रस्तावोंपर विचार किया जायगा; उसके बाद इनपर। ये प्रस्ताव केवल उन्हीं प्रश्नोंके सम्बन्धमें उठ सकते हैं, जो विवाद-योग्य हैं। अन्यथा जिनमें विवाद ही न होगा, उनमें विवादकी सीमा क्या

निर्धारित की जायगी ? जब इस प्रकारका एक प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो, तब दूसरा भी छेड़ा जा सकता है; बशर्ते कि वह पहिलेके विरोधमें न आता हो। इन दोमें से एकके स्वीकार हो जानेपर फिर दूसरा प्रस्ताव किया जा सकता है। यदि उस समयके कार्यपर कुछ कार्यवाही भी हो गयी हो, तो भी इस प्रस्तावपर पुनर्विचार किया जा सकता है, और यदि यह पुनर्विचार भी अस्वीकृत कर दिया जाय तो वादविवादकी पर्याप्त कार्यवाही हो जानेपर यह पुनर्वार पेश किया जा सकता है।

(४) निश्चित समयके लिए स्थगित करना—(To postpone to a certain time or definitely) सभाओंमें जब किसी विषयको किसी खास समयके लिए स्थगित कर देनेका विचार किया जाता है, तब इस प्रस्तावसे काम लिया जाता है। सभाके अभिप्रेत विषयको विभिन्न उद्देश्योंसे स्थगित किया जाता है, और जैसे-जैसे उद्देश्योंमें भेद होते हैं, वैसे ही वैसे इस प्रस्तावको पेश करनेके ढंग भी बदलते जाते हैं। यहांपर उद्देश्योंके आधारपर पेश करनेके कुछ अधिक प्रचलित ढंगोंका उल्लेख किया जाता है।

क—जब उद्देश्य केवल यह हो कि अभिप्रेत विषय आगामी बैठकके लिए स्थगित कर दिया जाय, ताकि उस समय वह अन्य विषयोंसे पहिले विचारके लिए उपस्थित किया जा सके, तब इसके पेश करनेका रूप यह होता है—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि यह विषय आगामी बैठकके लिए स्थगित कर दिया जाय।" इसके स्वीकृत हो जानेपर आगामी बैठकमें यह विषय सबसे पहिले पेश होगा।

ख—जब उद्देश्य यह हो कि एक समय निर्धारित कर दिया जाय, जब

उस समयके छिड़े हुए प्रश्नके समाप्त होते ही अभिप्रेत विषय लिया जाय, तब प्रस्तावका रूप यह होगा—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रश्न ३ बजेके लिए स्थगित कर दिया जाय।"

ग—यदि उद्देश्य यह हो कि प्रश्न किसी ऐसे समयतकके लिए स्थगित किया जाय, जब किसी विशेष घटनाके हो चुकनेपर वह तुरन्त विचारार्थ उपस्थित किया जाय, तो प्रस्तावका रूप यह होगा—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि अमुक विषय उस समयतकके लिए स्थगित किया जाय, जबतक कि अमुक विषयपर भाषण अथवा अमुक कार्य (जैसी आवश्यकता हो) न हो जाय।"

घ—यदि उद्देश्य यह हो कि वह प्रश्न स्थगित समयपर अन्य कार्योंसे घिरा हुआ न रहे तो स्थगित करनेके प्रस्तावके साथ-साथ, जिसका रूप ऊपर दिया गया है, यह और जोड़ देना चाहिए कि "और उस समयका विशेष कार्य माना जाय" अथवा प्रस्तावका रूप यह कर दिया जाय—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि प्रश्न अमुक समय (या बैठक) के लिए स्थगित कर दिया जाय और उस समयका वह विशेष कार्य माना जाय।" इस प्रस्तावकी स्वीकृतिके लिए दो-तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है, क्योंकि इससे नियम रुकता है और कार्यक्रममें बाधा पड़ती है।

ङ—जब उद्देश्य यह हो कि प्रश्न स्थगित बैठकके लिए स्थगित किया जाय, ताकि यदि आवश्यकता हो, तो उस स्थगित बैठकका समस्त समय केवल उसी प्रश्नपर विचार करनेमें लगाया जाय (यह अवस्था नियमोपनियमके संशोधन आदिके समय अधिक आती है), तब सभाके स्थगित हो जानेकी स्वीकृति मिल जानेपर प्रस्ताव इस ढंगसे पेश किया जायगा—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि अभिप्रेत विषय स्थगित कर दिया जाय, और वह आगामी

बुधवारको (या जो समय निर्धारित हो) होनेवाली बैठकका विशेष विषय बना दिया जाय।" स्थगित बैठकके अतिरिक्त नियमानुसार की जानेवाली साधारण बैठकके लिए भी इसी समय प्रस्ताव करके प्रश्न स्थगित किया जा सकता है।

इसका प्रभाव यह होता है कि जिस समयके लिए यह स्थगित कर दिया जाता है, उस समयके लिए यह विचारणीय विषय बन जाता है। और यदि उस समय उसपर विचार समाप्त नहीं हो पाता, तो अपूर्ण विषयकी भांति छोड़ दिया जाता है। किसी विषयको किसी विशेष समयके लिए स्थगित कर देने-मात्रसे यदि उसके सम्बन्धमें विशेष उल्लेख न हो, तो वह उस समयका विशेष विचारणीय विषय नहीं बन जाता। उसके लिए तो विशेष रूपसे उल्लेख होना ही चाहिए। किसी विशेष समयके लिए स्थगित करनेके प्रस्तावका संशोधन किया जा सकता है, और इस प्रकारके साधारण संशोधनकी स्वीकृतिके लिए बहुमतकी ही आवश्यकता होती है। परन्तु यदि संशोधन इस विचारसे किया गया हो कि वह उस समयका विशेष विचारणीय विषय बना दिया जाय, तो उसकी स्वीकृतिके लिए दो-तिहाई वोटोंकी आवश्यकता पड़ती है।

यह प्रस्ताव सुपुर्द करने, संशोधन करने, अनिश्चित समयके लिए स्थगित करनेके प्रस्तावोंसे पहिले विचार योग्य है और सब अधिकारात्मक प्रस्ताव, प्रसंगजन्य प्रस्ताव तथा प्रस्ताव रोक रखनेके प्रस्ताव (Lay on the table), निषेधार्थक प्रस्ताव और विवाद-नियन्त्रण-सम्बन्धी प्रस्ताव इससे पहिले विचार योग्य होते हैं। इसमें वादविवाद हो सकता है, परन्तु बहुत संयमके साथ, और बहस करते समय मूल प्रश्नके गुणावगुणपर केवल उतनी ही बात कही जा सकती है, जितनी वादविवादको स्थगित करनेके औचित्यको

सिद्ध करनेके लिए जरूरी हो। इसपर संशोधन दो प्रकारका हो सकता है। एक तो यह कि समयका विशेष रूपसे उल्लेख किया जाय, और दूसरे यह कि स्थगित होनेके बाद उस समयके लिए यह विशेष प्रश्न बना दिया जाय। निषेधार्थक प्रस्ताव और वादविवाद-नियन्त्रण-सम्बन्धी प्रस्ताव उसमें लागू हो सकते हैं। यह अकेले रोका नहीं जा सकता (Laid on the table), परन्तु यह प्रश्न छिड़ा हुआ हो, तो मूल प्रश्न रोक रखा जा सकता है। उसके साथ स्थगित करनेका यह प्रस्ताव भी चला जायगा। यह न किसी कमेटीके सुपुर्द किया जा सकता है, और न अनिश्चित समयके लिए स्थगित ही किया जा सकता है। इसपर पुनर्विचार किया जा सकता है। जब इसके द्वारा किसी विषयको विशेष अवसरके लिए विशेष कार्यक्रम (Order) बना दिया जाता है, तब इसकी स्वीकृतिके लिए दो-तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है।

मूल प्रश्न जिस समयके लिए स्थगित किया जाय, वह समय उसी अधिवेशन या उसके बादवाले अधिवेशन तक ही सीमित रहना चाहिए। परन्तु यदि उससे अधिक अवधिके लिए स्थगित करना हो, तो पहिले सभाको ही उस अवधि तकके लिए स्थगित करनेका प्रस्ताव स्वीकृत कराना चाहिए। उसके बाद ही वह प्रश्न उतने समयके लिए स्थगित किया जा सकेगा। साहित्य आदिकी कुछ संस्थाओंमें कामकाजकी बैठकें और साहित्यिक बैठकें, इस तरह दो प्रकारकी बैठकें होती हैं। अतः ऐसी अवस्थामें एक काम-काज सम्बन्धी बैठकका प्रश्न दूसरी कामकाज सम्बन्धी बैठकमें पेश किया जा सकता है, चाहे उसके बीचमें साहित्यिक बैठकें कितनी ही क्यों न हो गयी हों। यदि स्थगित करनेका परिणाम यह हो रहा हो कि मूल प्रश्न ही उससे उड़

जाता हो, तो वह प्रस्ताव नियमित नहीं माना जायगा। उदाहरणके लिए मान लीजिये, प्रश्न यह है कि आज रातको होनेवाले उत्सवका विरोध किया जाय, तो इसपर यह प्रस्ताव नहीं आ सकता कि यह प्रश्न कलतकके लिए स्थगित रखा जाय। किसी एक प्रकारके सब कार्योंको एक साथ ही स्थगित करनेका प्रस्ताव भी न्यायानुमोदित नहीं माना जाता। जैसे, यदि कई कमेटियोंकी रिपोर्टें पेश करनी हों, तो सबके लिए यह प्रस्ताव नहीं किया जा सकता कि वे स्थगित कर दी जायं। परन्तु ज्यों-ज्यों एक-एक कमेटीकी अलग-अलग रिपोर्ट विचारार्थ पेश की जाय, त्यों-त्यों एक-एक करके सब रिपोर्टें स्थगित की जा सकती हैं। पर नियम स्थगित करनेका प्रस्ताव स्वीकार करके उस विषयको छोड़कर आगेका विषय विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है। इसी प्रकारसे यदि किसी संस्थाके उपनियमोंके अनुसार कोई कार्य किसी विशेष समय करनेका हो, जैसे पदाधिकारियोंका चुनाव आदि, तो वह पहिलेहीसे स्थगित नहीं किया जा सकता। परन्तु जब वह विषय सभाके सामने, निर्धारित समय-पर विचारार्थ उपस्थित हो, तब वह स्थगित अवश्य किया जा सकता है। कार्यक्रमके पश्चात् अथवा उस समय, जब सभाके सामने अधिकारका प्रश्न कार्यवाहीके लिए उपस्थित हो, इसपर विचार करना स्थगित किया जा सकता है या अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव इसमें लागू हो सकते हैं। जब कोई विषय किसी खास समयके लिए स्थगित कर दिया जाता है, तब वह उस समयके कार्य-क्रममें शामिल हो जाता है। अतः उसके पहिले वह विचारार्थ उपस्थित नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि उसपर पहिले विचार करना आवश्यक हो, तो उसपर पुनर्विचारका प्रस्ताव लाकर अथवा उसीके लिए नियम स्थगित करके (Suspend the rules) दो-तिहाई वोटोंसे वह फिर विचारार्थ पेश किया जा सकता है।

(५) *समितिके सुपुर्द करना*—(To commit or refer) कभी-कभी सभाके सामने ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं, जिनके सम्बन्धमें अधिक छानबीन अथवा जांच-पड़तालकी आवश्यकता होती है। ऐसे प्रश्न जब आ जाते हैं, तब इस अभिप्रायसे कि उनपर पर्याप्त विचार होकर एक अधिक परिमार्जित और परिष्कृत रूपमें वे सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित हों, वे प्रश्न स्थायी समितिके सुपुर्द कर दिये जाते हैं। जब सभा बहुत बड़ी हो और उसके सामने काम भी बहुत अधिक हो, तो यह उचित और अच्छा होता है कि प्रायः सब विशेष-विशेष प्रश्न पहिले समिति द्वारा निश्चित होकर आवें। उससे काममें सुविधा हो जाती है। परन्तु समितिका निर्माण करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उसमें पक्ष और विपक्ष, दोनों ओरके प्रतिनिधि हों, जिससे उसका निर्णय सर्वमान्य हो। जो उपसमिति बने, उसमें यह जरूरी नहीं है कि वह सदस्य प्रतिनिधि बनाया ही जाय, जिसने किसी विशेष विषयको समितिके सुपुर्द करनेका प्रस्ताव रखा हो। परन्तु यदि वह उस मामलेमें दिलचस्पी दिखा रहा हो और उसके सम्बन्धकी बातें जानता हो, तो उसको रखना अच्छा ही होगा। प्रश्नकी अनेक बारीक बातोंपर समितिमें ही वादविवाद हो जाता है। अतः सभाके सामने प्रश्न आसान हो जाता है।

इस प्रश्नको सुपुर्द करनेका जो प्रस्ताव पेश किया जाता है, उसके रूप भी कई प्रकारके होते हैं। इसके कुछ रूप यों हैं :—'मैं प्रस्ताव करता हूं कि यह प्रश्न (उल्लेख करते हुए) समितिके सुपुर्द किया जाय।' इसीको और आगे बढ़ाकर यह भी कहा जा सकता है कि 'यह पांच सदस्योंकी एक समितिके सुपुर्द किया जाय, जिसकी सभापति इस हिदायतके

साथ कि वह आगामी मीटिंगमें इस प्रश्नपर हर पहलूसे विचार करके अपनी रिपोर्ट पेश करे, निर्वाचित करे।' कभी-कभी केवल इतना कहा जाता है कि 'मैं इस प्रश्नको कमेटीके सुपुर्द करनेका प्रस्ताव करता हूं।' या 'मैं इस प्रस्तावको पुनः सुपुर्द करनेका प्रस्ताव करता हूं,' या 'यह प्रश्न अधिकारोंके साथ समितिके सुपुर्द किया जाय।' आदि-आदि जब प्रश्न साधिकार समितिके सुपुर्द किया जाता है, तब समितिको उस प्रश्नके सम्बन्धमें आवश्यक कार्य करनेका भी अधिकार होता है। जब प्रस्ताव सदस्योंकी संख्या आदिके साथ पूर्णावस्थामें पेश किया जाता है, तब उसके भिन्न-भिन्न भागोंके सम्बन्धमें संशोधनका प्रस्ताव आ सकता है। परन्तु इस प्रकारके संशोधनको संशोधन न कहकर स्थान-पूर्ति (Fillin blanks) कहते हैं।

जब प्रस्ताव साधारण ढंगसे पेश किया जाता है, उसमें सदस्योंकी संख्या आदिके सम्बन्धकी सब बातें नहीं रहती, तब उसके सब अंगोंकी पूर्तिके लिये या तो उस सीधे सादे प्रस्तावपर संशोधन आदि किये जाते हैं या सभापति स्वयं सदस्योंसे उसके अंगोंकी पूर्तिके लिये मांग पेश करता है, या वह सारा प्रस्ताव तुरन्त सभाके सामने वोटके लिए पेश कर दिया जाता है और उसके स्वीकृत हो जानेपर अधिकारात्मक प्रश्नोंको छोड़कर अन्य कार्य आरम्भ करनेके पहिले उसके सब अंगोंकी पूर्ति कर दी जाती है। अन्तिम उपाय उस समय विशेष रूपसे किया जाता है, जब सभाको यह आशा होती है कि प्रस्ताव बहुमत से अस्वीकार हो जायगा। उस दशामें इस लिए कि सभा का समय इस प्रस्तावके वाद विवादमें व्यर्थ नष्ट न हो, यह प्रस्ताव निषेधार्थक प्रस्तावके द्वारा तुरन्त सम्मतिके लिए पेश कर दिया जाता है। अधिकांशमें ऐसी अवस्थामें यह अस्वीकृत ही हो जाता है, परन्तु यदि स्वीकृत हो जाय तो उपरोक्त ढंग

से इसके अंगोंकी पूर्ति कर ली जाती है। अंगोंकी पूर्तिके लिए निम्नलिखित ढंगसे काम किया जाता है।

जब केवल सीधा सादा प्रस्ताव ही सभाके सामने उपस्थित होता है, तब सभापति यह प्रश्न करता है कि "यह प्रस्ताव किस समितिको सुपुर्द किया जाय" इसपर सदस्यगण बताते हैं कि वह उपस्थित जनताकी कमेटी (Committee of the whole (As if in committee of the whole) या 'उपस्थित जनताको कमेटी मानकर उसमें या यौंही विचारकर लिया जाय' (Consider in formally) या स्थायी समिति में (Standing committee) जो उस प्रश्नपर विचार करनेकी अधि-कारिणी हो या विशेष समितिमें (Special committee) विचारार्थ उप-स्थित किया जाय। जब इस प्रकारके अनेक सुझाव आवेंगे तब जिस क्रमसे यहां इनका उल्लेख किया गया है उसी क्रमसे एक दूसरेके पहिले इनपर वोट लिये जायंगे। परन्तु यदि वह प्रश्न पहिलेसे ही किसी कमेटीके सुपुर्द रहा हो और उस कमेटी की ओरसे विचारार्थ उपस्थित किया गया हो तो फिर सुपुर्द करनेके प्रस्तावके अर्थ होंगे पुनः सुपुर्द करना (Recommit) उस दशामें उपरोक्त क्रमसे जब प्रस्ताव आंवेगे तब अन्य सुझावोंके पहिले उस सुझाव पर वोट लिये जायंगे जिसके अनुसार प्रश्नको फिर उसी कमेटी के सुपुर्द करनेकी बात हो। जब विशेष समितिकी बात नहीं होती जिसमें सदस्योंके निर्वाचनकी आवश्यकता रहती है तब, स्थायी समितिको सुपुर्द करनेकी अवस्थामें—यह प्रस्ताव तुरन्त सम्मति प्रदानार्थ उपस्थित कर दिया जाता है। परन्तु इसपर यह कहकर कि उसे हिदायतें दे दी जायं, सदस्यगण इस प्रश्नको तुरन्त सम्मति लेनेसे रोक भी सकते हैं। समितिको प्रश्नके

सम्बन्धमें हिदायतें किसी समय भी बहुमतकी स्वीकृति पर दी जा सकती हैं बशर्ते कि हिदायतें देनेके पहिले समितिने अपनी रिपोर्ट पेश न कर दी हो।

इस प्रस्तावको संशोधन और अनिश्चित समयतक स्थगित करनेके प्रस्तावोंपर तरजीह दी जाती है, और इन दोको छोड़कर अन्य सब सुविधाजनक प्रस्ताव अधिकारात्मक प्रस्ताव और प्रसंग जन्य प्रस्तावोंको इसपर तरजीह दी जाती है। यह किसी उप प्रस्ताव पर लागू नहीं हो सकता, न यह रोक रखा जा सकता (lay on the table) है, न स्थगित किया जा सकता है। परन्तु यदि मूल प्रस्ताव जिसके सम्बन्धमें यह पेश किया गया है, स्थगित हो गया हो तो यह भी स्थगित हो जाता है। निषेधार्थक प्रस्ताव, वाद विवाद नियंत्रक प्रस्ताव, और संशोधन इसपर लागू हो सकते हैं, परन्तु वे होने चाहिए ऐसे ढंगके जिससे मूल प्रस्तावपर कोई असर न पड़े। इसपर बहस हो सकती है, परन्तु बहसका विषय यही रहेगा कि इसके सुपुर्द कर देनेमें औचित्य कहां तक है। जब अनिश्चित कार्यके लिए किसी प्रश्नको स्थगित करनेका प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो और उसी समय सुपुर्द करनेका प्रस्ताव पास हो जाय तो स्थगित करनेका प्रस्ताव अपने आप गिर जाता है। परन्तु मूल प्रस्तावपर जो संशोधन उपस्थित किये गये थे, वे समितिके पास विचारार्थ चले जाते हैं। सुपुर्द करनेके प्रस्तावपर पुनर्विचार किया जा सकता है, परन्तु यदि सम्बन्धित समितिने कार्य आरम्भ कर दिया हो तो फिर यह प्रस्ताव अप्रासंगिक और असामयिक होगा कि सुपुर्द करनेके प्रस्ताव पर पुनर्विचार किया जाय। परन्तु यदि सभासद चाहते ही हों कि समितिके पाससे वह प्रश्न ले लिया जाय तो समितिको अधिकार च्युत या भंग (discharge) कर सकते हैं।

कमेटीके अधिकार च्युत या भंग होनेकी स्वाभाविक अवस्था तो यह

होती है कि उसका काम समाप्त हो जाय, उस समय वह स्वतः भंग हो जाती है। परन्तु कभी-कभी बीच में ही उसे अधिकार-च्युत या भंग करनेकी आवश्यकता पड़ जाती है। यह आवश्यकता विशेष रूपसे उस समय पड़ती है, जब सभाको किसी ऐसे विषय पर विचार करना होता है, जो बहुत कुछ उस विषयसे सम्बन्ध रखता है, जो समितिके सुपुर्द है। ऐसी अवस्थामें जब तक वह विषय समितिके सुपुर्द रहता है तब तक सभा नियमित रूपसे उसीके समान या उससे सम्बद्ध विषयोंपर विचार नहीं कर सकती। तब उसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह समितिको भंग करके उसका प्रश्न भी उठा ले। यदि समितिने अपना काम आरम्भ किया हो तब तो ऐसी दशामें सुपुर्द करने वाले प्रस्तावपर पुनर्विचार करके उसे आसानीसे उठाया जा सकता है क्योंकि यह काम केवल बहुमतकी स्वीकृतिसे हो सकता है। अन्य अवस्थाओंमें समिति को अधिकारच्युत करनेका प्रस्ताव लाना पड़ता है और उसकी स्वीकृतिके लिए दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु यदि अधिकार च्युत करनेके प्रस्तावकी पूर्ण सूचना नियमित रूपसे दे दी गयी हो तो बहुमतसे ही यह स्वीकार किया जा सकता है। ऐसी अवस्थामें प्रस्तावका रूप यह होता है—
मैं प्रस्ताव करता हूँ कि जिस समितिको प्रश्न सुपुर्द किया गया था वह भंग कर दी जाय। (या अधिकार च्युत कर दी जाय) और मूल प्रश्न सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित किया जाय।"

इस प्रकारके प्रस्ताव केवल छिड़े हुए प्रश्नोंके सम्बन्धमें पेश किये जाते हैं। परन्तु यदि वे किसी ऐसे प्रश्नके सम्बन्धमें पेश किये गये हों, जो उस समय छिड़ा हुआ न हो तो यह प्रस्ताव प्रधान प्रस्ताव हो जाता है। इस तरह बिना छिड़े हुए विषयपर किये जानेवाले समिति बनानेके प्रस्ताव प्रधान प्रस्ताव माने जायंगे, सुविधाजनक प्रस्ताव नहीं।

(६) *संशोधन*—(Amend) यह भी सुविधाजनक प्रस्तावोंका एक भेद है। परन्तु यह विषय एक प्रकारसे स्वतंत्र-सा है। साथ ही यह विस्तृत भी बहुत है। अतः इसपर इस स्थानपर विचार न कर स्वतंत्र रूपसे विचार किया जायगा।

(७) *अनिश्चित समयके लिये स्थगित करना*—(To postpone indefinitely) कभी-कभी सभाओंमें ऐसे अवसर आते हैं, जब छिड़े हुए विषयके विरोधी लोग उसे टाल देना चाहते हैं। यह काम उसपर वोट लेकर और उसे अस्वीकृत करके भी किया जा सकता है। परन्तु जब विरोधियोंको यह आशा नहीं होती कि प्रस्तुत प्रश्नके विपक्षमें अधिक वोट आ जायंगे, तब वे वोटोंका खतरा नहीं उठाते। उसके बदले वे प्रस्ताव करते हैं कि प्रश्न अनिश्चित समय तकके लिये स्थगित कर दिया जाय। इस प्रस्ताव का फल यह होता है कि जो सदस्य पहिले मूल प्रश्नपर बोल चुके हैं; उन्हें इस प्रश्नके छिड़ जानेपर (क्योंकि शास्त्रीय विचारसे यह एक पृथक विषय हो जाता है) फिर बोलनेका मौका मिलता है। इस प्रश्नके छेड़ देनेपर मूल प्रश्नके दोषों और गुणोंपर भी विचार हो सकता है, अतः एक बार उन दोषों और गुणोंपर बोल चुकनेवाले व्यक्तिको भी इस प्रस्तावके द्वारा दुबारा बोलनेका अवसर मिलता है। यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है ; तो मूल प्रश्न उस अधिवेशनमें साधारणतः पेश नहीं हो सकता, परन्तु उसके वोटोंपर पुनर्विचार करके वह फिर उपस्थित किया जा सकता है। इस प्रस्तावसे विरोधियोंको अपनी शक्तिका अन्दाजा करनेका मौका भी मिलता है। इसे छेड़कर और वादविवाद करके वे यदि मूल प्रश्नको सदाके लिये स्थगित कर सके तो वैसे ही उनका काम बन गया अन्यथा इस प्रस्तावके गिर जानेपर भी उन्हें मूल प्रश्नपर

वोट देनेका अधिकार तो बना ही रहता है। और इस प्रश्नपर वोट लेते समय अपनी शक्तिका अन्दाजा लगाकर ये आगे होनेवाले मूल प्रश्नके वाद विवादमें अपनी गति विधिका नियंत्रण कर सकते हैं। यह प्रश्न प्रधानतः विरोधियोंका ही है और इससे उन्हींका विशेष हित भी होता है।

इसे उस प्रधान प्रस्तावके अतिरिक्त अन्य किसी प्रस्तावपर तरजीह नहीं दी जाती, जिसपर कि यह पेश किया जाता है; और इसपर सब अधिकारात्मक प्रस्ताव प्रसंगजन्य प्रस्ताव तथा अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव सबको तरजीह दी जाती है। इसपर निषेधार्थक प्रस्ताव तथा वाद विवाद नियंत्रक प्रस्तावके अतिरिक्त अन्य कोई सुविधाजनक प्रस्ताव लागू नहीं हो सकता और न इसका संशोधन कया जा सकता है। यह विवाद योग्य होता है और इसके द्वारा मूल प्रश्नपर भी वाद विवाद किया जा सकता है। यह प्रधान प्रस्तावोंके अतिरिक्त, जिनमें अधिकारके प्रश्न और कार्यक्रमके प्रश्न भी शामिल माने जायंगे (लेकिन उसी समय जब वे सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित हों) अन्य किसी प्रस्ताव पर लागू नहीं हो सकता। इसके स्वीकारात्मक वोटपर पुनर्विचार किया जा सकता है, परन्तु अस्वीकारात्मक वोटोंपर नहीं। और अगर यह एकबार अस्वीकार हो जाय तो दुबारा नये सिरेसे पेश नहीं किया जा सकता। जिस समय अनिश्चित समयके लिये स्थगित करनेका प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो उस समय यदि मूल प्रस्तावको कमेटीके सुपुर्द करनेका प्रस्ताव पास हो जाय तो यह प्रस्ताव रद्द हो जायगा और मूल प्रस्ताव कमेटीके सुपुर्द कर दिया जागया।

प्रसंगजन्य प्रस्ताव

इन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें पीछे कुछ बातें लिखी जा चुकी हैं। इन प्रस्तावोंकी आवश्यकता उस समय उत्पन्न होती है जब सभामें विशेष प्रकारके प्रसंग आते हैं। यदि इस प्रकारके प्रसंग न आवें तो इनकी आवश्यकता ही न रह जाय। ये प्रस्ताव महत्ताकी दृष्टिसे अधिकारात्मक प्रस्तावोंसे निम्न कोटिके परन्तु अन्य प्रस्तावोंसे उच्च कोटिके होते हैं; अर्थात यदि एक ही साथ दो प्रस्ताव पेश हों जिनमें एक प्रसंग जन्य प्रस्ताव हो और एक अधिकारात्मक तो पहिले अधिकारात्मक प्रस्तावपर विचार किया जायगा बादमें प्रसंग जन्य प्रस्तावोंपर, परन्तु यदि प्रसंग जन्य प्रस्तावोंके साथ रोक रखनेके प्रस्ताव (Lay on the table) को छोड़कर अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव (Subsidiary motions) या प्रधान प्रस्ताव उपस्थित किये जायं तो पहिले प्रसंग जन्य प्रस्तावपर विचार करना उचित होगा। ये प्रस्ताव

उस समय छिड़े हुए प्रसंगपर से ही उत्पन्न होते हैं; और इसलिये उस प्रश्न से पहिले ही इनपर विचार कर लेना उचित होता है। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि जो प्रश्न उस समय तक छिड़ा हुआ था उसके सम्बन्धमें भी ये प्रस्ताव आ जाते हैं चाहे वह उस समय बन्द भी हो गया हो। परन्तु यह उसी समय होता है जब उस प्रश्नके बाद कोई दूसरा नया प्रश्न न छिड़ा हो। कुछ विशेष अवस्थाओंको छोड़कर जिनका उल्लेख आगे प्रसंगानुसार आयेगा; साधारण अवस्थामें न इनपर वाद विवाद हो सकता है न संशोधन किया जा सकता है। इनके सम्बन्धमें संशोधनको छोड़कर अन्य कोई सुविधा-जनक प्रस्ताव भी पेश नही किया जा सकता। परन्तु अपीलकी उस अवस्थामें जब वह वादविवाद योग्य हो जाती है, ये प्रस्ताव (सुविधा-जनक प्रस्ताव) पेश हो सकते हैं।

प्रसंग जन्य प्रस्ताव निम्नलिखित होते हैं :—(१) अनुशासनका प्रश्न और अपील (२) नियमोंका स्थगित करना (३) किसी प्रश्न पर विचार करने का विरोध करना (४) किसी प्रश्नके हिस्से करके एक एक पैरेग्राफ या भाग पर विचार करना (५) सम्मतिका विभाजन (Divisron) या सम्मति गणना की रीतिके सम्बन्धमें आये हुए प्रस्ताव (६) नियुक्त करने बरखास्त करने या पुनः नियुक्त करनेकी विधि सम्बन्धी प्रस्ताव (७) छिड़े हुए प्रश्न या तत्काल छेड़े जा चुके हुए प्रश्न परसे उत्पन्न होनेवाले प्रस्ताव। इन पर अलग अलग विचार किया जायगा। जिस क्रमसे ये यहां लिखे गये हैं उसी क्रमसे ये एक दूसरेसे अधिक और कम महत्वपूर्ण होते हैं।

अनुशसानका प्रश्न और अपील—इस प्रस्तावकेभी दो विशेष भाग हैं, एक अधिकारका प्रश्न और दूसरा अपील। अतः इन्हें भी अब अलग-अलग विचार करनेकी आवश्यकता है।

अनुशासनका प्रश्न—(Question of order or point of order) यह प्रस्ताव बड़ा महत्वपूर्ण होता है और सभाओंमें प्रायः उठता है। इसकी आवश्यकता छिड़े हुए प्रश्न परसे उत्पन्न होती है और जिस प्रश्नसे यह उत्पन्न होता है उससे पहिले इसपर विचार कर लिया जाता है। जब किसीको वक्तृताधिकार प्राप्त हो चुका हो, यहां तक कि उसने बोलना भी शुरू कर दिया हो या किसी रिपोर्टका पढ़ा जाना शुरू हो गया हो तब भी यह प्रस्ताव पेश हो सकता है। इसके लिये समर्थनकी भी आवश्यकता नहीं है, इसका संशोधन भी नहीं किया जा सकता और न इसके सम्बन्धमें सुविधा जनक प्रस्ताव ही पेश किये जा सकते हैं। यदि एक ही समय अधिकारात्मक प्रस्ताव या प्रस्तावको रोक रखनेका प्रस्ताव उपस्थित हो तो पहिले इन दोनों पुराने प्रस्तावों पर विचार हो जायगा उसके बाद इस प्रस्ताव पर विचार किया जायगा। परन्तु अन्य किसी प्रकारके प्रस्ताव इसके साथ उपस्थित किये जायं तो यह उनसे पहिले विचारका अधिकारी होगा।

प्रत्येक सभामें कुछ नियम होते हैं और सभासदोंको उन्हीं नियमोंके अनुसार चलना पड़ता है। पहिले तो सभापति स्वयं देखता है कि उन नियमोंका ठीक ठीक पालन हो रहा है या नहीं, और न होने की हालतमें बिना किसी विलम्ब या वाद विवादके उन नियमोंकी पावन्दी करता है। परन्तु यदि किसी बातकी ओर उसका ध्यान न जाय तो सभासदोंको भी यह अधिकार होता है कि वे उस बातकी ओर सभापतिका ध्यान आकृष्ट करे और नियमोंका उल्लङ्घन करनेवाले व्यक्तिको ठीक रास्ते पर लायें। ऐसे ही अवसरों पर अनुशासनका प्रश्न उठता है। ऐसी दशामें सभासद अपने स्थान से खड़ा होकर सभापतिको सम्बोधित करते हुए कहता है "सभापति महोदय,

में अनुशासनका प्रश्न उपस्थित करता हूं।" उसके इतना कहने पर वह व्यक्ति तुरत बैठ जायगा जो उस समय भाषण दे रहा था। इसके बाद सभापति उस व्यक्तिसे पूछेगा कि उसका 'अनुशासन का प्रश्न क्या है।' इसके बाद उस बताये हुए प्रश्न पर सभापति स्वयं विचार करेगा, और यदि वह ठीक हुआ तब तो उसीके अनुसार कार्य करेगा। परन्तु यदि ठीक नहीं मालूम हुआ तो स्वयं प्रश्न कर्त्ताको बैठा देगा और पूर्व वक्ताको अपना भाषण देनेका आदेश देगा। परन्तु जब ये दोनों दशाएं न हों और सभापति स्वयं कोई निर्णय न कर सकता हो, तो उस सन्देहकी दशामें उसे वह प्रश्न सभाके सम्मुख उपस्थित करना पड़ेगा। उस समय वह कहेगा श्री अमुकने प्रश्न किया है कि संशोधन (जो संशोधन उस समय पेश किया गया हो उसको पढ़कर या और कोई बात जैसा प्रसङ्ग हो) प्रस्तावके उपयुक्त नहीं है। सभापतिको सन्देह है कि बात वास्तवमें क्या है, इसलिये सभाके सामने यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि क्या यह संशोधन प्रस्तावके उपयुक्त है ?" इस प्रश्नके उत्तरमें सभा जो निश्चय करेगी वही अन्तिम निश्चय होगा। इस प्रकार सभा द्वारा किये गये निर्णयके सम्बन्ध में अपील नहीं की जा सकेगी। परन्तु यदि सभापतिने स्वयं अपना निर्णय दिया हो तो अपील की जा सकती है। साधारणतया इसपर बहस नहीं हो सकती। परन्तु जब अपील हो जाती है, उस समय यह प्रश्न वाद विवादका विषय बन जाता है। फिर भी यह प्रश्न उस समय विवादका विषय नहीं हो सकता जब यह शिष्टाचार हीनताके सम्बन्धमें उठाया गया हो या भाषण देनेके नियमोंके विरुद्ध आचरणके सम्बन्धमें उठाया गया हो या कार्योंके पूर्वानुक्रमके (priority of business) सम्बन्धमें उठाया गया हो या सभाके

हिस्से—सम्मति विभाजन (Division of the assembly) के समय उठाया गया हो या उस समय उठाया गया हो जब कोई अविवादास्पद प्रश्न छिड़ा आ हो।

अनुशासनका प्रश्न ठीक उसी समय उठाना चाहिये जब अनुशासन भङ्ग हो रहा हो। किसी प्रस्तावके पेश हो जाने, उसपर वाद विवाद हो जानेके बाद अनुशासनका प्रश्न उठाना अति विलम्ब माना जायगा। उस समय सभापति भी यह नहीं कह सकता कि प्रश्न अनियमित था क्योंकि उतने समयसे उसपर नियम पूर्वक विचार होता चला आया है। परन्तु यदि किसी ऐसे प्रस्ताव पर बहस हो रही हो जो सभाके नियमोंपनियमके विरुद्ध हो और जिसका परिणाम यह होनेवाला हो कि उसकी स्वीकृतिके बाद भी नियमोंके अनुसार उसपर काम न किया जा सके और वह बादमें अनियमित और अस्वीकृत (nul and boid) करार दे दिया जाय तो ऐसे प्रस्तावोंके सम्बन्धमें किसी समय भी अनुशासनका प्रश्न उठाया जा सकता है क्योंकि उस दशामें नियमोंका उल्लङ्घन होता है।

इस नियमके अतिरिक्त भी अनुशासनका प्रश्न उठनेकी एक रीति और है यद्यपि यह रीति अधिक समीचीन नहीं होती। इस रीतिसे विशेष करके उस समय काम लिया जाता है जब, कोई वक्ता अशिष्ट भाषाका प्रयोग कर रहा हो। रीति यह है कि अलगसे सभापतिको सम्बोधित न कर सदस्य सीधे वक्ताकी ओर संकेत करके कहता है "मैं वक्ता महोदयसे अनुरोध करता हूं कि अनुशासनकी पावन्दी करें।" इसपर सभापति विचार करता है कि वक्तव्य में वक्ता द्वारा अनुशासनका भंग हो रहा है या नहीं और अपना निर्णय देता है।

अपील——अपील सभापतिके निर्णयके विरुद्ध होती है। जब सभापतिके किसी निर्णयसे किसी सभासदको सन्तोष न हो तब वह खड़ा होकर कहता है"श्रीमन् सभापति महोदय मैं प्रधानके निर्णयके विरुद्ध अपील करता हूं।" यह अपील उस समय तक विचारणीय नहीं समझी जायगी, जबतक कि कोई अन्य सदस्य उसका समर्थन न करें। जब नियमित रूपसे उसका समर्थन भी हो जाय तब सभापति उस प्रश्नको सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित करेगा। ऐसा करते समय यदि वह उचित समझे तो यह भी बता सकता है कि उसने वह निर्णय क्यों दिया। विचारार्थ प्रश्न उपस्थित करते समय सभापति कहेगा :--"प्रश्न यह है कि क्या सभापतिका निर्णय सभाका निर्णय माना जायगा" या "क्या सभापतिका निर्णय कायम रहेगा" जब प्रश्न विचारार्थ उपस्थित कर दिया जाता है, तब उन अवस्थाओंको छोड़कर जिनमें अपील सदस्योंके अशिष्टाचारके प्रश्नपर, वक्तृता सम्बन्धी नियमोंके विरुद्ध आचरण करनेपर, या कौनसा विषय पहिले लिया जाय; इस प्रश्नपर की जाती है; अथवा उस समय भी की जाती है जब सम्मति विभाजन (Division) किये जा रहे हों अथवा जब ऐसा प्रश्न छिड़ा हो जिस पर वाद विवाद न किया जा सके, अन्य सब अवस्थाओंमें इस पर वाद विवाद किया जा सकता है। जब वाद विवाद होता है तब सभापति को छोड़कर अन्य कोई सदस्य एक बारसे अधिक इस विषयपर भाषण नहीं हो सकता। वाद विवादके समय भी यदि सभापति चाहे तो बिना अपना आसन छोड़े हुए ही अपने निर्णयके कारणोंको उल्लेख कर सकता है। प्रश्न पर वाद विवाद समाप्त हो जानेके बाद इसपर वोट लिये जाते हैं, और वोटों का परिणाम तुरन्त घोषित कर दिया जाता है। यदि वोट दोनों ओर बराबर बराबर हों, तो सभापतिका निर्णय ठीक माना जायगा। सभापति चाहे तो,

वह अपना अलग वोट दे सकता है, बशर्ते कि वह उस सभाका सदस्य भी हो। यदि सभापतिका वोट गिन लेनेके बाद दोनों पक्षके वोट बराबर आवें तो भी सभापति द्वारा दिया गया निर्णय ठीक माना जायगा। वोटोंकी गणना कर लेनेके बाद सभापति कहेगा "पक्षमें अधिक वोट हैं, निर्णय कायम रहा" या "विपक्षमें अधिक वोट हैं, निर्णय पलट दिया गया"। अपीलके वोटोंपर पुन-विचार हो सकता है।

जिस समय सभापति द्वारा निर्णय दिया जा चुका हो ठीक उसी समय तुरन्त ही अपील करनी चाहिए। उस समय यदि किसी अन्य सदस्यको वक्तृताधिकार भी मिल गया हो तो भी अपील की जा सकती है। यदि निर्णयके बाद वाद विवाद या अन्य कार्य होने दिये गये तो अपील करना अति विलम्ब की बात हो जायगी। जब अपीलपर विचार हो रहा हो उस समय अनुशासन का प्रश्न छेड़ा जा सकता है, जिसपर सभापति तुरन्त विचार करेगा फिर इस विचार पर अपील न हो सकेगी। परन्तु यदि इस विचारसे किसीको असन्तोष हो तो जब सभाके सामने कोई विषय न छिड़ा हुआ हो तब यह विषय छेड़ा जा सकता है कि उक्त अनुशासनके प्रश्नपर सभापतिका निर्णय ठीक था या नहीं। अपीलके समय यदि अधिकारात्मक प्रस्ताव या किसी प्रश्नको रोक लेने (Lay on the table) के प्रस्ताव आयें तो पहिले इन दोनोंपर विचार हो जायगा; उसके बाद अपीलपर विचार होगा। अपीलमें संशोधन नहीं किया जा सकता।

जिस निर्णयपर अपील की गई हो वह निर्णय यदि ऐसा हो जिसके परि-वर्तनसे मूल विषयके प्रस्तावपर कोई प्रभाव न पड़ता हो तो मूल प्रश्न अपील के साथ जुड़ा जुड़ा न फिरेगा। अपील स्थगित भी हो जाय तो भी मूल

प्रश्नपर विचार होगा। परन्तु यदि उलटी बात हुई तो अपीलके स्थगित होने पर मूल प्रश्न भी स्थगित हो जायगा।

वैधानिक प्रश्नोंके उत्तर देना निर्णय नहीं है, अतः इनके सम्बन्धमें अपील नहीं की जा सकती। इसी प्रकार वोटोंके परिणामकी घोषणा करना सभापति का निर्णय नहीं है और इसपर भी अपील नहीं की जा सकती। परन्तु यदि किसी सदस्यको वोटोंकी घोषणाके सम्बन्धमें सन्देह हो तो वह सम्मति विभाजनके लिए मांग पेश कर सकता है।

२—*नियमोंका स्थगित करना*—(Suspension of the rules) जब सभा ऐसा काम करना चाहती है जो बिना नियमोंको स्थगित किये नहीं हो सकते, परन्तु जो सभाके निर्धारित उपनियमोंके अथवा सभा संचालन सम्बन्धी मूल सिद्धान्तोंके विरुद्ध न हो तब नियमोंको स्थगित करनेके प्रस्ताब रखे जाते हैं। नियमोंको स्थगित करनेका प्रस्ताव रखते समय यह स्पष्ट रूपसे बताना चाहिए कि किस कारणसे स्थगित करनेका प्रस्ताव किया गया है। अधिकांशमें बिषयोंका पूर्वानुक्रम (Priority of business) विषयोंकी कार्य पद्धति (Business procedure) अथवा सभा प्रवेश सम्बन्धी नियमोंको ही स्थगित करनेकी आवश्यकता पड़ती है और इन्हींके सम्बन्धमें स्थगित करनेका प्रस्ताव भी आ सकता है।

जब प्रस्ताव करना उचित हो तब एक सभासद सभापतिको सम्बोधित कर कहता है "मैं उस नियमको स्थगित करनेका प्रस्ताव करता हूं जो अमुक प्रस्ताव पर विचार करनेमें वाधक होती हैं।" इस प्रस्तावके स्वीकार हो जानेपर जिस प्रस्ताव पर विचार करनेके लिये यह पेश किया गया था उसपर तुरन्त ही विचार किया जायगा। परन्तु यदि ऐसे स्थगित किये हुए प्रश्नपर बिचार

करना हो जो इस समय नियमानुसार उपस्थित न हो सकता हो (जिसका समय न आया हो) या ऐसे प्रश्नपर विचार करना हो जो अन्य समयके लिये स्थगित किया गया हो, तो प्रस्तावका रूप यह होगा—"मैं अमुक नियमको स्थगित करने और अमुक प्रश्न पर विचार करनेका प्रस्ताव करता हूं।" जब प्रश्नपर विचार न करके उसे स्वीकार करने भरका मतलब हो तब यह कहा जायगा कि "मैं अमुक नियमको स्थगित करके अमुक प्रस्तावको स्वीकार करने का प्रस्ताव करता हूं।" यह सब प्रायः उस समय होता है जब किसी सदस्यको सभामें सम्मिलित करना हो।

नियम स्थगित करनेमें सम्मति गणना कई प्रकारसे होती है। स्थायी नियम (Standing order) बहुमतसे निर्णय किये जाते हैं और व्यवस्था सम्बन्धी नियम (rules of order) दो तिहाई मतसे निर्णय किये जाते हैं। परन्तु जब स्थायी नियम व्यवस्थाका रूप धारण कर लेते हैं, उस दशामें उनका निर्णय भी दो तिहाई वोटोंसे होता है। जिस विषयके लिए दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है उस विषयके लिये नियम स्थगित करनेके प्रस्ताव पर भी दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है। जब किसी नियमके स्थगित करनेमें ऐसी अवस्था आ जाय कि उस नियमके द्वारा जिस अल्पसंख्यक समुदायकी अधिकार रक्षा हो रही हो उसकी संख्याके बराबर लोग स्थगित करनेके विरोधमें हों तब कोई नियम स्थगित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार जिन नियमोंके द्वारा उन लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा होती हो जो अनुपस्थित हैं, उनको भी स्थगित नहीं किया जा सकता चाहे इसके पक्षमें प्रायः सब या सबके सब उपस्थित सदस्य ही क्यों न हो जायँ। उदाहरणार्थ, मान लीजिये कि किसी सभामें यह प्रस्ताव आवे कि सभाका वह

नियम, जिसके अनुसार प्रस्तावकी सूचना एक मीटिंग पूर्व देना आवश्यक माना गया है, स्थगित कर दिया जाय तो यह प्रस्ताव उपस्थित जनताकी सर्वसम्मतिसे भी स्वीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि उस नियमसे अनुपस्थित लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा होती है। कभी कभी सभाके उपनियम (By laws) भी स्थगित किये जा सकते हैं। ये उसी समय स्थगित किये जा सकते हैं जब केवल सभाका कार्य सञ्चालन करनेके लिये बने हों उन्हें कोई विशेष महत्व देनेका अभिप्राय न हो। इस प्रकार जो उपनियम स्थगित करवाना हो उनका स्पष्ट उल्लेख होना आवश्यक होता है।

जिस समय कोई प्रश्न न छिड़ा हुआ हो उस समय नियम स्थगित करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। यदि किसी समय कोई प्रश्न छिड़ा हुआ भी हो परन्तु वह प्रश्न हो उसी सम्बन्धका जिसको लेकर नियम स्थगित करनेकी बात की जाय तो भी स्थगित करनेका प्रस्ताव पेश किया जा सकता है। इसके साथ यदि अधिकारात्मक प्रस्ताव (दिनके कार्यक्रम (Order of day) के अनुसार काम करनेके प्रस्तावको छोड़कर) विषयको रोक रखनेका प्रस्ताव (Lay on the table) और ऐसे प्रसंग जन्य प्रस्ताव जो इसी प्रश्नसे उत्पन्न हुए हों, छिड़ जायं तो पहले उन प्रस्तावों पर विचार किया जायगा उसके बाद नियम स्थगित करनेके प्रस्ताव पर विचार किया जायगा। इसपर वाद विवाद नहीं किया जा सकता। न इसके सम्बन्धमें सुविधाजनक प्रस्ताव (subsidiary motion) उपस्थित किये जा tसकते हैं और न इसपर दिये गये वोटों पर पुनर्विचार ही किया जा सकता है। उसी मीटिंगमें उसी कार्यके निमित्त नियम स्थगित करनेका प्रस्ताव दुबारा पेश नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि सर्व सम्मतिसे सभा उसे दुबारा पेश करनेकी इजाजत

दे दे तो वह पेश भी किया जा सकता है। यदि बैठक एक बार स्थगित हो जाय तो दुबारा बैठक पर चाहे स्थगित बैठक उसी दिन क्यों न बैठी हो स्थगित करनेका प्रस्ताव दुबारा पेश किया जा सकता है।

नियम स्थगित करनेका प्रस्ताव एक व्यर्थका शिष्टाचार सा ही मालूम होता है। इसका कार्य एक दूसरे ढङ्गसे भी निकाला जा सकता है वह यह है कि जब कोई कार्य नियमोंके विपरीत करना हो तब सभाकी साधारण स्वीकृति लेकर वह काम किया जा सकता है। ऐसे अवसरों पर सभापतिको यह पूछ लेना चाहिये कि कोई सदस्य इस कामके करनेका विरोधी तो नहीं है। यदि किसीने विरोध नहीं किया तो वह उस कामको करनेकी आज्ञा दे सकता है।

(३) किसी प्रश्नपर विचार करनेमें आपात्ती—Objection to the consideration of a question जब सभामें कोई ऐसा मौलिक प्रधान प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है जो अनर्गल (irreleuam) हानिकर, कलहवर्धक (contentions) हो, तब इस प्रकारकी आपत्ति उठायी जाती है। यदि सभापतिको यह मालूम हो कि जो विषय उठाया गया है वह सभाके उद्देश्योंसे बिलकुल भिन्न है ; तब तो वह उसे अनियमित (Out of Order) करार देकर तुरन्त ही उसे रोक देगा (उस समय उसपर अपील हो सकेगी) परन्तु यदि ऐसी बात न हो और सभापतिने अपने अधिकारसे उसे न रोका हो तो उपरोक्त विषयोंके सम्बन्धमें कोई सदस्य उठकर कह सकता है कि "सभापति महाशय, मैं इस विषय पर विचार करने पर एतराज करता हूं।" एतराज उठते ही सभापति तुरन्त सभाके सामने यह प्रश्न उपस्थित करेगा :—क्या सभा इस विषय पर विचार करेगी ?"

अथवा "क्या इस विषय पर विचार किया जाये।" सभापतिके इस प्रश्नके उत्तरमें सभा जो निर्णय करेगी ; उसीके अनुसार सभामें काम किया जायगा।

एतराज केवल मौलिक प्रधान प्रस्तावोंके विचारके सम्बन्धमें किया जा सकता है, परन्तु यह किया जाना चाहिए बहस शुरू होने अथवा तत्सम्बन्धी किसी सुविधाजनक प्रस्तावके उपस्थित होनेके पहिले। एतराज आवेदनों (Petitions) पत्र व्यवहारों (केवल वह पत्रव्यवहार जो बड़ी सभा द्वारा नहीं हुआ) और प्रस्तावोंके सम्बन्धमें किया जा सकता है। परन्तु प्रसंग जन्य प्रधान प्रस्तावोंके सम्बन्धमें—(उपनियमोंके संशोधन आदिके सम्बन्धमें, जिस कामके लिए समितिका निर्माण किया गया था, उस कामपर दी गयी उसकी रिपोर्टके सम्बन्धमें) एतराज नहीं किया जा सकता। एतराज उस समय भी किया जा सकता है, जब किसी अन्य व्यक्तिको वक्तृताधिकार प्राप्त हो गया हो। उसके लिये समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती। यह प्रश्न सभापति द्वारा भी उठाया जा सकता है। इसपर वाद विवाद नहीं हो सकता, न संशोधन हो सकता है, न कोई सुविधाजनक प्रस्ताव (subsidiary motion) ही लागू हो सकता है। यदि इसके साथ अधिकारात्मक प्रस्ताव या प्रस्तावके स्थगित करनेका प्रस्ताव आवे तो पहिले इन प्रस्तावोंपर विचार किया जायगा उसके बाद एतराजपर। यदि एतराजके सम्बन्धमें वोट लिये गये हों तो पक्षके वोटों पर तो नहीं परन्तु विपक्षके वोटोंपर पुनर्विचार हो सकता है। एतराज का अभिप्राय यह नहीं है कि विषयपर बहस रोकी जाय, वरन यह है कि वह विषय उस सभासे ही निकाल दिया जाय।

(४) विषयका विभाजन और थोड़े थोड़े भागपर विचार—
Division of a question and consideration by para-

graph:—इस विषयके स्पष्टतः दो भाग हैं एक प्रश्नका विभाजन और दूसरा थोड़े थोड़े भागपर अलग अलग विचार। यहाँपर इन दोनों भागोंपर अलग अलग विचार करना अधिक लाभप्रद होगा।

विषयका विभाजन—जब सभाके सामने कोई ऐसा प्रस्ताव उपस्थित हो जिसके कई ऐसे हिस्से किये जा सकते हों जिनमेंसे प्रत्येक हिस्सा एक स्वतन्त्र विषय-सा हो जाय तब यदि कोई सदस्य विषयके विभाजनकी मांग पेश करे तो उस प्रस्तावके हिस्से किये जा सकते हैं। विभाजनका जो प्रश्न उठाया जाय, उसमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख रहना चाहिये कि विषयोंका विभाजन किस प्रकारसे किया जाय। यदि एक सदस्य द्वारा सुझाये गये विभाजन-रूप पर किसी सदस्यको एतराज हो तो दूसरा सदस्य उसके बताये हुए रूपको बदल कर अपना नया विभाजन रूप पेश कर सकता है। इन विभिन्न विभाजन-रूपों पर उसी क्रमसे विचार किया जायगा जिस क्रमसे ये पेश किये गये होंगे। परन्तु यदि विभाजन-रूप निर्धारित करते हुए कोई सदस्य किसी विषयके पूर्व बताये हुए सदस्यकी अपेक्षा संख्यामें अधिक हिस्से करनेका प्रस्ताव रखे तो पहिले इस प्रस्तावपर विचार होगा और बादमें अन्य प्रस्तावों पर। यदि किसी प्रस्तावमें अनेक विषय होते हुए भी उनका समष्टीकरण एक ही प्रस्तावमें ऐसे ढंगसे किया गया हो जिसके हिस्से न हो सकते हों तो उस प्रस्तावका विभाजन न किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ, यदि कोई प्रस्ताव आवे जिसमें कहा गया हो "अमुक हिदायतोंके साथ अमुक कार्य कमेटीके सुपुर्द किया जाय" तो इस प्रस्तावके टुकड़े नहीं किये जा सकते हालां कि इसमें अनेक भिन्न भिन्न विषय हैं। कारण यह है कि यदि इसके हिस्से किये गये और जैसा कि नियम है, प्रत्येक हिस्सेपर अलग अलग वोट लिये गये

और यदि इस प्रकार विचार करनेपर कमेटीके सुपुर्द करने वाला हिस्सा अस्वीकृत हो गया तो हिदायतों वाले हिस्सेका कोई अर्थ ही न रह जायगा। इसी प्रकार यह प्रस्ताव कि अमुक शब्द कहकर उनके स्थानपर अमुक शब्द रखे जायं" भी अविभाज्य है।

जब स्वतन्त्र रूपसे भिन्न भिन्न विषयोंपर मत प्रकट करने या कार्य करनेकी बातें एक साथ ही एक प्रस्तावमें पेश की गयी हों, तब किसी एक एक सदस्यके अनुरोधपर भी उस प्रस्तावका विभाजन करना चाहिये। सदस्य इस प्रकारका अनुरोध उस अवस्थामें भी कर सकता है, जब दूसरे किसी व्यक्तिको वक्तृताधिकार दिया जाय जा चुका है। परन्तु यदि विषय हो तो चाहे जितने घुमाव-फिरावके साथ जटिल और क्लिष्ट भाषामें वह क्यों न लिखा गया हो, कोई सदस्य उसके टुकड़े करनेके लिये आग्रह नहीं कर सकता। हाँ, उसके लिये यह अवश्य हो सकता है कि वह आपत्तिजनक स्थानोंको हटा देनेका प्रस्ताव पेश करे। यदि एक प्रस्ताव-मालाके स्थानपर दूसरी प्रस्ताव-माला रखनेका प्रस्ताव किया गया हो तो यह प्रस्ताव भी विभाजित नहीं हो सकता। परन्तु इसके सम्बन्धमें यह प्रस्ताव अवश्य उपस्थित किया जा सकता है कि अमुक भाग निकाल डाला जाय। परन्तु अमुक स्थान को निकाल डालनेका यह प्रस्ताव भी उसी समय तक आ सकता है; जबतक कि वह दूसरेकी स्थान पूर्तिके लिये वोटों द्वारा स्वीकृत न किया जा चुका हो। स्वीकृत हो जानेके बाद उसे निकाल डालनेका प्रस्ताव भी न आ सकेगा। जब किसी कमेटीकी ओरसे अनेक विषयोंपर भिन्न भिन्न प्रस्ताव आये हों तब केवल एक प्रस्ताव करके सब विषयोंके प्रस्तावोंको स्वीकृत किया जा सकता है बशर्ते कि कोई सदस्य इसपर एतराज न करे। परन्तु यदि किसी

एक विषयपर किये गये कमेटीके प्रस्तावपर किसीको एतराज हो तो उस विषयपर अलगसे वोट लेनेके बाद अन्य विषय, जिनपर किसीको कोई एतराज नहीं है; एक प्रस्ताव द्वारा ही स्वीकृत किये जा सकते हैं।

विषय विभाजन सम्बन्धी प्रस्ताव प्रधान प्रस्ताव और संशोधनों पर ही उठ सकते हैं। अनिश्चित समयके लिये स्थगित कर देनेके प्रस्तावके अतिरिक्त ये प्रस्ताव अन्य किसी प्रस्तावको रोक कर पेश नहीं किये जा सकते। और अधिकारात्मक प्रस्ताव, प्रसंग जन्य प्रस्ताव तथा संशोधन और अनिश्चित समय के लिए स्थगित करनेके सन्बन्धके प्रस्तावोंको छोड़कर अन्य उपप्रस्ताव इसे दाबकर पहिले पेश हो सकते हैं। इनका संशोधन हो सकता है, परन्तु अन्य सुविधा-जनक प्रस्ताव इनपर नहीं लगाये जा सकते। इनपर वाद विवाद भी नहीं हो सकता। ये किसी ऐसे समय, जब विभाज्य प्रश्न या अनिश्चित समयके लिए स्थगित करनेके प्रश्न छिड़े हों, छेड़े जा सकते हैं, चाहे उस प्रश्नपर विचार करनेको रोकनेके प्रस्ताव की आज्ञा भी दी जा चुकी हो। परन्तु यह अच्छा होता है कि विषय छिड़ते ही यदि वह विभाजन योग्य है तो उसके विभाजन का प्रस्ताव कर दिया जाय। इस प्रस्तावपर आमतौरसे वोट नहीं लिये जाते। उपस्थित सदस्योंकी साधारण सम्मति से ही इसका निर्णय किया जाता है। परन्तु यदि कोई सदस्य इस प्रकार काम करनेपर एतराज करे तो नियमानुसार इस प्रश्नपर भी वोट ले लेना चाहिए।

थोड़े थोड़े भागपर विचार—जब एक ही विषय पर किये गये अनेक प्रस्तावोंकी एक प्रस्तावमाला, अथवा भिन्न भिन्न भागोंसे संयुक्त उपनियमोंका एक पूरा अंश जिसमें सब भाग एक दूसरेसे सम्बन्ध रखते हों, विचारार्थ उपस्थित किये गये हों, तब इन प्रस्तावोंका विभाजन नहीं हो सकता। कारण

यह है कि यदि इनमेंसे किसी एक भागपर विचार किया जा चुका हो और फिर पीछे वाले भागपर विचार करते समय पूर्व वाले भागमें फिर रद्दोबदल करनेकी आवश्यकता समझ पड़े तो उस भागवाले वोटोंपर पहिले पुनर्विचार करना पड़ेगा तब कहीं उसमें रद्दोबदल हो पायेगा और उपनियमोंके सम्बन्ध में तो और भी कठिनाई होगी क्योंकि उपनियम तो स्वीकृत होते ही लागू हो जाते हैं और आगेवाले भागोंपर विचार करते समय पूर्ववाले भागोंमें स्वीकृत नियमोंका प्रभाव पड़ेगा। परन्तु अन्य अवसरोंपर जब ऐसे विषय उपस्थित हों, जिनके कई भाग हों तो अच्छा यही होता है कि प्रत्येक भागपर अलग अलग विचार किया जाय। परन्तु यदि सभा समष्टि रूपसे सब भागोंपर एक साथ ही विचार करनेकी इच्छा प्रकट करे तो एक साथ भी विचार किया जा सकता है। यदि सभापति थोड़े थोड़े भागपर विचार करना भूल जाय तो कोई सदस्य उठकर कह सकता है कि थोड़े थोड़े भागपर विचार किया जाय।

जहांपर किसी जटिल रिपोर्ट, उपनियमोंके समूह, अथवा प्रस्तावोंमें समूह आदि ऐसे विषयोंपर विचार करना हो जिनके हिस्से न हो सकते हों; वहाँ निम्नलिखित ढंगसे काम किया जाता है—जिस सदस्य या मंत्रीको रिपोर्ट आदि पेश करनी हो वह मन्त्री वक्तृताधिकार प्राप्त करनेके बाद खड़ा होकर कहता है कि अमुक कमेटीने अमुक रिपोर्ट पेश की है, अथवा यह कि कमेटी सिफारिश करती है कि अमुक प्रस्ताव स्वीकार किया जाय।" इतना कहकर वह रिपोर्ट या प्रस्ताव पढ़कर सुनाता है और इसके बाद प्रस्ताव करता है कि वह स्वीकार हो। यदि वह स्वीकार करनेका प्रस्ताव करना भूल जाय तो सभापति उसे याद दिला सकता है अथवा अपने आप भी प्रश्न उपस्थित कर सकता है कि वह प्रस्ताव स्वीकृत किया जाय। इसके

बाद एक एक पैरेग्राफ (एक एक अंश) करके उस रिपोर्ट या प्रस्तावपर विचार किया जाता है। पहिले एक पैरेग्राफ पढ़ा जाता है। इसके बाद सभापति प्रश्न करता है कि इसपर कोई संशोधन है?" इसपर जो संशोधन आते हैं उनपर वाद विवाद होता है। अन्तमें जब एक पैरेग्राफके सब संशोधनों पर विचार हो चुकता है तब आगेवाले पैरेग्राफके सम्बन्धमें विचार होता है। उस समय सभापति कहता है कि 'चूंकि इस पैरेग्राफके सम्बन्धमें अब कोई संशोधन शेष नहीं रह गये अतः अब दूसरे पैरेग्राफ पर विचार होगा।' और फिर वही क्रिया दोहरायी जाती है। इस प्रकार जब तक सब पैरेग्राफ समाप्त नहीं हो जाते तब तक उनपर अलग अलग विचार होता है। परन्तु वे पैरेग्राफ केवल संशोधन करके छोड़ दिये जाते हैं स्वीकृत नहीं किये जाते। जब सब पैरेग्राफों पर सन्तोष जनक संशोधन हो जाते हैं तब सब प्रस्ताव या रिपोर्ट आदिको एक साथ स्वीकृत करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। इस प्रस्तावके बाद उसपर फिर संशोधन और वाद-विवाद होता है। कोई नये अंश बढ़ाये जा सकते हैं। कोई विशेष अंश बदले या निकाले जा सकते हैं; और जब सब प्रकारसे विचार हो चुकता है, तब समस्त प्रस्तावको एक साथ स्वीकार करनेके सम्बन्धमें वोट लिये जाते है; और बहुमतके अनुसार निर्णय किया जाता है। यह परिपाटी एसेम्बली आदिमें कानून पास करानेके समय विशेष रूपसे बरती जाती है। संशोधनमें पैरेग्राफकी संख्याके सम्बन्धमें संशोधन नहीं किये जाते। क्योंकि अन्यान्य संशोधनोंके आधारपर पैरेग्राफोंकी संख्या मंत्री या क्लर्क स्वयं घटा बढ़ा सकता है।

(५) *सभाका विभाजन तथा सम्मति गणना सम्बन्धी अन्य प्रस्ताव*—Division of the assembly and other motion relating to voting) कभी कभी सभाओंमें ऐसी अवस्था आ जाती है जब किसी विशेष सदस्यको यह शक हो जाता है कि वोट गिननेमें सभापति अथवा अन्य व्यक्तिने जिसने वोट गिने हैं, गलती की है, ऐसी अवस्था में सभा-विभाजन सम्बन्धी प्रस्ताव लाया जा सकता है। जब किसी प्रश्नपर सम्मति लेनेके लिये सभापतिने आदेश दे दिया हो, मत गणना भी हो चुकी हो और पक्ष विपक्षके वोटोंकी संख्या बतायी भी जा चुकी हो परन्तु सभापतिने मूल प्रश्नको स्वीकृत या अस्वीकृत घोषित न कर दिया हो, तब यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। इसके लिये यह आवश्यक नहीं है कि सभापतिसे पहिले वक्तृताधिकार प्राप्त कर लिया जाय। परन्तु यह अवश्य है कि इसे उस समय पेश करना चाहिये जब कि दूसरा कोई प्रस्ताव सामने न आ गया हो। प्रस्ताव पेश करनेके लिए सभासदको उठकर "मैं सभा विभाजनकी मांग पेश करता हूं" अथवा केवल "सभा विभाजन" कहना पड़ता है। इसके बाद इसपर कार्यवाही की जाती है। इसके सम्बन्धमें समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती और न इसपर विवाद किया जा सकता है न संशोधन। इसपर अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव भी लागू नहीं हो होते।

विभाजनकी कई प्रणालियां हैं। कभी पक्ष विपक्षमें मत रखनेवाले व्यक्तियोंके हाथ उठवाकर, कभी कागजमें लिखवा कर, कभी खड़ा करके और कभी अलग अलग बैठा करके भी यह गणना की जाती है। प्रत्येक सभासद को यह अधिकार रहता है कि वह सभा विभाजनकी मांग पेश कर सके। परन्तु सभापतिको यह देखना पड़ता है कि इस अधिकारका

दुरुपयोग तो नहीं हो रहा। कभी कभी कुछ सभासद ख्वामख्वा तङ्ग करनेके लिये ही विभाजनकी मांग पेश करते हैं। ऐसी अवस्थामें सभापति को उसे तुरन्त रोक देना चाहिए। वास्तवमें विभाजनकी मांग उसी समय उचित मानी जाती है; जब पक्ष विपक्षके मत दाताओंकी संख्या प्रायः समान हो। जब दोनोंका अन्तर स्पष्ट हो तब उसकी मांग पेश करना अनुचित है और सभापति ऐसी अवस्थामें उस अधिकारसे किसी सदस्यको वंचित कर सकता है। विभाजनके समय किस प्रणालीसे काम लिया जाय इसका निर्णय या तो सभापति स्वयं कर सकता है या योंही सभासदोंसे पूछकर कर सकता है। जब मत लिखकर मांगे गये हों तब ज्योंही सभापतिको यह प्रतीत हो कि सब लोगोंने अपने मत लिखकर दे दिये त्योंही वह पूछेगा कि क्या सबने वोट दे दिये। यदि कोई उत्तर न मिलेगा तो वह घोषित करेगा कि सबने वोट दे दिये अब ये बन्द किये जाते हैं और गिनने वालेको गिननेका आदेश देगा। यदि बीचमें ही कोई सदस्य वोट लेना बन्द करनेका प्रस्ताव करेंगे तो सभापति उस समय तक जब तक कि वह यह देख न ले कि प्रायः सब लोगोंने वोट दे दिये हैं, उस प्रस्तावको पेश न होने देगा। इसके बाद उस प्रस्ताव पर विचार होगा और उसका निर्णय दो तिहाई वोटोंसे होगा। यदि मत लेखन समाप्त हो जानेके बाद कोई नये सदस्य आवें और यह हितकर समझा जाय कि फिर मत लेखन आरम्भ किया जाय तो सभाके बहुमतसे हो सकता है। इनमेंसे किसी प्रस्ताव पर वाद-विवाद नहीं किया जा सकता।

(६) *नामजदगी सम्बन्धी प्रस्ताव*—(motions relating to nominations)—यदि किसी सभामें नामज़दगीके सम्बन्धमें कोई

नियम या उपनियम न बना हो, और सभाने कोई अन्य उपाय स्वीकार न किया हो तो कोई सदस्य उठकर किसी स्थानकी पूर्तिके लिये की जानेवाली नामज़दगीके सम्बन्धमें यह प्रस्ताव कर सकता है कि उसकी नामज़दगी अमुक रीतिसे की जाय। यदि निर्वाचन हो रहा हो तो इस प्रकारका प्रस्ताव प्रसङ्ग जन्य प्रस्ताव माना जायगा और यदि निर्वाचन छिड़ा हुआ विषय न हो प्रसङ्ग जन्य प्रधान प्रस्ताव माना जायगा। इस पर विवाद नहीं किया जा सकता। और जब यह केवल प्रसंग जन्य प्रस्तावके रूपमें रहता है तब संशोधनके अतिरिक्त अन्य कोई सुविधाजनक प्रस्ताव भी इस सम्बन्धमें नहीं हो सकते। अधिकारात्मक प्रस्ताव इससे पहिले पेश किये जा सकते हैं। इस प्रस्तावके अनुसार कहा जा सकता है कि नामज़दगी सभापतिके द्वारा की जाय, सभाके द्वारा की जाय, या इसके लिये एक कमेटी निर्माण की जाय और उसके द्वारा नामज़दगी की जाय अथवा लिख करके या पत्र व्यवहारसे नाम-ज़दगी की जाय।

इस प्रकारसे जब किसी स्थानके लिए कोई एक नाम पेश किया जाय तो सभापति सभासे पूछेगा कि क्या उक्त स्थानके लिए अन्य कोई व्यक्ति नाम-ज़द किया जाता है। यदि अन्य नाम न आवे तो नामज़दगी बन्द कर दी जाती है। बड़ी सभाओंमें तो नामज़दगी रोकनेके लिए स्वतन्त्र रूपसे प्रस्ताव लाया जाता है। परन्तु इसके लिये भी यह ध्यान रखना चाहिए कि यह प्रस्ताव उस समय लाया जाय जब सभासदोंको अपने अपने उम्मेदवार नामज़द करनेका यथेष्ट अवसर मिल चुका हो अन्यथा ये प्रस्ताव अनियमित माने जायंगे। नामज़दगी बन्द करनेका यह प्रसङ्ग जन्य (नामज़दगी और निर्वा-चनके प्रसङ्गसे उत्पन्न होनेवाला) प्रधान प्रस्ताव है। इसपर वाद विवाद

नहीं किया जा सकता। संशोधन भी केवल समयके सम्बन्धमें हो सकता है। अन्य कोई सुविधा जनक प्रस्ताव इस सम्बन्धमें नहीं हो सकते। अधिकारात्मक प्रस्ताव इससे पहिले पेश किये जा सकते हैं। उनकी स्वीकृतिके लिए दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है क्योंकि इससे सभासदोंके अधिकारोंपर आघात होता है।

एक बार बन्द करनेके बाद यदि किसी कारणसे फिर नामजदगी खोलने की आवश्यकता प्रतीत हो तो बहुमतके निर्णयसे वह हो सकता है। पुनः खोलनेके प्रस्ताव पर वाद विवाद नहीं किया जा सकता यह भी समयके सम्बन्धमें ही संशोधित किया जा सकता है, और कोई सुविधा जनक प्रस्ताव इस सम्बन्धमें नहीं हो सकते। अधिकारात्मक प्रस्ताव इससे पहिले पेश हो सकते हैं।

(७) *सभाके कार्योंसे उत्पन्न होनेवाले अनुरोध*--(Requests growing out of the Business of the assembly) सभाओंमें कभी कभी ऐसे प्रसङ्ग आते हैं जब सभासदोंको किसी विषय की सूचनाकी आवश्यकता पड़ जाती है अथवा काम करने या करवानेकी आवश्यकता पड़ जाती है जिसके लिये उन्हें सभामें कुछ प्रार्थनाएं या अनुरोध करने पड़ते हैं। ऐसे अवसर अधिकांशमें निम्नलिखित श्रेणियोंमें विभाजित किये जा सकते हैं :—(क) सभा विधान सम्बन्धी प्रश्न (ख) किसी सूचनाके लिए प्रार्थना (ग) प्रस्ताव वापस लेनेकी अनुमति (घ) कागजातका पठन (ङ) कार्यसे विरत रहनेकी अनुमति (च) अन्य किसी अधिकारके लिए प्रार्थना। अब नीचे इनमेंसे प्रत्येक श्रेणीके प्रश्न पर पृथक पृथक विचार किया जायगा।

(क) सभा-विधान सम्बन्धी प्रश्न—यह प्रश्न उस समय उपस्थित होता है, जब कोई सदस्य अधिकारका प्रश्न उठाना चाहता है, परन्तु उसे इस बातमें सन्देह मालूम होता है कि उस अवसरपर ठीक ढंगसे वह प्रश्न उठाया जा सकता है या नहीं अथवा यदि वह यह चाहता हो कि सभा उस विषयपर जो कमेटीके पास है तुरन्त कार्य करे परन्तु यह न जानता हो कि उसपर काम कैसे करवाया जा सकता है तो इन दोनों या ऐसी ही अन्य अवस्थाओंमें वह सभाविधान सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित कर सकता है। इसके लिये उसे वक्तृताधिकार प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। वह तुरन्त खड़ा होकर कह सकता है—"सभापति महोदय, मैं विधान सम्बन्धी प्रश्न पूछना चाहता हूं।" यह प्रश्न जब उसी विषयपर किया जाता है, जिसपर तुरन्त ध्यान देनेकी आवश्यकता है, तब यह दूसरे सदस्यके वक्तृताधिकार प्राप्त कर लेनेपर भी और उसके भाषणके बीचमें भी किया जा सकता है। परन्तु यदि कोई सदस्य इस अधिकारके बलपर किसी वक्ताको बार बार टोकता हो तो इसकी अनुमति उतनी ही बार मिलनी चाहिए जितनी बार प्रश्नकर्त्ताकी अधिकार रक्षाके लिए आवश्यक हो। जब प्रश्नकर्त्ता अपना प्रश्न पूछ चुके तब सभापतिको यह देखना पड़ता है कि उस प्रश्नका उत्तर उस समयके वक्ताके भाषणके बीचमें ही देना उचित है या बादमें और उसीके अनुसार यह काम करता है। यद्यपि सभापतिका यह कर्तव्य नहीं है कि सभा सम्बन्धी सब विधानोंका वह उत्तर दे तथापि जो प्रश्न उस समय छिड़ा हुआ हो उसके सम्बन्धवाले विधानोंका उत्तर उसे अवश्य देना चाहिये। सभापतिसे यह आशा की जाती है कि वह विधान सम्बन्धी बातें अन्य सदस्योंकी अपेक्षा अधिक जानता है। अधिकारात्मक प्रस्ताव, यदि वे उस समय पेश किये जा सकते हों तो, इसके पहिले विचार योग्य होते

हैं। इनपर वाद विवाद या संशोधन नहीं किया जा सकता न कोई सुविधा-जनक प्रस्ताव लगाया जा सकता है।

(ख) **किसी सूचनाके लिये प्रार्थना**—यह प्रार्थना उस समयकी जा सकती है जब इसका सम्बन्ध उस समय छिड़े हुए विषयसे हो और इस पर उसी प्रकार कार्यवाही की जाती है, तथा इसके अधिकार भी वे ही हैं जो सभा विधान सम्बन्धी प्रश्नके हैं। यह प्रार्थना दो प्रकारकी होती है। एक तो सीधे सभापतिसे उत्तर पानेकी आशासे की जाने वाली और दूसरी वक्तासे उत्तर पानेकी आशासे की जानेवाली। जब सभापतिसे उत्तर पानेकी आशा हो तब प्रार्थना करनेवाला खड़ा होकर कहेगा,—'सभापति महोदय मैं अमुक विषयकी सूचना चाहता हूं" अथवा मैं सूचना सम्बन्धी मांग पेश करता हूं। इसके बाद सभापति उससे सूचना का विषय पूछेगा। इस सम्बन्धमें वह सभा विधान सम्बन्धी प्रश्नके समान ही कार्यवाही करेगा। परन्तु जब प्रार्थना वक्तासे उत्तर पानेकी आशासे की जाती है, तब प्रार्थी उठकर कहता है, सभापति महोदय, मैं वक्ता महाशय से एक प्रश्न करना चाहता हूं" इसपर सभापति वक्तासे पूछेगा कि क्या वह बीचमें इस प्रकार टोके जानेकी स्वीकृति देता है और उसकी स्वीकृति मिल जानेपर प्रार्थीसे प्रश्न करनेके लिए कहता है। उस समय फिर प्रार्थी सभा-पतिको ही सम्बोधित करके कहेगा (क्योंकि सभाके समय सदस्योंमें आपसमें बात चीत नहीं हो सकती) "सभापति महोदय मैं वक्तासे यह पूछता हूं कि ....(जो प्रश्न पूछना हो उसका उल्लेख)" और इसका उत्तर देते हुए वक्ता भी सभापतिको सम्बोधित करके ही उत्तर देगा। इस प्रकारके प्रश्नोत्तर में जो समय लगेगा वह वक्ताको दिये गये बोलनेके समयसे काट लिया जायगा।

(ग) प्रस्ताव वापस लेने या संशोधन करनेकी अनुमति — कभी कभी ऐसे प्रसंग आते हैं जब प्रस्तावक अपना प्रस्ताव वापस ले लेना चाहता है या उसमें संशोधन करना चाहता है। इस प्रकारके प्रसंग यदि उस समय आवें जब कि सभापति द्वारा वह प्रस्ताव सभाके सामने विचारार्थ छेड़ न दिया गया हो तब तो प्रस्तावक बिना किसी प्रार्थनाके उसे वापस ले सकता या उसका संशोधन कर सकता है। परन्तु यदि सभापतिने उसे विचारार्थ सभाके सामने उपस्थित कर दिया हो तो उसपर सभाका अधिकार हो जाता है और प्रस्तावक अपने आप कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। उस समय उसे सभाकी अनुमति लेनी पड़ती है। उसी समय इस प्रकारकी प्रार्थना करनी पड़ती है। उस अवस्थामें प्रस्तावककी प्रार्थना सुन कर सभापति यह पूछता है कि प्रस्ताव वापस ले लेने अथवा उसके संशोधन करनेमें किसीको आपत्ति तो नहीं है। यदि किसीने आपत्ति न की तब तो सभापति तुरन्त यह घोषित कर देता है कि प्रस्ताव वापस हो गया या उसमें अमुक संशोधन कर दिया गया। परन्तु यदि किसीने आपत्ति की तो उसे बाकायदा सभाके सामने यह प्रश्न विचारार्थ उपस्थित करना पड़ता है और बहुमतके निर्णयके अनुसार कार्य करना पड़ता है। यदि किसी समय प्रस्तावकके सामने किसी अन्य सदस्यकी ओरसे कोई संशोधन आया हो जिसे वह प्रस्तावक पसन्द करता हो तो वह उसी समय उठकर कह सकता है कि मैं इस संशोधन को स्वीकार करता हूं और यदि सभा उस कथनपर एतराज करे तो सभापति को इसे सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित करना पड़ता है। इस प्रकारका संशोधन प्रायः सर्व सम्मतिसे ही स्वीकार किया जा सकता है। प्रस्ताव वापस लेनेकी प्रार्थना मूल प्रस्ताव पर वोट लेनेके पहिले तक की जा सकती है। चाहे

उसमें संशोधन आदि भी क्यों न हो चुके हों। इसके समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती। जब वापस लेनेकी प्रार्थना प्रस्तावकके अतिरिक्त किसी अन्य सदस्य द्वारा की जाती है, तब भी उसके समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती। यह प्रार्थना उस समय की जाती है जब प्रसंग जन्य और सुविधाजनक प्रस्ताव छिड़े हुए हों और इसकी स्वीकृति मिल जानेपर मूल प्रस्ताव वापस होनेके साथ ही साथ उपरोक्त सम्बन्धित प्रस्ताव भी गिर जाते हैं। इनके पहिले अधिकारात्मकप्रस्ताव पेश किये जा सकते हैं, परन्तु इनका न तो संशोधन हो सकता है और न इनपर सुविधाजनकप्रस्ताव लाये जा सकते हैं। इनपर बहस भी नहीं होती, उस अवस्थामें जब पुनर्विचारका प्रस्ताव दोहराया (renw) न जा सकता हो तब वह पुनर्विचारका प्रस्ताव सर्व सम्मतिके बिना वापस नहीं लिया जा सकता। प्रस्ताव वापस हो जानेके अर्थ यह मान लेना है कि वह प्रस्ताव सभाके सामने पेश ही नहीं हुआ।

(घ) **कागजातका पाठ**—सभाकी कार्यवाहीमें कभी कभी ऐसे प्रसंग आते हैं जब वक्ताको अपने भाषणके बीचमें भाषणकी उपयोगिता बढ़ाने के लिये किसी पत्र या पुस्तकसे कुछ अंश पढ़ने पड़ते हैं। यह कार्य साधारणतः ऐसे ही हो जाता है। परन्तु यदि कोई सदस्य इस प्रकारके पाठ पर आपत्ति करे तो बिना सभाकी आज्ञाके उनका पाठ नहीं किया जा सकता। इस प्रकारकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिए प्रार्थना या प्रस्ताव करना पड़ता है जिनपर उपरोक्त विधिसे विचार किया जाता है। इन प्रश्नों और प्रस्तावोंपर अधिकारात्मक प्रस्तावोंको तरजीह दी जाती है, इन पर बहस नहीं की जा सकती, न संशोधन किया जा सकता है, और न सुविधाजनकप्रस्ताव ही लागू होते हैं।

साधारणतः जो पत्र सभाके सामने पेश कर दिये जाते हैं, उनको एक

बार पढ़नेका सब सदस्योंको अधिकार होता है और यदि उनपर संशोधन हों अथवा वादविवाद हो तो वोट देनेके पहिले उन्हें दुबारा पढ़नेका अधिकार भी होता है। यदि किसी समय कोई सदस्य केवल जानकारीके लिए इन पत्रोंको पढ़नेकी प्रार्थना करे तो, यदि कोई सदस्य इस प्रार्थनापर आपत्ति न करे तो, सभापति उन्हें दुबारा पढ़नेकी आज्ञा दे सकता है। परन्तु बिना सभाकी आज्ञा (उपरोक्त अवस्थाको छोड़कर) सभासदोंको सभाके कागजातको पढ़नेका अधिकार नहीं होता। जिस पत्र-व्यवहारपर विचार हो रहा है, वह जिस समय पढ़ा गया हो, उस समय यदि कोई सदस्य अनुपस्थित हो—चाहे वह सभाके कामसे ही कहीं गया हो—तो भी वह इस बातपर आग्रह नहीं कर सकता कि वह पत्र फिर पढ़ा जाय। हर हालतमें एक सदस्यकी सुविधाकी अपेक्षा सभाकी सुविधाका अधिक ध्यान रखना चाहिए।

(ङ) **कर्तव्यसे विरत होनेकी अनुमति**—इस प्रकारकी प्रार्थना उस समय की जाती है, जब कोई सदस्य सभा द्वारा दिये गये किसी कामको करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट करता है। जब किसी सदस्यको किसी पदका भार दिया गया हो अथवा किसी समितिका सदस्य नियुक्त किया गया हो और वह उस पद या सदस्यताके कार्योंका सञ्चालन करनेको तैयार न हो तो उसे निर्वाचनके समय ही तुरन्त अपना नाम वापस ले लेना चाहिए। परन्तु यदि उसकी अनुपस्थितिमें निर्वाचन हो चुका हो तो ज्योंही उसे इस बातकी सूचना मिले, त्योंही लिखित या मौखिक रूपसे मन्त्री या सभापतिको सूचित कर देना चाहिए कि वह उस पद या सदस्यताको स्वीकार नहीं कर सकता। जबतक किसी सभामें विशेष रूपसे ऐसे नियम-उपनियम न हों, तबतक साधारण अवस्थामें किसी सदस्यको पद ग्रहण करनेके लिए वाध्य नहीं किया जा सकता।

परन्तु जब निर्वाचनके बाद या उसकी सूचना पानेके बाद तुरन्त ही सभासद इन्कार नहीं करता और मौन रहकर अपनी स्वीकृति-सी दे देता है, तब वह बाध्य हो जाता है कि कमसे कम उस समयतक वह उस पदपर काम करे; जबतक उसका इस्तीफा स्वीकार करनेका उपयुक्त अवसर न आ जाय। यदि कोई मन्त्री अपने पदसे इस्तीफा दे दे तो इस्तीफा दे देनेके साथ ही वह पदके दायित्वसे मुक्त नहीं हो सकता। उसे इस्तीफा स्वीकार होनेतक या कमसे कम स्वीकृतिके लिए जितना समय लगना चाहिए, उतना समय दे चुकनेतक उस दायित्वको सँभालना पड़ेगा। इस्तीफा स्वीकार न करना साधारणतः अच्छा नहीं होता। जिस प्रकार सभासदको यह अधिकार नहीं होता कि वह अपने पदपर जबतक चाहे रहे, उसी प्रकार सभाको भी यह अधिकार नहीं होता कि वह अनिच्छुक व्यक्तियोंपर किसी पदका भार डाले। निर्वाचनके समय ही उपस्थित होनेकी अवस्थामें तो सभासदके अस्वीकार करनेपर उस स्थानपर अन्य सदस्यका निर्वाचन इस प्रकार हो जायगा, जैसे उस पदपर और किसीका निर्वाचन हुआ ही न था। परन्तु अनुपस्थित होनेपर इस्तीफा पेश होगा और उसपर विधिवत् विचार किया जायगा। और उसके स्वीकार हो जानेपर रिक्त स्थानकी पूर्ति उस सभाके नियमोपनियमके अनुसार की जायगी। इस प्रश्नपर बहस हो सकती है, और इसपर सुविधाजनक प्रस्ताव भी लाये जा सकते हैं। इसपर अधिकारात्मक और अन्य प्रसंगजन्य प्रस्तावोंको तरजीह दी जा सकती है।

(च) अन्य अधिकारोंके लिए प्रार्थना—जब किसी सदस्यको अपने किसी अधिकारकी रक्षाके लिए कोई प्रार्थना करनी होती है, तब वह अपने स्थानपर खड़ा होकर सभापतिको सम्बोधन करता है; और जब सभापति उसकी ओर देखता है, तब वह अपनी प्रार्थना कह सुनाता है। इस प्रार्थनाके

लिए किसी ऐसे समय खड़ा हुआ जा सकता है, जब एक वक्ताने अपना भाषण समाप्त कर दिया हो। इसके बाद यदि दूसरे वक्ताको वक्तृताधिकार प्राप्त भी हो गया हो तो भी, यदि प्रार्थनाकर्त्ता पहिलेसे खड़ा हो, तो उसे अपनी प्रार्थना करनेका अवसर दिया जायगा। किसीके भाषणके बीचमें प्रश्नकर्त्ता उस समयतक नहीं बोल सकता, जबतक उसे यह निश्चित न हो जाय कि उसका प्रश्न इतना महत्वपूर्ण है कि बीचमें किया जा सकता है। साधारणतः ये प्रश्न आपसमें नियमकी पाबन्दी किये बिना ही प्रायः सर्वसम्मतिसे तय कर लिये जाते हैं, परन्तु यदि कोई एतराज करे तो इनपर वोट भी लिये जा सकते हैं। इनके सम्बन्धमें बहस तो नहीं की जा सकती, परन्तु आवश्यकता पड़नेपर विवरण मांगा और दिया जा सकता है। इन प्रश्नोंके सम्बन्धमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इनसे सभाकी कार्यवाहीमें बाधा पड़ती है। अतः उतना ही समय दिया जाना चाहिए, जितना न्यायके लिए आवश्यक हो।

अधिकारात्मक प्रस्ताव

अधिकारात्मक प्रस्ताव यद्यपि छिड़े हुए विषयसे सम्बन्ध नहीं रखते, तथापि इतने महत्वके होते हैं कि चाहे जो प्रश्न छिड़ा हो, सबको रोककर इनपर विचार किया जाता है। अपनी इस महत्ताके कारण वे ऐसे हैं कि साधारणतः उनपर न वादविवाद ही हो सकता है, न उनके सम्बन्धमें कोई सुविधाजनक प्रस्ताव ही उपस्थित किया जा सकता है। परन्तु जब स्थगित करनेका समय निर्धारित करने (to fix the time to which to adjourn) अथवा विश्राम लेने (to take a recess) का प्रस्ताव छिड़ा हुआ हो, तब इन दोनों प्रस्तावोंपर संशोधनके प्रस्ताव आ सकते हैं। इसी प्रकार जब सभाने कार्यक्रम (order of the day) या अधिकारके प्रश्न (question of privilege) पर विचार करना वस्तुतः आरम्भ कर दिया हो, तब इन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें संशोधन और वादविवाद उसी प्रकार हो सकता है, जिस प्रकार प्रधान प्रस्तावोंपर।

इस कोटिके प्रस्तावोंमें (१) सभा जिस समयके लिए स्थगित की जाय उस समयको निर्धारित करने, (२) सभाको स्थगित करने, (३) विश्राम ग्रहण करने, (४) अधिकारका प्रश्न उपस्थित करने और (५) कार्यक्रमके अनुसार काम करनेके प्रस्ताव आते हैं। ये प्रस्ताव जिस क्रमसे यहां रखे गये हैं, उसी क्रमसे वे एक-दूसरेसे पहिले विचारणीय होते हैं। अब नीचे इन्हीं प्रस्तावोंपर अलग-अलग विचार किया जायगा।

(१) जिस समयके लिए सभा स्थगित की जाय, उस समयको निर्धारित करना—(to fix the time to which the assembly shall adjourn) यह प्रस्ताव उसी समय अधिकारात्मक प्रस्ताव माना जाता है, जब सभाके सामने कोई प्रश्न छिड़ा हुआ हो और साथ ही सभा ऐसी हो, जिसने उस दिन या उसके दूसरे दिन दूसरी बैठक करनेका प्रबन्ध न किया हो। स्थगित करनेका समय सभाकी दूसरी बैठकसे आगेका नहीं हो सकता। यदि यह प्रस्ताव उस सभामें पेश किया जाय, जिसने उस दिन या उसके दूसरे दिन अपनी बैठक करनेका प्रबन्ध कर लिया हो अथवा जिसमें कोई अन्य प्रश्न न छिड़ा हो तो यह प्रस्ताव प्रधान प्रस्ताव हो जाता है और इसपर संशोधन, वादविवाद आदि उसी प्रकार हो सकते हैं, जिस प्रकार प्रधान प्रस्तावोंमें।

यह प्रस्ताव अन्य सब प्रस्तावोंसे पहिले विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है और यदि स्थगित (adjourn) करनेका प्रस्ताव स्वीकृत भी हो गया हो, तब भी यह पेश किया जा सकता है, बशर्ते कि सभापतिने सभा स्थगित न कर दी हो। इस प्रस्तावका संशोधन किया जा सकता है और इसपर लिये गये वोटोंपर पुनर्विचार भी किया जा सकता है। जब सभाका कोई स्थान

निश्चित न हो, तब इस प्रस्तावमें समयके साथ-साथ स्थान भी निर्धारित किया जा सकता है। उस दशामें समय और स्थान, दोनोंके सम्बन्धमें संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं। स्थगित सभा पूर्व सभाका एक अंग ही मानी जाती है, अलगसे कोई वस्तु नहीं। इस प्रस्तावका रूप सामान्यतः यह होता है :—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि यदि सभा स्थगित की जाय तो कल २ बजे दिनके लिए स्थगित की जाय।" अथवा यह कि—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि स्थगित करके सभा कल दिनके २ बजे टाउन हालमें की जाय।"

(२) *स्थगित करना*—(to adjourn) सभा स्थगित करनेका प्रस्ताव (जब उसमें और कोई बात नहीं कही जाती) प्रायः सदा ही अधिकारात्मक प्रस्ताव होता है। परन्तु यदि अवस्था ऐसी आ गयी हो कि स्थगित करनेका प्रस्ताव स्वीकृत करनेसे सभा सदाके लिए भंग हो रही हो, अर्थात् यदि स्थगित करनेके प्रस्तावका प्रभाव यह पड़ता हो कि सभा सदाके लिए भंग हो रही हो तो अथवा यदि उसमें और कोई बात कही गयी हो, जैसे समय, स्थानका निर्देश आदि, तो वह अधिकारात्मक प्रस्ताव नहीं माना जाता। इस प्रकारकी अवस्था तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें अथवा संगठित सभाओंकी अन्तिम बैठकोंमें आती है। जब यह अधिकारात्मक प्रस्ताव नहीं होता, तब प्रधान प्रस्तावकी भांति इसके प्रति व्यवहार किया जाता है। यह प्रस्ताव उपरोक्त (१) प्रस्तावको छोड़कर अन्य सब प्रस्तावोंसे पहिले विचारका अधिकारी होता है; इसपर न संशोधन किया जा सकता है, न बहस और न सुविधाजनक प्रस्ताव ही लाया जा सकता है। इसपर दिये गये वोटोंपर भी पुनर्विचार नहीं किया जा सकता। परन्तु यह वापस लिया जा सकता है।

यदि यह प्रस्ताव एक बार अस्वीकृत हो जाय तो, बीचमें थोड़ी सी कार्यवाहीके बाद चाहे केवल किसीका एक भाषण ही हुआ हो, यह प्रस्ताव फिर लाया जा सकता है। परन्तु यह अधिकार बड़ा खतरनाक हो सकता है। सदस्यगण केवल सभाके कार्यमें बाधा पहुंचानेके लिए भी उसका प्रयोग कर सकते हैं। उस दशामें सभापति यह कहकर कि चूंकि सभाने एक बार स्थगित करनेके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया है और उस अस्वीकृतिके बाद से अब तक कोई ऐसी घटना नहीं हुई जिससे मालूम हो कि सभा कार्यवाही स्थगित करनेके पक्षमें हो गयी है, यह प्रस्ताव पेश करनेकी इजाजत नहीं दी जाती, उस प्रस्तावको रोक सकता है, जो प्रत्यक्षमें केवल सभामें विघ्न डालनेके लिए ही पेश किया गया हो।

अन्य सब प्रस्तावोंकी भांति यह प्रस्ताव भी वक्तृताधिकार प्राप्त करनेके बाद ही पेश किया जा सकता है। परन्तु यदि कोई सदस्य बिना उठे और सभापतिकी आज्ञा प्राप्त किये ही प्रस्ताव रखे तो उसी दशामें यह नियमित माना जा सकता है जब सभाके प्रायः सब उपस्थित सदस्य उसकी अनुमति दे दें। यह प्रस्ताव उस समय नहीं उपस्थित किया जा सकता जब सभामें मत गणना हो रही हो अथवा मत गणनाकी छान बीन हो रही हो। परन्तु जब बेलट (सम्मति पत्र) द्वारा वोट लिए गए हों तब यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है चाहे वोटोंका परिणाम घोषित न भी किया गया हो। ऐसी दशामें स्थगित होनेके बाद सभाके एकत्र होने पर सबसे पहिले उन वोटोंका परिणाम घोषित करना चाहिए। परन्तु जहां वोट गिननेमें (बैलटके वोट गिननेमें) अधिक बिलम्ब की आशंका हो वहां वैसे भी पूर्व निश्चत समयके लिए सभा स्थगित की जा सकती है या विश्राम किया जा सकता है। स्थगित

करनेके प्रस्तावके बाद अपील, व्यवस्थाका प्रश्न (Question of order) या पूछ ताछ आदि कार्यवाही नहीं की जा सकती। परन्तु यदि इन कार्यवाहियोंमेंसे कोई ऐसी है, जिसका होना स्थगित करनेसे पहिले आवश्यक हो तो अथवा यदि सभा स्थगित करनेके प्रस्तावको अस्वीकार कर दे तो यह कार्यवाही नियमित मानी जायगी।

इस प्रस्तावको पेश करनेके लिये अन्य प्रस्तावोंकी भांति पूर्व सूचनाकी आवश्यकता नहीं होती। जो कुछ जरूरी होता है वह केवल यह है कि किसी भाषण या किसी विशेष कार्यवाहीके बीचमें ही यह उपस्थित न किया जाय। इस प्रस्तावके समय जिस प्रस्ताव पर विचार हो रहा हो उस प्रस्तावके प्रस्तावक को यह अधिकार होता है कि स्थगित करनेके प्रस्तावके पहिले विरोधियों द्वारा पेश की गयी दलीलोंका उत्तर दे सके। परन्तु स्वयं स्थगित करनेके प्रस्तावके प्रस्तावक को उत्तर देनेका अधिकार नहीं होता क्योंकि वास्तवमें उसपर वाद विवाद ही नहीं होता। इस प्रकारकी विशेष बातों के होने पर इस प्रस्तावका समर्थन होना आवश्यक है।

जब इस प्रस्तावपर वोट ले लेनेका समय आवे तब सभापतिको पहिले यह देख लेना चाहिए कि कोई महत्वपूर्ण विषय छूट तो नहीं गया। यदि छूट गया हो तो उसके सम्बन्धमें आवश्यक कार्यवाही करके अथवा यदि किसी खास विषयकी कोई घोषणा करनी हो तो पहिले वह घोषणा करके तब स्थगित करने के प्रस्तावकी सम्मति गणनाका निर्णय सुनाना चाहिए। गणना चाहे तो सभापति पहिले कर सकता है, परन्तु निर्णय उपरोक्त कार्य समाप्त करनेके बाद ही सुनाना उचित है। यदि कोई ऐसा महत्व पूर्ण कार्य हो जिसका उस सभामें ही हो जाना आवश्यक हो तो सभापतिको चाहिए कि वह उस व्यक्तिसे आव-

श्यकता प्रकट करते हुए प्रार्थना करे कि वह अपना प्रस्ताव वापस ले ले। परन्तु यदि वह वापस न ले तो भी सभापति बीचमें आवश्यक कार्योंकी सूचना सभाको दे सकता है। इससे सभाको अपनी सम्मति देनेमें सुविधा होगी। यदि वह सभापति द्वारा बताये गये विषयको आवश्यक समझेगी तो स्थगित करनेके प्रस्तावके विरुद्ध सम्मति देकर उस कार्यको पूरा करनेमें सहायक होगी अन्यथा नहीं। प्रस्तावपर बहस नहीं की जा सकती इसका अर्थ यह नहीं कि बीचमें सूचना भी नहीं दी जा सकती।

जब स्थगित करनेका प्रस्ताव किसी शर्तके साथ होता है, या ऐसे समय होता है, जब सभाके लिए एकत्र होनेका दूसरा मौका मिलनेकी संभावना न हो तब प्रस्ताव का 'अधिकारीपन' (Privilege) नष्ट हो जाता है और वह साधारण प्रधान प्रस्तावकी भांति माना जाता है। कमेटियोंमें जहां भविष्यके लिये मीटिंग करनेकी कोई व्यवस्था नहीं है, स्थगित करनेका प्रस्ताव सभापति की आज्ञापर निर्भर रहता है। परन्तु यदि उस सम्बन्धकी कोई खास आज्ञा दे दी गयी हो तो सभापतिकी आज्ञाकी आवश्यकता नहीं होगी। कमेटी जिस कामके लिए बनी हो उस कामके पूरा हो जानेके बाद रिपोर्ट पेश कर चुकने पर समिति अपने आप भंग हो जाती है।

जब सभाको किसी अनिश्चित समयके लिए स्थगित करनेका प्रस्ताव किया गया हो तब इस प्रस्तावसे वह अधिवेशन ही समाप्त हो जाता है और यदि उसके बाद फिर एकत्र होनेका कोई प्रबन्ध न हो तो सभा भंग ही हो जाती है।

स्थगित करनेके प्रस्तावसे सभामें उस समय छिड़े हुए विषयपर कई प्रकार से प्रभाव पड़ता है। [क] यदि प्रस्तावका रूप ऐसा हो जिससे अधिवेशन

विसर्जित न होता हो तो स्थगित होनेके बाद जो मीटिंग होगी उसमें कार्य विवरण पढ़नेके बाद सबसे पहिले वह विषय लिया जायगा जो स्थगित होनेके समय छिड़ा हुआ था। [ख] यदि प्रस्तावका रूप ऐसा हो जिससे अधिवेशन विसर्जित हो जाता हो तो ऐसी संस्थाओंमें, जिनमें तिमाही मीटिंग तक हुआ करती हैं, अगली मीटिंगके समय सबसे पहिले वही विषय विचारार्थ उपस्थित होगा जो गत मीटिंगमें स्थगित होनेके समय छिड़ा हुआ था। परन्तु यदि उस संस्थाका संगठन सार्वजनिक चुनाव द्वारा होता हो और स्थगित की जानेवाली तथा उसके बाद होनेवाली मीटिंगके बीचमें नया चुनाव होकर उस संस्थामें नये सदस्य आ गये हों तो पहिला विषय छूट जायगा और नया विषय लिया जायगा। [ग] जब ऐसी सभाको स्थगित किया गया हो जिसकी तिमाही मीटिंग न होती हो, अथवा यदि सभा निर्वाचित संस्था हो और मीटिंग उसकी अन्तिम मीटिंग हो तब सब कार्य छूटे हुये माने जायंगे और नये चुनावके बाद स्थगित करनेके समयके किसी कामकी आवश्यकता होगी तो वह प्रश्न नये प्रश्न की भांति सामने आयेगा।

स्थगित करनेका प्रस्ताव और वाद विवाद स्थगित करनेके प्रस्तावमें भेद है। दूसरा प्रस्ताव केवल इसलिए होता है कि वाद विवाद बन्द हो जाय अन्य सब काम हों जब कि पहिले प्रस्तावका अभिप्राय यह होता है कि सभाके सब कार्य स्थगित कर दिये जायं। परन्तु सभाके स्थगित कर देनेका प्रस्ताव बहुमतसे स्वीकार हो जानेके बाद और उसपर सभापतिके निर्णयकी घोषणा हो जानेके बाद भी सभासदोंको उस समय तक अपना स्थान न छोड़ना चाहिये जबतक कि सभापति यह न कहे कि सभा स्थगित की गई। इस प्रस्तावका रूप यह होगा—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि सभा स्थगित कर दी जाय।"

(३) *विश्राम लेनेका प्रस्ताव*—(To take recess) इस प्रस्ताव का अर्थ यह होता है कि विश्राम करनेके अभिप्रायसे कुछ समयके लिए सभा अपना काम स्थगित कर दे, परन्तु वास्तवमें यह किया जाता है इसलिए कि सभामें छिड़ा हुआ विषय कुछ समयके लिए स्थगित हो जाय। यह वास्तवमें उपरोक्त दोनों प्रस्तावोंका सम्मिश्रण है। यह प्रस्ताव उसी समय अधिकारात्मक प्रस्ताव माना जाता है जब ऐसे अवसरपर किया गया हो जब सभाके सामने कोई विषय छिड़ा हुआ हो। और उस दशामें इस प्रस्तावपर वाद-विवाद नहीं हो सकता। इसके सम्बन्धमें एक इस आशयका संशोधन छोड़कर कि विश्राम अमुक समय तक लिया जाय और कोई संशोधन भी पेश नहीं किया जा सकता। इस प्रस्तावके स्वीकृत होनेपर तुरन्त ही इसके अनुसार कार्य किया जाता है।

यह प्रस्ताव यदि ऐसे समय किया गया हो, जब सभाके सामने कोई काम न हो अथवा यदि ऐसे रूपमें किया गया हो जिससे भविष्यके लिये किसी समय [illegible] जब
विश्राम लेनेकी बात आये तो प्रस्ताव अधिकारात्मक [illegible]
[illegible] विचार छिड़ नहीं जाता, तब वह
और प्रधान प्रस्तावके समान व्यव[illegible]
[illegible] जाता है और उसपर न बहस हो सकती है, न
है और सभाको स्थगित [illegible]
[illegible] या जा सकता है, न कोई अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव लगाये
प्रस्तावपर अथ[illegible]
तक [illegible] सकते हैं, न उसपर पुनर्विचार किया जा सकता है और न उसके समर्थनकी ही आवश्यकता होती है। उस दशामें वह ऐसे समय भी पेश किया जा सकता है, जब अन्य सदस्यको वक्तृताधिकार प्राप्त हो चुका हो। परन्तु जब वह छिड़ जाता है, तब तत्काल छिड़ा हुआ प्रश्न (Immediately pending question) बन जाता है और प्रधान प्रस्तावकी भांति उसपर बहस,

पास हो सकता है अन्यथा नहीं। जब स्थगित करनेका समय बढ़ा देनेका प्रस्ताव दो तिहाई वोटसे स्वीकार हो चुका हो तब पूर्व प्रस्तावके अनुसार स्थगित करनेका समय आनेपर सभापति उसकी चर्चा कर सकता है, परन्तु कार्य उसी प्रकारसे चलता रहेगा जैसे चल रहा था।

सभाकी कार्यवाहीके बीचमें जो ऐसा समय जाता है, जिसमें काम बन्द रहता है, उस समयको विश्रामावकाश कहते हैं; चाहे वह विश्राम लेनेके प्रस्तावके कारण आया हो और चाहे पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार आया हो। परन्तु यदि किसी सभामें थोड़े-थोड़े अवकाशके बाद बैठकें होती हों, जो एक-एक दिनसे अधिक न चलती हों, तो उस दशामें यदि एक स्थगित मीटिंग दूसरे दिन होनेवाली हो तो उसके बीचके समयको विश्रामावकाश न कहेंगे। अब अनेक संस्थाओंने इस प्रस्तावको अपने यहांके अधिकारात्मक प्रस्तावोंमेंसे काट दिया है। क्योंकि इसका दुरुपयोग बहुत होता है और इसकी आवश्यकता भी बहुत कम पड़ती है।

स्थगित [illegible]का *प्रश्न*—(Question of privilege) है। दूसरा प्रस्ताव केवल इसलिए [illegible]ओंको छोड़कर अन्य सबसे अधिक सब काम हों जब कि पहिले प्रस्तावका अभिप्राय [illegible] प्राप्त सुविधाओंपर विचार कार्य स्थगित कर दिये जायं। परन्तु सभाके स्थगित [illegible] किसीके भाषणके बहुमतसे स्वीकार हो जानेके बाद और उसपर सभापतिके निर्णयकी [illegible] ही हो जानेके बाद भी सभासदोंको उस समय तक अपना स्थान न छोड़ना चाहिये जबतक कि सभापति यह न कहे कि सभा स्थगित की गई। इस प्रस्तावका रूप यह होगा—"मैं प्रस्ताव करता हूं कि सभा स्थगित कर दी जाय।"

प्रतीक्षा न करे कि सभापति उसे देखे, तब वह अपनी बात कहे । उसे खड़े होनेके साथ ही सभापतिको सम्बोधित कर कहना चाहिये—"माननीय सभापति महोदय", और जब सभापतिकी नजर उसपर पड़े, तब कहे—'मैं सभाके अधिकारका प्रश्न उपस्थित करना चाहता हूं" अथवा "मैं व्यक्तिगत सुविधाका प्रश्न उपस्थित करनेके लिये खड़ा हुआ हूं।" इसके बाद सभापति उसके प्रश्नको सुनकर यह निर्णय करेगा कि वास्तवमें वह अधिकारों और प्राप्त सुविधाओंका प्रश्न है या नहीं । इसपर सभापति अपना जो निर्णय दे, उस निर्णयसे यदि किसी सदस्यको सन्तोष न हो तो वह किसी अन्य सदस्यके समर्थक बन जानेपर दो आदमियोंके साथ अपील कर सकता है । उस दशामें सभापति अपने निर्णयपर विचार करेगा और अन्तिम निर्णय देगा । सभापति यदि उसे अधिकारका प्रश्न मान ले और यह न माने कि वह इतना महत्वपूर्ण है कि उस सदस्यके भाषणके पहिले ही जो भाषण देने उठा है, छेड़ा जाय तो भाषणमें वाधा नहीं डाली जा सकती, और भाषण समाप्त होनेपर, सभापति सबसे पहिले अधिकारके प्रश्नको छेड़नेका आदेश देगा । अधिकारका प्रश्न जब केवल उपस्थित किया जाता है—उसपर विचार छिड़ नहीं जाता, तब वह अधिकारात्मक प्रस्ताव माना जाता है और उसपर न बहस हो सकती है, न संशोधन पेश किया जा सकता है, न कोई अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव लगाये जा सकते हैं, न उसपर पुनर्विचार किया जा सकता है और न उसके समर्थनकी ही आवश्यकता होती है । उस दशामें वह ऐसे समय भी पेश किया जा सकता है, जब अन्य सदस्यको वक्तृताधिकार प्राप्त हो चुका हो । परन्तु जब वह छिड़ जाता है, तब तत्काल छिड़ा हुआ प्रश्न (Immediately pending question) बन जाता है और प्रधान प्रस्तावकी भांति उसपर बहस,

संशोधन आदि सब हो सकते हैं। जिस समय वोट लिये जा रहे हों अथवा वोटोंकी जांच-पड़ताल हो रही हो, उस समय इस प्रस्तावसे वे काम रोके नहीं जा सकते। अधिकारके प्रश्नपर विचार समाप्त हो जानेपर तुरन्त ही सभाकी अन्य कार्यवाही आरम्भ हो जाती है और सबसे पहिले उस प्रश्नपर विचार किया जाता है, जो अधिकारके प्रश्नके पहिले छिड़ा हुआ था।

अधिकारके प्रश्न दो प्रकारके होते हैं—एक सभासे सम्बन्ध रखनेवाले, और दूसरे सभासदोंसे सम्बन्ध रखनेवाले। सभासदोंसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्न प्रायः उस समय उपस्थित होते हैं, जब कोई वक्ता किसीके व्यक्तिगत चरित्रपर आक्षेप करता है। और सभा सम्बन्धी प्रश्न उस समय छिड़ता है, जब सभाकी प्राप्त सुविधाओं या अधिकारोंकी अवहेलना की जाती है। जब ये दोनों बातें एक साथ ही आ गयी हों, तब दोनोंमें पहिले सभा सम्बन्धी प्रश्नपर विचार किया जायगा और बादमें व्यक्ति सम्बन्धी प्रश्नपर। सभाके अधिकारोंके प्रश्नोंमें—सभाके संगठनके सम्बन्धकी बातें, सभासदोंके आरामके सम्बन्धकी (रोशनी, गर्मी, हवा आदिके प्रबन्धवाली) बातें, शोरगुल या अन्य विघ्नोंसे छुटकारा पानेकी बातें, पदाधिकारियों और कर्मचारियोंके बरतावके सम्बन्धकी बातें, किसी सदस्यके सभ्याचार विरुद्ध काम करनेपर उसे दण्ड देनेकी बातें, समाचार-पत्रोंके बरतावके सम्बन्धकी बातें, कार्यवाही लिखनेमें वास्तविकताका ख्याल रखनेकी बातें आदि आ जाती हैं। सभासदोंके अधिकारोंके प्रश्नोंमें सम्बन्धित सदस्यकी सदस्यता, उसके सभा सम्बन्धी चरित्रकी बातें आदिके प्रश्न आते हैं।

(५) उस दिनका कार्यक्रम—(Order of the day) कभी-कभी सभाओंमें ऐसे अवसर आते हैं, जब निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार

कार्य नहीं होता। ऐसे अवसरोंपर कार्यक्रमके विरुद्ध होनेवाली कार्यवाहीको रोककर उसके स्थानपर निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार कार्यवाही करनेके लिये जो प्रस्ताव रखा जाता है, वह इस कोटिमें आता है। यह प्रस्ताव उसी समय आ सकता है, जब कोई अन्य अधिकारात्मक प्रस्ताव न छिड़ा हो। इस प्रस्तावके समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती और यह ऐसे अवसरपर भी उपस्थित किया जा सकता है, जब किसी व्यक्तिको वक्तृताधिकार दिया जा चुका हो। इस प्रस्तावको पेश करनेसे यदि किसीके भाषणमें बाधा भी पड़े तो वह भी क्षम्य होगी। कार्यक्रमके अनुसार काम नहीं हो रहा, इसके अर्थ यह हैं कि जिस समयके लिये जो काम निर्धारित किया गया है, उस समय वह काम नहीं हो रहा। परन्तु इस अर्थसे यह न समझना चाहिये कि किसी दशामें भी किसी विषयके लिये निर्धारित समयपर कोई अन्य कार्य नहीं हो सकता। यदि किसी निर्धारित समयपर उस दिनके कार्यक्रमका वह काम हो रहा हो, जो उस समयसे पहिले नियमानुसार छिड़ चुका था और समाप्त नहीं हुआ था, तो वह कार्य अनियमित न माना जायगा। परन्तु यदि उस समयके लिये विशेषरूपसे कोई विषय निर्धारित किया गया हो तो पहिलेके सब विषय निश्चित रूपसे रोक देने पड़ेंगे।

जब सभाके सामने कोई प्रश्न न छिड़ा हो अर्थात् कोई आदमी बोल न रहा हो या कोई काम न हो रहा हो, तो किसी अन्य व्यक्तिने वक्तृताधिकार पा भी लिया हो और प्रधान प्रस्ताव भी पेश कर चुका हो तो भी यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। परन्तु यदि पूर्व प्रस्तावके उपस्थित और समर्थित हो जानेके बाद सभापतिने उसे सभाके सामने विचारार्थ पेश कर दिया हो तो यह प्रस्ताव नहीं रखा जा सकता। अन्य अधिकारात्मक प्रस्तावोंकी भांति इस

प्रस्तावपर भी वादविवाद नहीं किया जा सकता, न संशोधन किया जा सकता है और न इसके सम्बन्धमें अन्य सुविधाजनक प्रस्ताव ही छेड़े जा सकते हैं। इस प्रस्तावको अस्वीकार करनेके लिये दो-तिहाई वोटोंकी जरूरत होती है। यदि सभा इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दे तो जबतक वह विषय, जो उस समय छिड़ा हुआ था, पूरा न हो जाय तबतक दूसरा विषय नहीं छिड़ सकता।

जब कार्यक्रमके अनुसार काम करनेके प्रस्तावकी घोषणा कर दी जाय, परन्तु साथ ही सभासदोंको यह आवश्यक प्रतीत हो कि तत्काल छिड़े हुए प्रश्नपर अभी और विचार होना चाहिये, तब कोई सदस्य यह प्रस्ताव कर सकता है कि छिड़े हुए प्रश्नपर अभी कुछ देर और विचार किया जाय। इसकी स्वीकृतिके लिये दो-तिहाई वोटोंकी आवश्यकता है और इसके स्वीकृत हो जानेपर उतने समयके लिये उस विषयपर और विचार होगा।

जब कार्यक्रमके अनुसार काम करनेके प्रस्तावकी घोषणा हो चुकी हो और वह प्रश्न छिड़ चुका हो, तब वह प्रधान प्रस्तावकी भांति वादविवाद, संशोधन और सुविधाजनक प्रस्तावोंका विषय हो जाता है। साधारणतः किसी सभाका कार्यक्रम रोका या स्थगित नहीं किया जा सकता। परन्तु जब उस कार्यक्रमके अनुसार वस्तुतः कार्य आरम्भ हो जाय, तब उसे रोक देने या स्थगित कर देनेके प्रस्ताव पेश किये जा सकते हैं और उस दशामें, जब कार्य-क्रम स्थगित हो जाय तब, यदि कोई अन्य कार्य बीचमें आनेवाला न हो तो उसी प्रश्नपर विचार होगा जो पहिलेसे छिड़ा हुआ था।

परन्तु यदि किसी प्रश्नपर उसके निर्धारित समयसे पहिले विचार करना हो तो नियम स्थगित करके वह प्रश्न पहिले विचारार्थ पेश किया जा सकता

है। (नियम स्थगित करनेके प्रस्तावकी स्वीकृतिके लिये दो-तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है।)

जब कोई काम किसी खास दिन या समयके लिये निर्धारित हो जाता है, चाहे वह स्थगित करनेके प्रस्तावके कारण हो, चाहे विशेष कार्यक्रम बना देनेके कारण हो या किसी अन्य कार्यक्रमके अनुसार हो, तब वह कार्य उस समयके लिये नियमित कार्यक्रमके अनुसार माना जाता है। वह साधारणतः उस समयके पूर्व नहीं पेश किया जा सकता। परन्तु यदि दो-तिहाई सदस्य उससे पहिले ही पेश करनेकी सम्मति दें तो वह पहिले भी पेश किया जा सकता है।

कार्यक्रम दो प्रकारके होते हैं—एक साधारण कार्यक्रम, दूसरे विशेष कार्यक्रम।

साधारण कार्यक्रम—साधारण कार्यक्रम उसको कहते हैं, जिसमें कोई विषय किसी विशेष दिन या समयके लिए अथवा किसी विशेष घटनाके बाद पेश करनेके लिए स्थगित कर दिया जाता है। इसमें किसी नियमको स्थगित करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए यह किसी काममें बाधक नहीं बन सकता और न उस समय छिड़े हुए प्रश्नको रोक ही सकता है। परन्तु जब निर्धारित समय आ जाय, तब ऐसी दशामें जब उस समय कोई अन्य प्रश्न न छिड़ा हो, यह अन्य सब प्रश्नोंसे पहिले लिया जायगा। परन्तु यदि विशेष कार्यक्रम उस समयके लिए कर दिया गया हो, या पुनर्विचारका प्रश्न उपस्थित कर दिया गया हो, तो यह प्रश्न दब जायगा। विषयोंकी वह तालिका जिसमें यह कहा गया हो कि अमुक कार्यके बाद अमुक कार्य किया जायगा, तथा स्थगित किये गये विषय लिखकर साधारण कार्यक्रम बनता है। परन्तु यदि कार्यक्रममें यह भी कहा गया हो कि अमुक समयपर अमुक विषय लिया जायगा, तो वह

साधारण कार्यक्रम न होगा। साधारण कार्यक्रम, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, किसी छिड़े हुए कार्यमें बाधक नहीं बन सकता, इसलिए यह सम्भव हो सकता है कि कोई साधारण कार्य, जो कुछ समय पूर्वके लिए निर्धारित किया गया हो, समाप्त न होनेके कारण उस समय भी चल रहा हो, जिसमें द्वितीय साधारण कार्य करना हो। इस अवस्थामें पहिलेवाला साधारण कार्यक्रम दूसरे साधारण कार्यक्रमका बाधक बन सकता है। अतः साधारण कार्य अपने आप ही एक दूसरेसे पहिले लिए जा सकते हैं और जब अनेक साधारण कार्य एक ही समयके लिए निर्धारित हुए हों, तब जो सबसे पहिले निर्धारित हुआ था, वह सबसे पहिले लिया जायगा और यदि एक ही समयपर करनेके लिए निर्धा-रित अनेक कार्योंको करनेके लिए कोई सदस्य प्रस्ताव करे, तो प्रस्तावके स्वीकृत हो जानेकी हालतमें, प्रस्तावमें जिस क्रमसे कार्योंका उल्लेख किया गया होगा, उसी क्रमसे उनपर विचार किया जायगा।

विशेष कार्यक्रम—विशेष रूपसे किसी विशेष समयके लिए किसी विशेष कार्यको निर्धारित करनेवाले प्रस्तावको विशेष कार्यक्रमका प्रस्ताव कहते हैं। इसके कार्यान्वित करनेमें नियम स्थगित करनेकी आवश्यकता पड़ती है, ताकि निर्धारित समयपर अन्य विषयोंको छोड़कर इसपर विचार किया जा सके, इसलिए इस प्रस्तावकी स्वीकृतिके लिए दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है। कोई विषय, जो छिड़ चुका हो, किसी अन्य समयके लिए विशेष कार्यके रूपमें स्थगित किया जा सकता है और इस प्रकार स्थगित करनेका प्रस्ताव अधिकारात्मक प्रस्ताव होगा, जिसमें वादविवाद संशोधन आदि न हो सकेंगे। परन्तु यदि किसी कार्यको अन्य समयके लिए विशेष कार्य बनानेका प्रस्ताव उस समय किया गया हो, जब कोई प्रश्न न छिड़ा हो, तब वह प्रधान प्रस्तावकी

भांति विवाद और संशोधनका विषय बन जायगा। जब सभामें कोई विषय न छिड़ा हो, और कार्यक्रमके अनुसार उसी प्रकारका या अन्य नया कार्य उस समयके लिए निर्धारित हो, तब कोई सभासद वक्तृताधिकार प्राप्त करके विशेष कार्य निर्धारण का प्रस्ताव कर सकता है। इसके लिए निम्नलिखित ढंगसे प्रस्ताव पेश करना होता है:—"मैं प्रस्ताव करता हूँ कि निम्नलिखित प्रस्ताव अमुक समयका विशेष कार्य माना जाय।" अथवा जब विधानमें परिवर्तन करना हो, तब इस प्रकारसे प्रस्ताव किया जा सकता है कि "निश्चय किया जाता है कि अमुक दिन अमुक समय विशेष रूपसे विधानपर विचार करनेके लिए रखा जाय और यह कार्य उस समयतक विशेष कार्य रहे, जबतक इसका विचार समाप्त न हो जाय।" विशेष कार्यका निर्धारण किसी कार्यक्रम (Programme) के स्वीकार कर लेनेपर भी हो जाता है। आवश्यकता सिर्फ यह होती है कि उस कार्यक्रममें विशेष विशेष कामोंके लिए विशेष विशेष समय भी निर्धारित किये गये हों।

कभी-कभी ऐसा होता है कि एक साथ अनेक कार्य किसी विशेष समयके लिए निर्धारित कर दिये जाते हैं। इस प्रकार विशेष समयके लिए यदि एक ही साथ एक ही प्रस्तावमें अनेक कार्य निर्धारित किये जायं, तो इनपर एक साथ ही सम्मति ले ली जायगी और एक साथ ही स्वीकृत हो जानेपर वे सब निर्धारित समयके लिये विशेष कार्य बन जायंगे। फिर उस समय जबके लिए कि वे कार्य निर्धारित किये जायंगे, अन्य कोई कार्य न लिया जा सकेगा और छिड़े हुए प्रश्न भी रोक दिये जायँगे। इसके लिए नियम यह है कि छिड़े हुए विषयोंपर तुरन्त सम्मति ले ली जाय और उस विशेष कार्यपर विचार आरम्भ हो जाय। परन्तु यदि कोई सदस्य यह समझे कि छिड़े हुए विषयपर अभी

और विचार होना चाहिए, तो वह प्रस्ताव कर सकता है कि वह विषय उस समयतकके लिए स्थगित कर दिया जाय, जबतक कि बीचमें बाधा देनेवाला विषय समाप्त न हो जाय। यह प्रस्ताव बहुमत होनेसे स्वीकृत हो सकता है।

जब ऐसे विशेष कार्यमें, जो भिन्न-भिन्न समयपर निर्धारित किये गये हैं, संघर्ष हो जाता है, तब जो विषय पहले निर्धारित किया जाता है, वह विषय बादमें निर्धारित किये जानेवाले विषयको दबाकर भी, चाहे उस विषयके लिए पहलेवाले विषयकी अपेक्षा पूर्वका ही समय क्यों न निर्धारित किया गया हो, उपस्थित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि एक विषय किसी दिन ३ बजे पेश करनेके लिए विशेष कार्य निर्धारित कर लिया गया। उसके बाद दूसरे व्यक्तिने दूसरे विषयको २ बजेके लिये निर्धारित कराया और तीसरेने किसी तीसरे विषयको ४ बजेके लिए। इस अवस्थामें स्वभावतः दो बजेवाले कार्यका समय पहले आयेग और उसपर विचार होगा। परन्तु यदि वह तीन बजेतक समाप्त नहीं हुआ, तो ३ बजेवाला विषय उसको दबाकर उपस्थित किया जा सकेगा, क्योंकि उसके लिए पहले समय निर्धारित किया गया था। और यह विषय यदि ४ बजेके बाद भी चलता रहे, तो ४ बजेवाला विषय उसे रोक न सकेगा। इसके बाद जब ३ बजेवाला विषय समाप्त हो जाय तब चाहे ४ बज ही क्यों न गये हों, २ बजेवाले विषयपर शेष विचार किया जायगा, क्योंकि निर्धारित करनेमें उसका नम्बर दूसरा था। परन्तु यदि विश्रामावकाश या कार्य स्थगित करनेके प्रस्तावोंके अनुसार समय आ जाय, तो उन विशेष कार्मोंको भी स्थगित कर देना पड़ेगा। किन्तु इस दशामें भी यदि सदस्यगण चाहें तो यह प्रस्ताव कर सकते हैं कि स्थगित करनेका समय बढ़ा दिया जाय अथवा प्रस्तुत विषयपर विचार करनेका समय कुछ मिनटोंके लिए

और बढ़ा दिया जाय। इन प्रस्तावोंमें वादविवाद न होगा और इनकी स्वीकृति के लिए दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होगी।

अकसर ऐसा होता है कि समय निर्धारित किये बिना ही किसी सभामें कोई विषय विशेष कार्य बना दिये जाते हैं। यह उस समय होता है, जब विषयोंके क्रममें समयका क्रम भी उल्लिखित होता है। परन्तु यदि समयके क्रमका उल्लेख न हो, तो वे विषय असमाप्त विषयोंकी श्रेणीमें आ जाते हैं। और नया विषय आरम्भ होनेके पूर्व उनपर विचार होता है। और यदि कार्य का क्रम निर्धारित न किया गया हो, तो कार्य-विवरण (Minutes) पढ़ चुकनेके बाद किसी समय उनपर विचार किया जा सकता है।

कभी-कभी किसी समयके लिए नहीं वरन् मीटिंग भरके लिए कोई विशेष विषय विशेष कार्य बना दिया जाता है। इस अवस्थामें उस दिनकी मीटिंगमें गत बैठककी कार्यवाहीके पाठके अनन्तर वही विषय विचारार्थ उपस्थित होता है और तबतक चला करता है, जबतक कि समाप्त नहीं हो जाता। यह विषय निर्धारण विशेष रूपसे उस समय होता है, जब किसी संस्थाके नियम उपनियमोंपर विचार करना अथवा कोई अन्य ऐसा महत्वपूर्ण काम करना हो, जिसके लिए एक मीटिंगका पूरा समय आवश्यक हो। इस प्रकारके विशेष क्रम के अनुसार काम करनेके लिए अन्य प्रकारके विशेष क्रम दबाये जा सकते हैं। इस प्रकारके प्रस्तावपर बहस भी हो सकती है और संशोधन भी किये जा सकते हैं।

संशोधन

किसी प्रस्तावमें आवश्यक परिवर्तन करनेके लिए जो प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है, उसे संशोधन-प्रस्ताव कहते हैं। यह सुविधाजनक प्रस्तावोंकी श्रेणीके प्रस्तावोंका एक प्रस्ताव है परन्तु चूंकि इसका प्रयोग समस्त सुविधाजनक प्रस्तावों की अपेक्षा अधिक किया जाता है इसलिए यह अधिक महत्वपूर्ण विषय हो जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रस्ताव काट-छांट और जोड़-गांठकर ऐसा उपयुक्त बना दिया जाय, जो एकत्रित सभाके योग्य हो जाय। इसको अनि-श्चित समयके लिए स्थगितकर देनेके प्रस्तावपर तरजीह दी जाती है और अन्य समस्त सुविधाजनक प्रस्तावों, सब अधिकारात्मक प्रस्तावों और सब प्रसंग जन्य प्रस्तावोंको इसपर तरजीह दी जाती है। यह कुछ प्रस्तावोंको छोड़कर जिनका वर्णन इसी अध्यायमें आगे किया जायगा, अन्य सब प्रस्तावोंके सम्बन्धमें पेश किया जा सकता है। संशोधनका भी संशोधन किया जा सकता, सैनटोंके लिए

फिर संशोधनके संशोधनका संशोधन नहीं किया जा सकता। निषेधार्थक प्रस्ताव और वादविवाद नियन्त्रक प्रस्ताव संशोधन या केवल एक अन्तः संशोधन (संशोधनके संशोधन) के सम्बन्धमें उपस्थित किया जा सकता है। परन्तु यदि उन प्रस्तावोंमें विशेष रूपसे उल्लेख न हो, तो वे मूल प्रश्नपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। संशोधनोंपर वादविवाद प्रायः सभी अवस्थाओंमें हो सकता है। परन्तु यदि संशोधन ऐसे प्रस्तावका किया जा रहा हो, जो स्वतः वादविवाद-विहीन हो तो उस संशोधनपर भी वादविवाद हो सकेगा। छिड़े हुए प्रश्नके संशोधनको स्वीकार करनेके लिए केवल बहुमतकी आवश्यकता होती है, चाहे जिस प्रश्नका संशोधन किया जा रहा हो, उस प्रश्नपर दो तिहाई वोटोंकी ही जरूरत क्यों न हो। परन्तु यदि पूर्व स्वीकृत किसी विधान, नियम, उपनियम या कार्यक्रम आदिपर संशोधन पेश किया जाय, तो उसकी स्वीकृतिके लिए दो तिहाई वोटोंकी आवश्यकता होती है। फिर भी दो तिहाई वोटोंसे स्वीकृत किये जानेवाले संशोधनोंके संशोधनोंके लिए केवल बहुमतकी स्वीकृति पर्याप्त होती है। जब किसी विषयपर विचार हो रहा हो, तब उस सम्बन्धमें केवल एक संशोधन और उस संशोधनका भी केवल एक अंतः संशोधन एक साथ विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है। इससे अधिक संशोधन या अंतः संशोधन एक साथ उपस्थित कर देनेसे विषय एकदम अव्यवस्थित-सा हो जाता है और वह नियमित नहीं माना जाता। जब बहुतसे संशोधन सामने हों, तब उसमेंसे एक-एक संशोधन या अन्तः संशोधनको एक साथ विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है और उसपर कार्यवाही हो चुकनेके बाद इसके प्रस्तावपर विचार करना चाहिये। इस प्रकार एक-एक करके सब संशोधन और अन्तः संशोधन विचारार्थ उपस्थित किये जा सकते हैं। इन संशोधनों और अन्तः संशोधनोंको उपस्थित

करनेका क्रम यह है कि जितने संशोधन आये हों, उनमेंसे जो संशोधन प्रस्तुत विषयसे सबसे अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखता हो, उसको पहले लेना चाहिये। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वही संशोधन पहले पेश किया जाय, जो पहले किसी सदस्यके द्वारा उठाया गया हो। जब शब्दोंके परिवर्तनके सम्बन्धमें संशोधन हो, तब सबसे पहले उस संशोधनपर विचार किया जायगा जो मूल प्रस्तावके सबसे पहले शब्दमें परिवर्तन करनेके लिए उपस्थित किया गया हो। इसी प्रकार यदि किसी आय-व्ययके सम्बन्धमें घटाने-बढ़ानेके कई प्रस्ताव आये हों, तो उनमेंसे सबसे पहले वह संशोधन विचारार्थ उपस्थित किया जायगा, जो प्रस्तावित धनमें सबसे कम घटाने या बढ़ानेका पक्षपाती होगा। सारांश यह कि जिस संशोधनसे मूल प्रस्तावमें कमसे कम परिवर्तन करना पड़े अथवा जिस परिवर्तनका करना सबसे पहले आवश्यक हो, वही संशोधन पहले लिया जायगा। पहले जो संशोधन स्वीकार किया जा चुका है, उसको बदल देनेका अधिकार उसी सभाको फिर नहीं होता, इसलिए पहलेहीसे ऐसे संशोधनपर पहले विचार कर लेना चाहिये, जिसपर आगेवाले संशोधनका प्रभाव न पड़े।

संशोधनके सम्बन्धमें यह ध्यान रखना चाहिए कि संशोधन वही पेश किया जाय जो विषयसे सम्बन्ध रखता हो और ऐसा न हो जो सभाकी सूचना में दिये गये विषयोंसे दूर हो जाता हो अथवा जो कार्य उस सभामें हो सकता हो उसके बाहरकी बात हो—जैसे यदि किसी पदाधिकारीका चुनाव हो रहा हो उस समय एक नामके स्थानपर दूसरा नाम पेश करना तो ठीक है पर यदि कोई यह संशोधन करे कि उस पदाधिकारीको अमुक-अमुक काम करने पड़ेंगे तो यह अनियमित होगा। संशोधन ऐसा न हो जो मूल प्रस्तावका विरोध

करता हो। जैसे यदि यह प्रस्ताव हो कि कर्मचारीका वेतन बढ़ाया जाय तो यह संशोधन उपयुक्त न होगा कि 'वेतन' के बाद 'न' शब्द बढ़ा दिया जाय। क्योंकि यह अभिप्राय तो उस मूल प्रस्तावके विरोधमें वोट देनेसे भी सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक संशोधनका बाक़ायदा पेश होना और उसका समर्थन होना जरूरी है। यदि समर्थन न होगा तो प्रस्ताव नियमानुसार सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित नहीं हो सकता। परन्तु यदि विना समर्थनके ही सभापति ने जान बूझकर या गलतीसे संशोधन सभाके सामने विचारार्थ पेश कर दिया हो और उसपर सम्मति ले ली गयी हो तो केवल इस आधारपर कि उसका नियमित समर्थन नहीं हुआ वह अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। जो संशोधन मूल प्रस्तावमें बहुत अधिक परिवर्तन करनेके अभिप्रायसे उपस्थित किये जाते हैं उनके सम्बन्धमें यह अच्छा होता है कि उनकी सूचना पहिलेसे दे दी जाय। संशोधन भी मूल प्रस्तावकी भांति ही लिखित रूपमें और प्रस्तावकके हस्ताक्षरों के सहित सभापतिके पास यथा समय पहुंचने चाहिए। इस संशोधन-प्रस्ताव का भी प्रस्ताव और समर्थन नियमानुसार होना चाहिए। इस प्रकारका प्रस्ताव और समर्थन वही सदस्य कर सकता है, जिसने मूल प्रस्तावके बाद विवादमें भाग न लिया हो। परन्तु प्रस्ताव और समर्थन हो जानेके बाद उसपर वाद विवाद सब सदस्य कर सकते हैं। मूल प्रस्ताव जब सम्मति गणनाके लिये सामने उपस्थित कर दिया गया हो तब उसपर संशोधन नहीं लिया जा सकता। संशोधनके प्रस्तावकको वाद-विवादके अन्तमें उत्तर देनेका अधिकार नहीं मिलता। परन्तु यदि प्रस्ताव पेश करते हुए वह केवल इतना कह दे कि मैं अमुक संशोधन पेश करता हूँ और अपना भाषण बादमें दूंगा तो उसे अधिकार होता है कि वह जिस समय सब लोग उस विषयपर बोल चुके

हों उस समय अपना भाषण दे और उसमें उन दलीलोंका खण्डन न करे जो विरोधी दलकी ओरसे पेश की गयी हैं। संशोधन पेश, हो जानेके बाद सभा की अनुमतिके बिना वापस नहीं लिया जा सकता। परन्तु यदि वह मूल प्रस्ताव जिसके सम्बन्धमें संशोधन पेश किया गया है वापस ले लिया जाय तो संशोधन स्वतः वापस हो जाता है। सम्मति गणनाके समय यदि संशोधनके पक्ष और विपक्षमें बराबर बराबर वोट आयें और सभापति अपना निर्णायक वोट दे देना चाहे तो संशोधन अस्वीकृत माना जायगा। कोई सदस्य एक ही प्रस्तावपर एकसे अधिक संशोधन साधारणतः नहीं पेश करता परन्तु यदि सभाके नियमोपनियममें पेश करनेका अधिकार दिया गया हो तो वह पेश कर सकता है। सम्मतिगणना भी एक साथ ही एकसे अधिक संशोधनोंपर नहीं की जा सकती। जब संशोधन स्वीकार हो जाता है तब इसीके अनुसार मूल प्रस्तावमें परिवर्तन कर दिया जाता है और यह परिवर्तित मूल प्रस्ताव फिर सभाके सम्मुख उपस्थित किया जाता है। उस दशामें इसपर फिर संशोधन हो सकता है। संशोधन ऐसी अवस्थामें पेश किये जाते हैं, जब कोई बोल न रहा हो।

कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं जब ऐसा संशोधन उपस्थित किया जाता है जो मूल प्रस्तावके प्रायः सब शब्दोंको काटकर उसके स्थानपर बिलकुल नयी बात रखता है। ऐसी दशामें संशोधन और मूल प्रस्ताव दोनोंपर एक साथ ही विचार किया जा सकता है। क्योंकि दोनों प्रतिद्वन्दी प्रस्ताव हो जाते हैं। यदि संशोधन केवल थोड़े शब्दोंको काटनेका हो तो संशोधनके समय मूल प्रस्तावपर बहस नहीं की जा सकती।

संशोधन पर संशोधन करनेकी आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि यदि उस संशोधनको ही कोई सदस्य बदलना चाहता हो तो यदि उसके स्वीकृत हो

जानेतक वह प्रतीक्षा करेगा तो जैसा कि नियम है स्वीकृत हो जानेके बाद उसमें परिवर्तन न होगा। ऐसी दशामें वह सदस्य अपना परिवर्तन करवानेका मौका ही खो देगा। इसीलिए संशोधन के बाद ही वह अपना अन्तःसंशोधन भी उपस्थित कर देता है। जब संशोधन पर अन्तःसंशोधन पेश किया जाता है तब पहिले अन्तः संशोधनपर विचार कर लिया जाता है, बादमें संशोधन पर। प्रस्तावका जो भाग संशोधित हो जाता है उससे पहिलेके भागके सम्बन्धमें बादमें संशोधन नहीं उपस्थित किया जा सकता। अतः संशोधन उपस्थित करनेवालों को पहिलेसे अपने संशोधन सभापतिके पास भेज देने चाहिए ताकि वह उन्हें क्रमानुसार पेश कर सके। जब ऐसी अवस्था आ जाय कि एक संशोधन पेश हो चुका तो उसके बाद कोई सदस्य प्रस्तावके उस भागके पहलेवाले भागपर संशोधन लाना चाहे, तो शिष्टाचारके नाते पहिले संशोधनको उपस्थित करनेवालेके लिये यह उचित होता है कि वह अपना संशोधन-प्रस्ताव उस समयके लिये वापस ले ले। परन्तु इसके लिये वह मजबूर नहीं किया जा सकता।

संशोधनके रूप सामान्यतः तीन प्रकारके होते हैं—(१) बीचमें या आदि अन्तमें शब्द बढ़ाना, (२) शब्दोंको निकाल देना और (३) शब्दोंको बदल देना। तीसरा रूप पहिले दोनों रूपोंका सम्मिश्रण-सा ही है। परन्तु उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते, यद्यपि विचार करते समय पहिले शब्द निकालनेपर और उसके बाद बदले हुए शब्द रखनेपर विचार किया जाता है। कोई ऐसा संशोधन नियमित नहीं माना जायगा, जो इन रूपोंमेंसे एक रूपको बदलकर दूसरे रूपमें परिणत कर देनेका प्रभाव रखता हो।

जब कोई संशोधन करना होता है, तब प्रस्तावक वक्तृताधिकार प्राप्त करनेके बाद खड़ा होकर कहता है कि "मैं संशोधन पेश करता हूं कि 'अच्छा' शब्दके

पहिले 'बहुत' शब्द जोड़ दिया जाय।" या जैसी अवस्था हो, संशोधनमें जिस शब्दको बढ़ाना या निकालना हो, उसके आगे-पीछेवाले शब्दोंका स्पष्टरूपसे उल्लेख करना चाहिए, ताकि वह स्थान स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाय, जहां शब्द बढ़ाना है या वह शब्द मालूम हो जाय, जिसे निकालना है। परन्तु यदि वह शब्द जिसे निकालना है, प्रस्तावमें केवल एक ही स्थानपर आया हो तो आगे-पीछेवाले शब्दोंके कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार यदि वह शब्द जिसके आगे या पीछे कोई शब्द बढ़ाना या निकालना हो, प्रस्तावमें एक ही बार आया हो तो उसके भी आगे-पीछेके अन्य शब्दोंके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है। केवल इतना कह देनेसे कि अमुक शब्दके आगे या पीछे अमुक शब्द बढ़ा दिया जाय अथवा अमुक शब्दके आगे या पीछेका अमुक शब्द निकाल दिया जाय, पर्याप्त है। सारांश यह है कि हर हालतमें संशोधन स्पष्टतया प्रकट करता हो कि उसका उपयोग किस विशेष स्थानपर किया जायगा? यही स्थान-निर्देशका उद्देश्य है। जब संशोधन उपस्थित हो जाय, तब सभाके सामने उसे सम्मतिके लिये पेश करते हुए यदि संशोधन बहुत स्पष्ट हो तब तो नहीं अन्यथा सभापतिको चाहिये कि सभाको यह स्पष्टतया बता दे कि उस संशोधनके स्वीकार कर लेनेसे प्रस्तावका रूप क्या हो जायगा। इसके बाद वह प्रस्तावपर वोट लेगा। और यदि बहुमतसे संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो उसके अनुसार मूल प्रस्तावमें संशोधन करके उस संशोधित रूपमें वह उस प्रस्तावको फिर सभाके सामने उपस्थित करके उसपर वोट लेगा। जिस समय संशोधनपर वोट ले लिये जायं, उसी समय सभापतिको मूल प्रस्ताव सभाके सामने तुरन्त उपस्थित करना चाहिये। यह कार्यवाही है, जो प्रायः हर प्रकारके संशोधनोंके लिये काममें लायी जाती है। अब विशेष-विशेष प्रकारके संशोधनोंपर नीचे पृथक-पृथक विचार किया जाता है।

बीचमें या आदि अन्तमें शब्दोंका बढ़ाना—जब सभाके सामने कोई ऐसा संशोधन पेश हो, तब आवश्यक यह है कि शब्द बढ़ानेके इस संशोधनके पहिले ही उन शब्दोंके सम्बन्धमें जो बढ़ाये जानेवाले हैं, जो अन्तःसंशोधन आदि आनेवाले हैं वे आ जायं; ताकि शब्द जोड़ने या बढ़ानेके पहिले अच्छी तरहसे संशोधित हो जायं। इसके बाद जोड़ने या बढ़ानेके संशोधनपर विचार होगा। एक बार शब्दोंके जोड़ या बढ़ा चुकनेके बाद फिर साधारणतया वे हटाये नहीं जा सकते। परन्तु यदि पूरा पैरेग्राफ हटा देनेका संशोधन आवे, अथवा ऐसे भागको हटा देनेका संशोधन आवे जिससे प्रस्तावका रूप शब्द जोड़नेके बाद बने हुए रूपसे सर्वथा पृथक हो जाय, अथवा ऐसा संशोधन पेश किया जाय जो पैरेग्राफ या एक भागके निकाल देनेवाले प्रस्तावको, अन्य शब्दोंको जोड़नेवाले प्रस्तावके साथ सम्बद्ध करता हो तो पूर्व स्वीकृत शब्द बदले भी जा सकते हैं। सिद्धान्त यह है कि यदि सभा यह निश्चय कर ले कि प्रस्तावमें अमुक शब्द जोड़ या बढ़ा दिये जायं तो उस सभामें ऐसा प्रस्ताव नहीं आ सकता जो दुबारा सर्वथा उसी प्रकारका प्रश्न उपस्थित करे। परन्तु यदि ऐसा करना ही हो तो शब्द जोड़ने या बढ़ानेवाले प्रस्तावके वोटोंपर पुनर्विचार करके, और पूर्व निर्णयको रद्द करके किया जा सकता है। यदि किसी शब्दको जोड़नेका कोई संशोधन गिर जाय तो इससे यह नहीं होता कि अन्य शब्दोंके साथ वह शब्द जोड़ने या बढ़ानेका प्रस्ताव भी फिर नहीं आ सकता। परन्तु इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि जिन नये शब्दोंके साथ वे शब्द दुबारा पेश किये जायं, उनके कारण मूल प्रस्तावमें ऐसा परिवर्तन जरूर हो जिससे यह प्रतीत हो कि बिलकुल नया प्रश्न सामने है।

शब्द निकाल देना—शब्द निकाल देनेका संशोधन ऐसे शब्द निकालनेके लिये ही आना चाहिये जो सिलसिलेवार एक साथ आये हों। चाहे संशोधनके बाद वे शब्द अलग-अलग हो जायं। यदि भिन्न-भिन्न स्थानपर व्यवहार किये गये कई शब्द निकाल देना अभीष्ट हो तो उसके लिये जितने शब्द निकालने हों, उतने संशोधन-प्रस्ताव अलग-अलग आने चाहिये। या यह भी किया जा सकता है कि जिस वाक्य या पैरेग्राफमें वे शब्द आये हों, उस वाक्य या पैरेग्राफको ही निकालकर उसके स्थानपर अपेक्षित वाक्य या पैरेग्राफ जोड़ दिया जाय। शब्द निकाल देनेवाले संशोधनका संशोधन सिर्फ यही हो सकता है कि उस संशोधनमेंसे कुछ शब्द निकाल डालनेका अन्तःसंशोधन किया जाय जिसका अर्थ यह होगा कि मूल प्रस्तावके उतने शब्द न काटे जायं जितने अन्तःसंशोधनमें कहे गये हैं; बाकीके सब शब्द जो संशोधनमें कहे गये हैं काट दिये जायं। जिन शब्दोंको निकाल देनेका संशोधन स्वीकार किया गया हो वे ही शब्द जोड़नेका प्रस्ताव फिर स्वीकृत नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि शब्द जोड़नेका स्थान या शब्द-योजना इस प्रकारसे बदल दी गयी हो जिससे प्रश्न बिलकुल नये रूपमें परिवर्तित हो गया हो तो वे शब्द फिर जोड़े जा सकते हैं। यदि शब्द निकाल देनेका संशोधन अस्वीकृत हो जाय तो उससे यह न होगा कि उन शब्दोंको निकालकर दूसरे शब्द रखनेका संशोधन, अथवा शब्दोंके केवल एक हिस्सेको निकाल देनेका संशोधन, अथवा शब्दोंके एक हिस्सेको निकालकर अन्य शब्द जोड़नेका संशोधन, अन्य शब्दोंके साथ उन शब्दोंको निकाल देनेका प्रश्न, अथवा अन्य शब्दोंके साथ उन शब्दोंको निकाल कर उनके स्थानपर अन्य शब्दोंके जोड़नेका संशोधन आदि उपस्थित न किये जा सकें। हां, इन सब हालतोंमें यह अवश्य ध्यान रखना होगा कि परिवर्तनसे प्रश्न पुराने प्रश्नसे बिलकुल भिन्न हो गया हो।

शब्द निकालकर उनके स्थानपर नये शब्द जोड़ना—इस संशोधनमें दो अलग-अलग बातें हैं—एक शब्दोंका निकालना, और दूसरी नये शब्द जोड़ना। सभामें जब यह संशोधन उपस्थित किया जाता है, तब इन दोनों बातोंपर अलग-अलग विचार भी किया जाता है और पहिले शब्द निकालनेपर, उसके बाद नये शब्द जोड़नेपर विचार किया जायगा। परन्तु वोट दोनोंमें सम्मिलित रूपसे लिये जायंगे। उस समय वे अलग-अलग नहीं किये जा सकते। यदि यह संशोधन स्वीकार हो जायगा तो साधारणतः न तो निकले हुए शब्द पुनः जोड़े जा सकेंगे और न जोड़े हुए शब्द पुनः निकाले जा सकेंगे। परन्तु यदि शब्दोंके निकालने या जोड़नेके लिये प्रस्तावके स्थान या शब्दोंकी योजनामें ऐसा परिवर्तन किया जाय जिससे संशोधन बिलकुल नया रूप धारण कर ले तो उक्त शब्दोंका निकालना-जोड़ना पुनर्वार किया जा सकता है। यदि यह संशोधन अस्वीकृत हो जाय तो उन्हीं शब्दोंको निकाल देने, अथवा उन्हींको जोड़ देनेके संशोधन रोके नहीं जा सकते। न यही हो सकता है कि शब्द निकाल देने और उनके स्थानपर नये शब्द जोड़ देनेका नया प्रस्ताव रोका जा सके। परन्तु आवश्यकता हर हालतमें यह अवश्य रहेगी कि इस प्रकार जो नये संशोधन आवें, उनके द्वारा विषयमें पर्याप्त अन्तर उत्पन्न हो गया हो। यदि प्रस्तावके भिन्न-भिन्न स्थानोंपर आये हुए अनेक शब्दोंको एक साथ ही निकालकर उनके स्थानपर अन्य नये शब्द जोड़ने हों तो जितनी दूरमें वे शब्द आये हों, उतनी दूरका पूरा हिस्सा निकाल देने और उसके स्थानपर नया संशोधित हिस्सा जोड़ देनेका प्रस्ताव लाना चाहिये। यदि प्रस्तावके ऐसे स्थानपर शब्द जोड़ना हो जहांसे पहिले कुछ शब्द निकाले गये हैं, तो जोड़नेवाले शब्द ऐसे होने चाहिये जो पूर्व बहिष्कृत शब्दोंसे वस्तुतः

भिन्न अर्थ रखते हों, परन्तु हों वे प्रस्तावसे सम्बन्ध रखनेवाले। यदि जोड़नेवाले शब्द ऐसे स्थानपर जोड़ने हों जहांसे शब्द निकाले नहीं गये तो उनके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे पूर्व बहिष्कृत शब्दोंसे, जो किसी अन्य स्थानसे निकाले गये हैं, भिन्न हों; क्योंकि उस अवस्थामें स्थान परिवर्तनसे अपने आप अर्थ-भेद उत्पन्न हो सकता है। एक ही साथ एक स्थानसे एक शब्द या शब्दमाला हटाने तथा दूसरे स्थानपर एक पृथक शब्द या शब्दमाला जोड़नेका संशोधन नियमित नहीं माना जाता है। इस प्रकारके संशोधनके लिये यह आवश्यक है कि या तो वह स्थान एक हो जहां शब्द निकालना और नये शब्द जोड़ना है, अथवा वे शब्द एक हों जिन्हें एक स्थानसे निकालकर दूसरे स्थानपर जोड़ना है। यदि अनेक परिवर्तन करना अभीष्ट हो तो उसके लिये अच्छा यह है कि पूरा पैरेग्राफ ही बदलकर नये रूपमें संशोधित करनेका प्रस्ताव रखा जाय।

पूरे पैरेग्राफपर प्रभाव डालनेवाले संशोधन—किसी पैरेग्राफको निकाल डालने या जोड़ देने, अथवा एक पैरेग्राफ निकालकर उसके स्थानपर दूसरेको जोड़ देनेका संशोधन उस समय नहीं पेश हो सकता जब दूसरा संशोधन विचारार्थ उपस्थित हो। पैरेग्राफको निकाल डालने या जोड़ देनेका संशोधन रखनेवाले व्यक्तियोंको चाहिये कि वे खूब सोच-विचारकर और उस संशोधनपर वोट लेनेके पहिले उसमें खूब संशोधन करके जितना अच्छा रूप दे सकते हों उतना अच्छा रूप उसे दें; क्योंकि जिस रूपमें वह पैरेग्राफ प्रस्तावके साथ जोड़ दिया जायगा उस रूपमें फिर परिवर्तन न हो सकेगा। उस संशोधित प्रस्तावका पृथक संशोधन हो सकता है, परन्तु केवल शब्द बढ़ाकर ही अन्यथा नहीं। हां, एक बात अवश्य हो सकती है कि आगे चलकर यदि कोई सदस्य

अन्य पैरेग्राफके साथ उस संशोधित पैरेग्राफको निकालनेका प्रस्ताव करे जिससे कि प्रश्न बिलकुल नया रूप धारण कर ले तो वह पैरेग्राफ निकाला भी जा सकता है। यदि पैरेग्राफ निकाल या जोड़ देनेका संशोधन अस्वीकृत हो जाय तो उससे यह नहीं होता कि फिर कोई अन्य संशोधन उपस्थित ही न हो; परन्तु यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि संशोधन वस्तुतः वैसा ही न हो जिसपर सभा एक बार अपना निर्णय दे चुकी है। इस प्रकार यदि किसी पैरे-ग्राफको जोड़नेका प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया हो तो उस पैरेग्राफके एक हिस्सेको जोड़नेका संशोधन, अथवा उस पूरे पैरेग्राफके परिवर्तित रूपके जोड़नेका संशोधन नियमानुमोदित माना जायगा। इसी प्रकार यदि सभाने किसी पैरेग्राफको निकाल डालना अस्वीकार कर दिया है तो उस पैरेग्राफका एक हिस्सा निकाल डालने या अन्य प्रकारसे संशोधन करनेका प्रस्ताव नियमित माना जायगा।

एक पैरेग्राफको निकालकर उसके स्थानपर दूसरा पैरेग्राफ रखनेका प्रस्ताव एक होते हुए भी विचारके समय उसके दो भाग कर दिये जाते हैं और सभापति पहिले निकालनेवाले हिस्सेपर विचार करता है। उस सम्बन्धमें जितने अन्तःप्रस्ताव आते हैं, उनपर विचार किया जाता है। उसके बाद स्थान-पूर्तिके लिये आनेवाले संशोधनपर इसी प्रकार विचार होता है। जब दोनोंका उपयुक्त संशोधित रूप तैयार हो जाता है, तब एकके स्थानपर दूसरा रखनेका प्रस्ताव विचारार्थ उपस्थित होता है। वह परिवर्तन स्वीकार हो जानेके बाद प्रस्तावका जो रूप बन जाता है, चाहे वह रूप अक्षरशः संशोधनका रूप ही क्यों न हो, उसपर फिर वोट लिये जाते हैं। जो पैरेग्राफ अन्य पैरेग्राफके स्थानपर रखा जाता है, उसमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उसका संशोधन उपरोक्त

विधिसे केवल आगे शब्द बढ़ाकर ही किया जा सकता है। जिस पैरेग्राफके स्थानकी पूर्ति नये पैरेग्राफसे की जाती है, वह पैरेग्राफ फिर ज्योंका त्यों रखा नहीं जा सकता। परन्तु यदि उसमें ऐसा परिवर्तन किया गया हो जिससे उसके अर्थमें पर्याप्त अन्तर पड़ गया हो तो जोड़ा जा सकता है। यदि उपरोक्त संशोधन गिर जाय तो उसका अर्थ केवल यह होगा कि सभाने प्रस्तुत पैरे-ग्राफके स्थानपर वह नया पैरेग्राफ रखना स्वीकार नहीं किया, परन्तु सभा दूसरा पैरेग्राफ उस स्थानपर रख सकती है, या प्रस्तावमें रख लिये गये पैरेग्राफका संशोधन कर सकती है, या उसको निकाल सकती है।

पूरे प्रस्तावके स्थानपर दूसरा प्रस्ताव रखने या एक रिपोर्टके स्थानपर दूसरी रिपोर्ट रखनेका संशोधन उस समयतक नहीं पेश हो सकता, जबतक कि उस प्रस्तावपर रिपोर्टके प्रत्येक पृथक भागपर पृथक रूपसे विचार न हो चुका हो। जब अलग-अलग विचार होकर वह समष्टि रूपसे विचारार्थ उप-स्थित किया जाय, तभी उसपर पूरे परिवर्तनका संशोधन उपस्थित किया जा सकता है। यदि संशोधन और अन्तः संशोधनोंके साथ कोई प्रस्ताव किसी समितिके सुपुर्द कर दिया जाय, तो उन संशोधनोंकी परवा किये बिना भी समिति प्रस्तावका नया रूप सुझा सकती है। ऐसी अवस्थामें सभापति पहिले उन संशोधनोंपर सम्मति लेगा, उसके बाद समितिके प्रस्तावित रूपपर। जब इस प्रकार सब कार्यवाही हो चुकी हो, तब उस प्रस्तावित रूपको मूल प्रस्ताव या रिपोर्टके स्थानपर रखनेका प्रस्ताव पेश किया जाता है और उसपर सम्मति ली जाती है।

अनुचित संशोधन—जो संशोधन मूल प्रस्तावसे सम्बद्ध न हो, अथवा ऐसा हो, जिससे मूल प्रस्तावका विरोध होनेके अतिरिक्त और कोई अर्थ न

निकलता हो, अथवा जिस प्रश्नपर सभाने पहिले अपना निर्णय दे दिया है, उसीके समान हो, अथवा जो संशोधनके एक रूपको बदलकर दूसरा रूप देता हो, अथवा प्रस्तावके एक रूपके स्थानपर दूसरा रूप रखता हो, अथवा निश्चय किया जाय (Resolved) शब्दहीको प्रस्तावसे निकाले डालता हो, अथवा शब्द निकाल और तोड़कर ऐसा रूप बना देता हो, जिसका कोई युक्तिसंगत अर्थ ही न निकलता हो, अथवा जो व्यर्थ और बेहूदा हो, वह संशोधन नियमानुमोदित और उचित नहीं माना जाता। संशोधनका संशोधन ऐसा होना चाहिये, जो एक ओर तो संशोधनसे सम्बन्ध रखता हो, दूसरी ओर मूल प्रस्तावसे बाहरकी बात न हो गया हो। संशोधनके बहाने नये स्वतंत्र प्रश्न नहीं छेड़े जा सकते। परन्तु ऐसा हो सकता है कि संशोधन मूल प्रस्ताव के भावोंका विरोधी हो और फिर भी उससे सम्बद्ध हो और नियमित हो।

कुछ उदाहरण—अब यहांपर कुछ उदाहरण देकर यह समझानेकी चेष्टा की जायगी कि कौनसे संशोधन नियमानुसार उपस्थित किये जा सकते हैं और कौनसे नहीं, अथवा किन-किन अवस्थाओंमें किस-किस प्रकारसे संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि किसी व्यक्तिपर निन्दाका कोई प्रस्ताव आया हो, तो 'निन्दा' के स्थानपर 'धन्यवाद' शब्द बैठा देनेका संशोधन उपयुक्त और नियमानुकूल होगा। क्योंकि वे दोनों बातें एक ही व्यक्तिके आचरणसे सम्बन्ध रखती हैं और निन्दाका अस्वीकार कर देना एवं धन्यवाद देना बराबर नहीं है। किताबें खरीदनेके प्रस्तावमें 'किताबें' शब्द हटाकर उसके स्थानपर 'घोड़ा' रखनेका संशोधन अनियमित होगा, क्योंकि दोनोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार मान लीजिये किसीने प्रस्ताव किया कि कोषाध्यक्षको हिदायत दी जाय कि मन्त्रीके लिए एक मेज खरीद देनेके लिए रुपये दे दें। अब यदि

कोई इस सम्बन्धमें यह शब्द जोड़ देनेका संशोधन उपस्थित करे कि "और सभापतिके स्वागतमें जो खर्च हुआ था, वह स्वागत-मन्त्रीको दे दें।" तो यह संशोधन उचित और न्यायानुमोदित न माना जायगा; क्योंकि स्वागतके खर्च और मेज खरीदनेसे कोई सरोकार नहीं है। यह तो स्वतंत्र प्रस्तावके रूपमें अलगसे आ सकता है। परन्तु यदि इसके स्थानपर उक्त प्रस्तावमें यह शब्द बैठा देनेका संशोधन करे कि एक रजिस्टर भी खरीद दें, तो यह नियमित होगा; क्योंकि दोनों चीजें मन्त्रीके कर्तव्य-पालनके लिए उपयोगी होती हैं, इसलिए एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं। यदि कोई ऐसा प्रस्ताव पेश हो, जिसमें कुछ बातोंकी निन्दा की गयी हो, तो उसी प्रकारकी अन्य बातोंको बढ़ा देनेका संशोधन, यदि उनकी भी निन्दा करनी हो, तो उपयुक्त और नियमानुसार होगा। इसी प्रकार यदि किसीकी प्रशंसा करनेका प्रस्ताव उपस्थित हो, तो अन्य लोगोंके नाम, जिनकी प्रशंसा करनी हो, चाहे प्रशंसाका कारण अलग-अलग ही क्यों न हो, बढ़ानेका संशोधन करना ठीक और न्यायानुमोदित होगा। परन्तु यदि किसी व्यक्ति या व्यक्तियोंकी प्रशंसा किसी विशेष प्रकारके बहादुरीके काम करनेके लिए की जा रही हो तो जबतक अन्य लोग भी उसी प्रकारकी बहादुरी के काम न कर चुके हों, तबतक उनके नाम बढ़ानेका संशोधन नहीं पेश किया जा सकता। यदि इस प्रकारका प्रस्ताव सामने हो कि 'अमुक आदमी सभाका प्रतिनिधि बनाकर जांच कमेटीमें भेजा जाय और वह अपनी अलग रिपोर्ट पेश करे।' और इस प्रस्तावपर यदि यह संशोधन हो कि 'कमेटीमें' शब्दके बाद 'न' शब्द जोड़ दिया जाय, तो यह अनुचित और अनियमित होगा; क्योंकि उसका मतलब तो केवल उक्त प्रस्तावको अस्वीकार करनेसे सध जायगा। परन्तु यदि संशोधन यह हो कि 'रिपोर्ट' के बाद 'न' शब्द जोड़

दिया जाय, तो वह नियमित माना जायगा; क्योंकि उससे प्रतिनिधि भेजनेका विरोध नहीं होता, केवल अलग रिपोर्ट देनेका विरोध होता है। यदि सभाके सामने यह प्रस्ताव पेश हो कि अंगूरका बगीचा खरीदा जाय। इसपर यदि कोई सदस्य यह संशोधन करे कि 'अंगूर' शब्द **हटाकर** 'आम' शब्द **जोड़** दिया जाय, तो यह संशोधन नियमित माना जायगा और जबतक इसपर विचार न हो जायगा तबतक अन्य संशोधनोंपर विचार न किया जायगा। इस संशोधनमें बड़े अक्षरोंमें लिखे हुए शब्द हर हालतमें आवश्यक होंगे और उनके सम्बन्धमें कोई अन्तः संशोधन उपस्थित नहीं हो सकता। परन्तु 'अंगूर' और 'आम' शब्दों के सम्बन्धमें यदि कोई संशोधन पेश करना चाहे, तो कर सकता है। परन्तु यदि संशोधन केवल यह हो कि 'अंगूर' शब्द निकाल डाला जाय तो यह अन्तः संशोधन कि "और आम शब्द जोड़ दिया जाय" अनियमित होगा; क्योंकि यह संशोधनके एक रूपको बदल कर दूसरा भिन्न रूप बना देता है। यदि यह प्रस्ताव उपस्थित हो कि अमुक रिपोर्ट स्वीकृत की जाय, तो यह संशोधन अनियमित्त होगा कि 'स्वीकृत शब्द' निकालकर उसके स्थानपर 'अस्वीकार' शब्द जोड़ दिया जाय। क्योंकि स्वीकृत शब्द वैधानिक दृष्टिसे आवश्यक है और संशोधकका मंशा प्रस्तावको अस्वीकार करनेसे अन्य-अन्य उपायोंसे उसे टाल देनेसे पूरा हो जाता है। सभापतिको जबतक पूर्ण निश्चय न हो, तबतक किसी संशोधनको अनियमित न घोषित कर देना चाहिये। उसे या तो वह संशोधन ले लेना चाहिये या सभाके सम्मुख यह जाननेके लिए कि वह नियमित है या नहीं, उपस्थित करना चाहिये।

असंशोधनीय प्रस्ताव—वैसे तो प्रायः सभी प्रधान प्रस्तावोंपर संशोधन आ सकते हैं, परन्तु फिर भी कुछ प्रस्ताव ऐसे होते हैं, जिनके सम्बन्धमें

संशोधन उपस्थित नहीं किये जा सकते। ऐसे प्रस्तावोंका प्रसंगानुसार विभिन्न स्थानोंपर उल्लेख हो चुका है, फिर भी यहां एक स्थानपर उनकी तालिका दी जाती है।

क—स्थगित करनेका प्रस्ताव। परन्तु जब इस प्रस्तावके साथ शर्तें लगा दी जाती हैं, अथवा जब यह प्रस्ताव ऐसी सभामें पेश होता है, जिसके आगामी अधिवेशनकी कोई व्यवस्था नहीं होती, तब इसपर संशोधन किया जा सकता है।

ख—कार्यक्रमके अनुसार काम करनेका प्रस्ताव।

ग—अनुशासनका प्रश्न या अपील।

घ—किसी प्रश्नपर विचार करनेपर आपत्ति करनेका प्रस्ताव।

ङ—सभाके बँटवारे (Division) की मांग।

च—प्रस्ताव वापस करनेकी अनुमति देनेका प्रस्ताव।

छ—सभ्याचार उल्लंघन करनेके बाद बोलनेकी अनुमति देनेका प्रस्ताव।

ज—किसी प्रकारकी कोई प्रार्थना।

झ—अपने निश्चित क्रमसे पृथक करके किसी प्रश्नपर विचार करनेका प्रस्ताव।

ञ—नियम स्थगित करनेका प्रस्ताव।

ट—प्रस्ताव रोक रखने (Lay on the table) का प्रस्ताव।

ठ—रोके हुए प्रस्तावको पेश करनेका प्रस्ताव। (To take from the table)

ड—पुनर्विचारका प्रस्ताव।

ढ—निषेधार्थक प्रस्ताव।

ण—अनिश्चित समयके लिए स्थगित करनेका प्रस्ताव।

त—संशोधनके अन्तः संशोधनका प्रस्ताव।

थ— स्थान पूर्तिका प्रस्ताव।

द—नामजद्‌गीका प्रस्ताव।

यदि किसी नियमको स्वीकार करनेका प्रस्ताव पेश हो तो उसमें यह बढ़ानेका संशोधन पेश किया जा सकता है कि "यह नियम छपवा कर बांट दिया जाय" अथवा "यह नियम अमुक समयसे अमलमें आये" या ऐसे ही अन्य संशोधन। कार्यवाही (Minutes) वगैरहकी दुरुस्तीके लिए साधारणतः कोई संशोधन प्रस्ताव नहीं रखना पड़ता। यों ही बातचीत करके सभापतिके आदेशपर उसका संशोधन हो जाता है। परन्तु यदि इसपर कोई एतराज करे, तो बाकायदा वोट लिए जाने चाहिये।

स्थान पूर्ति सम्बन्धी प्रस्ताव—(Filling Blanks) जब किसी स्थानकी पूर्तिके लिए चुनाव होता है, उस समय स्थान पूर्ति सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किये जाते हैं। कभी-कभी एक पदके लिए कई उम्मेदवारोंके नाम प्रस्तावित किये जाते हैं। इन प्रस्तावोंसे समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती। ये सब नाम सभापतिके पास लिखित रूपमें रहते हैं। इसके बाद जिस क्रमसे नाम पेश किये जाते हैं, उसी क्रमसे एक-एक नामपर सभापति वोट लेता है। जिसके नामपर सबसे अधिक वोट आते हैं, वह निर्वाचित कर लिया जाता है। यदि स्थान एकसे अधिक आदमियोंके लिए हुआ, तो क्रमसे जिनके नाम अधिक वोट आते हैं, वे रिक्त स्थानोंकी पूर्तिके लिए आवश्यक संख्यातक चुन लिए जाते हैं। बाकीके नाम स्वतः गिर जाते हैं। जब संख्या बिलकुल ही निर्धारित न हो, तब जिनके नामपर सभाकी उपस्थित जनताका

बहुमत वोट दे, उतने लोग निर्वाचित कर लिए जायेंगे। साधारणतः एक सदस्य एक ही नामका प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है। परन्तु यदि सभाकी सम्मति लेकर कोई अधिक नाम उपस्थित करना चाहे तो कर सकता है।

कभी-कभी संख्या, समय, तारीख आदि भरनेके लिए रिक्त स्थान रह जाते हैं, उनमें विवेकके अनुसार कम या ज्यादा संख्या, समय आदिका क्रम करना पड़ता है। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि किसी कमेटीको एक मकान 'रिक्त' रकमपर खरीदनेका अधिकार दिया गया। अब यदि इस 'रिक्त' रकमके स्थानकी पूर्तिके लिए संख्या निर्धारित करनी हो, तो जिसका संशोधन सबसे अधिक रकमका हो, उसे पहिले लेना चाहिये, क्योंकि यदि कमवाली रकमपर पहिले विचार किया जायगा, तो यह तो स्पष्ट ही है कि सब लोग कम पर तैयार हो जायेंगे और उस दशामें कमेटीके सामने कामकी कठिनाई आयेगी। इसके बदले यदि पहिले अधिक, फिर उससे कम, फिर उससे भी कम। इस प्रकार क्रमसे बड़ी-बड़ी रकमवाले संशोधन लिए जायेंगे, तो उपयुक्त रकमपर सभा राजी हो जायगी और उसके बादवाले प्रस्ताव अपने आप रद्द हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि किसी कमेटीको 'रिक्त' रकमपर मकान बेंचने का अधिकार दिया जाय, तो इससे बिलकुल उलटे ढंगसे सबसे कम रकमसे शुरू करके ऊपरवाली रकमोंपर वोट लेने चाहिये।

कभी-कभी मूल प्रस्तावमें जान-बूझकर स्थान रिक्त करने पड़ते हैं। उदाहरणके लिये मान लीजिये, यह प्रस्ताव आया हो कि होलीके अवसरपर हरिजनोंमें मिठाई बांटी जाय। अब यदि इसपर यह संशोधन आया हो कि मिठाई हटाकर चने कर दिये जायं और तीसरा व्यक्ति यह अन्तःसंशोधन रखे कि चने नहीं, पैसे कर दिये जायं तो ऐसी अवस्थामें सभापति सभासे कह सकता है

कि यदि सबकी सम्मति हो तो मिठाईवाला स्थान रिक्त रखा जाय। इस प्रकार स्थान रिक्त करके उसकी पूर्तिके लिए जितने संशोधन आवें, सबको लिखकर उनपर विचार कर ले।

किसी प्रस्तावके रिक्त स्थान उस प्रस्तावपर वोट लेनेके पहिले ही भर लेने चाहिए। ऐसा ही होता भी है। परन्तु जब प्रस्तावके विरोधमें सभाका बहुत बड़ा बहुमत होता है, तब अकसर रिक्त स्थानोंकी पूर्तिकी प्रतीक्षा किये बिना ही निषेधार्थक प्रस्ताव पेश कर दिया जाता है, और उसके स्वीकृत हो जानेके बाद उस प्रस्तावपर तुरन्त वोट ले लिये जाते हैं, और रिक्त स्थानोंकी पूर्ति, अथवा संशोधन आदि पड़े ही रह जाते हैं। ऐसी अवस्थामें जब प्रस्तावपर एकाएक वोट लिये जायं, तब अच्छा होता है कि प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाय। परन्तु यदि किसी प्रकार वह रिक्त स्थानोंवाला प्रस्ताव स्वीकार ही कर लिया जाय, तो अधिकारात्मक कार्योंको छोड़कर अन्य किसी कार्यके करनेके पहिले उस रिक्त स्थानको भरना चाहिये।

रिक्त स्थानोंकी पूर्ति और साधारण संशोधनोंमें एक अन्तर यह होता है कि जब साधारण संशोधन सबसे पीछे किया जाता है, उसपर सबसे पहिले वोट लिये जाते हैं, तब रिक्त स्थानोकी पूर्तिमें जो प्रस्ताव पहिले किया जाता है, उसीपर पहिले वोट लिये जाते हैं। यह भेद साधारण अवस्थाओंमें और अधिकांशमें पाया जाता है, परन्तु विशेष अवस्थाओंमें, जिनका वर्णन ऊपर आ चुका है, विवेकके अनुसार संशोधन पहिले और पीछे सम्मतिके लिये पेश किये जाते हैं। नामजदगीके सम्बन्धमें भी रिक्त स्थानोंकी पूर्तिके समान ही कार्यवाही की जाती है।

अनेक नाम एक साथ ही एक-दूसरेके संशोधनके रूपमें नहीं, बल्कि स्वतन्त्र प्रस्तावके रूपमें पेश किये जा सकते हैं, उनपर उपरोक्त विधिसे अलग-अलग वोट लिये जायंगे और अपेक्षाकृत अधिक वोट पानेवाला निर्वाचित किया जायगा ।

वाद-विवाद

प्रारम्भिक बातें—साधारण सभाओंमें किसी प्रस्तुत प्रश्नपर पक्ष या विपक्षमें दिये गये भाषणोंको वाद-विवाद कहते हैं। सभामें सबसे पहिले वक्तृताधिकार प्राप्त कर प्रस्तावक अपना प्रश्न उपस्थित करता है उसके बाद समर्थक उसका समर्थन करता है। इस प्रकार प्रस्ताव और समर्थन हो जानेके बाद सभापति सभाके सामने उस प्रश्नको विचारार्थ उपस्थित करता है। जब सभापतिकी ओरसे वह प्रश्न विचारार्थ उपस्थित हो जाता है, तब उसपर वाद-विवाद आरम्भ होता है। वाद-विवादके पहिले इतनी कार्यवाही हो जानी आवश्यक होती है। कुछ विशेष अवसर ऐसे आ सकते हैं, जिनमें उपरोक्त कार्यवाहीकी एक या दो बातोंके पालनकी उपेक्षा की जाय। ये विशेष अवसर उस समय आते हैं, जब विवाद योग्य प्रस्तावमें समर्थनकी आवश्यकता न हो अथवा किसीमें वक्तृताधिकार प्राप्त करनेकी आवश्यकता न हो,

परन्तु विशेष रूपसे यह तो अनिवार्य नियम है कि जबतक कोई विषय सभापति द्वारा विचारार्थ उपस्थित न किया जाय तबतक उसपर किसीके प्रस्तावपर समर्थन कर देने मात्रसे वाद-विवाद न छिड़ सकेगा। यदि कोई ऐसी गम्भीर अवस्था भी आये, जब सभापति किसी प्रस्तावको मनमानी करके दबा देना चाहता हो और उसको सभाके सामने पेश न करना चाहता हो तथा उसे छोड़कर अन्य कार्यपर विचार करना चाहता हो, तब भी उस प्रस्तावपर सभासद अपने आप नियमानुसार विचार नहीं कर सकते। उस समय उनके लिए इस अन्यायके प्रतिकारका एक ही उपाय रह जाता है, और वह यह कि वे सभा-भवन छोड़कर प्रतिवाद-स्वरूप बाहर चले आवें। इस प्रकार बाहर निकलते समय वे अपना वक्तव्य सभाके सामने दे सकते हैं।

साधारण नियम—जिस विषयपर वाद-विवाद छिड़ा हुआ हो उस विषयपर प्रत्येक सदस्यको साधारणतः एक बार बोलनेका अधिकार होता है। परन्तु यदि उस विषय पर बोलनेकी इच्छा रखनेवाले सभी उपस्थित सदस्य एक-एक बार बोल चुके हों और कोई सदस्य दुबारा बोलना चाहता हो तो उस दशामें उसे दुबारा बोलनेकी अनुमति मिल सकती है, परन्तु दो बारसे अधिक किसी दशामें भी कोई सदस्य नहीं बोल सकता। इस कथनका अभिप्राय केवल यही है, कि प्रस्तुत विषयपर भाषण देनेके सम्बन्धमें ही सदस्य दो बारसे अधिक नहीं बोल सकते, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जानकारीके लिये पूछे जानेवाले प्रश्न अथवा किसी भाषण, आचरण या कार्यसे उत्पन्न होने वाली परिस्थितिके समझानेके लिए कहे जानेवाले वाक्य भी बीचमें न बोले जायँगे। ऐसे वाक्य यदि आवश्यक हों तो एक दो बार ही नहीं, अनेक बार कहे जा सकते हैं। हां, इतना अवश्य होना चाहिये कि इस प्रकारके प्रसंगों

पर कमसे कम शब्दोंमें काम चलानेका प्रयत्न करना चाहिए। यदि किसी अव-सर पर सभापतिको या अधिक उपयुक्त शब्दोंमें कहें तो, सभाको यह आवश्यक समझ पड़े कि प्रत्येक सदस्यको दो बारसे अधिक बार बोलनेका अवसर दिया जाय तो उसे सभाको समितिके रूपमें परिणत करने अथवा नियम विहीन रीति से प्रश्नपर विचार करना चाहिए। इन अवस्थाओंमें एक-एक व्यक्ति अनेक-अनेक बार बोल सकता है। साधारण अवस्थामें जो व्यक्ति किसी प्रश्नको लेकर कोई प्रस्ताव उपस्थित करता है, उसे वाद-विवाद समाप्त करनेके पहिले उत्तर देनेका अधिकार रहता है। परन्तु संशोधन उपस्थित करनेवाले व्यक्तिको उत्तर देनेका अधिकार नहीं रहता। प्रस्तावकके उत्तरका मौका उस समय भी दिया जाता है जब वाद-विवाद बन्द कर देनेका प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है। परन्तु यदि प्रस्तावकको उत्तरका अवसर दिये बिना वाद-विवादान्तक प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया जाय तो प्रस्तुत विषयपर किसी सदस्यको एक शब्द भी कहनेका अवसर दिए बिना वोट ले लिये जायँगे। यदि प्रस्तावक अपने प्रस्ताव के सम्बन्धमें उपस्थित किये गये संशोधनपर भी भाषण करेगा, तो उसका उत्तरका अधिकार चला जायगा। समर्थकको दुबारा बोलनेका अधिकार साधा-रणतया नहीं होता। परन्तु यदि वह समर्थन करते समय केवल इतना कह-कर बैठ गया हो कि मैं प्रस्तावका समर्थन करता हूं, तो यदि वह बादमें बोलना चाहे तो उसे बोलनेका अवसर मिल सकेगा। सब भाषण विषयके अनुरूप ही होने चाहिये, अनर्गल नहीं। प्रस्तावक स्वयं अपने प्रस्तावके विरोध में भाषण न दे सकेगा। पर यदि वह चाहे तो उसके विरोधमें वोट अवश्य दे सकता है। यदि किसी अवसरपर वक्तासे कोई सदस्य स्थिति स्पष्ट करनेके अभिप्रायसे अथवा अन्य किसी उपयुक्त कारणोंसे प्रश्न पूछना चाहे तो वह पूछ

सकता है। ऐसी दशामें सदस्य वक्ताके भाषणके बीचमें ही खड़ा होकर सभापतिको सम्बोधन कर कहेगा कि मैं प्रश्न पूछना चाहता हूँ। सभापति वक्तासे पूछेगा कि वह उस समय प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए तैयार है या नहीं। यदि वक्ता उत्तर देनेको प्रस्तुत होगा तो सभापति प्रश्नकर्त्तासे प्रश्न पूछनेके लिए कहेगा। प्रश्नकर्त्ता सभापतिको ही सम्बोधन करके प्रश्न पूछेगा और इसी प्रकार वक्ता भी सभापतिको ही सम्बोधन कर उत्तर देगा। दो सदस्य आपसमें प्रश्नोत्तर न कर सकेंगे। इस प्रश्नोत्तरमें जो समय लगेगा वह समय वक्ताको दिये गये समयसे काट लिया जायगा। प्रश्नोत्तरके समय सभापति इस बातका ध्यान रखेगा कि प्रश्न वे ही पूछे जायें जिनसे सभाकी कार्यवाहीको सहायता पहुंचे। प्रश्नोत्तर करनेवाले अपनी-अपनी बात कहकर प्रतिबार बैठ जायंगे परन्तु सभापति उस समय तक खड़ा रहेगा जबतक प्रश्नोत्तर समाप्त न हो जायंगे। खड़े रहनेका अभिप्राय यह है कि कोई समय ऐसा न आवे जब मंच खाली मालूम हो और कोई अन्य सदस्य वक्तृताधिकार प्राप्त करनेका आवेदन करे।

जब सभाएँ बड़ी होती हैं, और प्रत्येक प्रस्तावपर बोलनेवालोंकी संख्या पर्याप्त होती है, तब वादविवादके लिए पहलेहीसे समय निर्धारित कर देना चाहिए। यह समय दो प्रकारसे निर्धारित किया जा सकता है। एक तो इस प्रकार कि समष्टि रूपसे वादविवाद अमुक समयसे अमुक समयतक होगा और दूसरे इस प्रकार कि प्रत्येक वक्ताको इतने मिनटका समय दिया जायगा। इस प्रकार समय निर्धारित कर देनेपर प्रत्येक वक्ताको निश्चित समयके अन्दर ही अपना भाषण समाप्त कर देना चाहिए। यदि कोई ऐसा न करे तो सभापति उसे बोलनेसे रोक सकता है। परन्तु यदि सभाएँ बड़ी नहीं हुईं और बोलने-

वालोंकी संख्या भी अधिक नहीं हुई, तो साधारणतः समयका कठोर नियंत्रण सभाओंमें नहीं किया जाता।

वादविवादके समय प्रत्येक सदस्यको खड़े होकर बोलना चाहिए। परन्तु समितियोंमें खड़े होनेका नियम नहीं है। खड़े होनेमें कभी-कभी पक्ष और विपक्षमें बोलनेवाले वक्ताओंको मेजकी भिन्न-भिन्न दिशाओंकी ओर अलग-अलग खड़ा किया जाता है। परन्तु यह कोई नियम नहीं है। इसका अभिप्राय केवल यह मालूम होता है कि जो वक्ता बोलनेके लिए आया है, वह किस पक्षमें बोलेगा, इसका स्पष्टीकरण पहलेहीसे हो जाय। इस क्रमसे कोई विशेष लाभ नहीं है। सभापतिको इस बातपर ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि दोनों पक्षोंके वक्ताओंके साथ समुचित न्याय किया जाय और उन्हें बोलनेका उचित अवसर प्रदान किया जाय।

जब वक्ताओंका क्रम पहलेहीसे निर्धारित हो, तब सभापति उसी क्रमसे वक्ताओंको भाषण देनेके लिए बुलायेगा और उस दशामें वह अपने उत्तर-दायित्वसे बहुत कुछ बच जायगा। परन्तु उस क्रममें भी यदि सभापति उचित समझे तो सुधार कर सकता है। सभापति जब अपना निर्णय देनेके लिए अथवा किसी अनुशासनके प्रश्नपर (Point of order) या किसी अन्य ऐसे ही कारणसे खड़ा हो, तब सभामें भाषण देनेवाले तथा अन्यान्य कारणोंसे खड़े होनेवाले व्यक्तियोंको तुरन्त बैठ जाना चाहिए। सभापतिके खड़े होते ही सभा की अन्य सब कार्यवाही स्थगित हो जायगी और सभामें इतनी शान्ति स्थापित हो जायगी कि सभापतिकी बात सबको साफ-साफ सुनाई दे।

कुछ विशेष बातें—साधारणतः सभी प्रस्तावोंपर वादविवाद किया जा सकता है। परन्तु कुछ प्रस्ताव ऐसे हैं, जिनपर वादविवाद नहीं किया जा

सकता। ऐसे प्रस्तावोंकी संख्या पिछले प्रस्ताव शीर्षक अध्यायमें वादविवाद-विहीन प्रस्तावके अन्तः शीर्षकके नीचे दी गयी है। उन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें तथा उनके अतिरिक्त अन्य प्रस्तावोंके सम्बन्धमें भी, जिनमें वादविवाद नहीं किया जा सकता, प्रायः निम्नलिखित विचार काम किया करते हैं। अधिकारात्मक प्रस्ताव प्रायः विवाद योग्य नहीं माने जाते। परन्तु जहांपर सभा तथा किसी सदस्यके अधिकारोंसे इनका सम्बन्ध हो, वहां वे विवाद योग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार जिन प्रस्तावोंसे किसी नियमको स्थगित करनेकी आवश्यकता पड़ती है, उन प्रस्तावोंपर भी वादविवाद नहीं हो सकता। सुविधाजनक-प्रस्तावोंके सम्बन्धमें यह नियम पाला जाता है कि जो प्रस्ताव सभाको मूल प्रश्नपर विचार करनेसे जिस हदतक रोकता है, उसपर उसी हदतक वादविवाद हो सकता है। अर्थात् यदि ऐसा प्रस्ताव हो कि जिससे सभा जब चाहे, तब मूल प्रश्न विचारार्थ पेश कर सके, (जैसे प्रश्न रोक रखनेका प्रस्ताव) (To lay on the table) तो उसपर वादविवाद न किया जायगा। यदि ऐसा हो, जिससे एक विशेष समयतकके लिए प्रश्न स्थगित हो जाय (जैसे सुपुर्द करने और एक निर्धारित समयतक स्थगित करनेके प्रस्ताव) तो केवल इस बातपर विवाद होगा कि उस प्रश्नका उतने समयतक स्थगित करना उचित हो या नहीं, मूल प्रश्नपर बिलकुल विचार न किया जायगा, परन्तु यदि किसी सुविधाजनक-प्रस्तावसे मूल विषय उस अधिवेशन भरके लिए सभाके सामनेसे टला जाता हो, तो उस सुविधाजनक-प्रस्ताव पर साथ ही मूल प्रश्नके गुणावगुणपर भी विचार किया जा सकता है। इस प्रकार मूल प्रश्नोंको भी अपने साथ विवादके योग्य बना देनेवाले प्रस्तावोंमें [१] अनिश्चित समयतकके लिए स्थगित करनेके प्रस्ताव, [२] किसी विवाद योग्य प्रश्नपर पुनर्विचारका प्रस्ताव, [३] किसी प्रस्तावको रद्द कर देनेका प्रस्ताव तथा [४]

किसी कार्य या प्रस्तावका समर्थन करने (Ratify) का प्रस्ताव मुख्य है। यदि एक विषयपर एक बार वोट लिए जा चुके हों और फिर पुनर्बार वोट लेनेका आयोजन हो (जैसा कि डिवीजन आदिके समय होता है) तो दुबारा वोट लेनेके समय वादविवाद साधारणतया न होगा। परन्तु यदि सभाकी प्रायः सर्वसम्मति हो तो उस समय भी वादविवाद फिर छेड़ा जा सकता है।

सभासदोंके लिए यह आवश्यक होता है कि वे सभापतिकी आज्ञाका पालन करें। सभापतिको यह अधिकार होता है कि यदि कोई सदस्य उसकी आज्ञाका पालन न करे, तो वह उसे बोलनेसे रोक दे। इन अधिकारोंके होते हुए भी यदि सभापति वादविवादके अवसरपर किसी प्रश्नपर यथेष्ट समय न देकर वोट लेनेके लिए शीघ्रता करके उसे पेश कर दे, तो सभासदोंको यह अधिकार है कि वे सभापतिके उस कार्यकी अवहेलना करके वादविवादके लिए फिर समय मांगें। साधारण नियम यह है कि वादविवादके समाप्त हो जानेपर सभापति पूछता है कि क्या अब इस प्रश्नपर सम्मति ली जाय। इसके बाद वह उत्तरकी प्रतीक्षामें थोड़ी देर रुका रहता है। जब कोई एतराज नहीं करता तब वह कहता है, अच्छा, अब यह प्रश्न सम्मतिके लिए उपस्थित किया जाता है। जो इसके पक्षमें हों वे हाथ उठावें, जो विपक्षमें हों वे हाथ उठावें आदि। जब इस क्रमसे काम किया गया हो, तब तो सम्मति-गणनाके लिए प्रश्नको उपस्थित कर देनेपर कोई वादविवाद नहीं छेड़ा जा सकता। परन्तु यदि प्रथम प्रश्न पूछनेके बाद उसके उत्तरकी प्रतीक्षाके लिए रुके बिना ही सम्मति-गणना करने लगे, तो सभासद वादविवादकी मांग पेश कर सकते हैं, और उस दशामें उसे मौका देना ही पड़ेगा। परन्तु यदि इतनेपर भी सभापति मौका न दे, तो उसे बाध्य नहीं किया जा सकता। हां, प्रतिवाद स्वरूप सभा-भवन छोड़कर निकल आया जा सकता है।

सदाचार-रक्षा—प्रत्येक वक्ताके लिये यह आवश्यक है कि वह वाद-विवादमें सदाचारका ध्यान रखे, कोई ऐसी बात न कहे जो शिष्टाचारके योग्य न हो। सदाचारकी रक्षाका सवाल विशेषतया उस अवसरपर आता है, जब किसी कामकी निन्दाका प्रश्न छिड़ा हो। ऐसे अवसरपर प्रायः वक्तागण अपने विषयसे बाहर बहक जाते हैं, और उस कार्यकी निन्दा करते-करते व्यक्तियोंकी निन्दा तक करने लगते हैं। ऐसे मौकोंपर पहिले तो जहांतक सम्भव हो, वहांतक निन्दात्मक विषयकी उपेक्षा ही करनी चाहिये। परन्तु यदि कोई ऐसे विषय आ ही जायं तो सावधानीके साथ इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि आलोचना या निन्दा कामकी हो, व्यक्तिकी नहीं। यदि उस कामके सिलसिलेमें व्यक्तियोंके उल्लेखकी आवश्यकता हो तो उनका नाम न लेकर पूर्व वक्ता आदि सांकेतिक शब्दोंका प्रयोग करके उनका उल्लेख करना चाहिये। जहां पदाधिकारियोंका प्रश्न हो वहां उनके पदका ही उल्लेख किया जाय, नामोंका नहीं। जब सभाके कार्योंका प्रश्न छिड़ा हो, बशर्ते कि उस समय उसी कार्यकी निन्दाका या उसे रद्द करवानेका प्रस्ताव न छिड़ा हो, तो उन कार्योंकी निन्दा करना शिष्टाचारके अयोग्य समझा जाता है, और उससे बचना प्रत्येक सदस्यका कर्तव्य है।

यदि वक्ता किसी व्यक्तिपर अनुचित आक्षेप कर जाय अथवा यों ही कोई अपशब्द कह जाय तो सभापतिको अधिकार होता है कि वह उस वक्ताको बोलनेसे रोक दे। इस प्रकार रोकनेके बाद उस वक्ताको सभाकी सम्मतिके बिना पुनः बोलनेका अधिकार न मिल सकेगा। ऐसी सम्मति भी वोटों द्वारा प्राप्त करनी पड़ेगी, वैसे ही नहीं। परन्तु वोट लेनेके पहिले ऐसी अवस्थामें वादविवाद न हो सकेगा। जब किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें कोई आपत्तिजनक

बात कही गयी हो तब जिसके सम्बन्धमें आपत्ति की गयी हो, उसको अथवा अन्य किसी व्यक्तिको वह बात लिख लेनी चाहिये और प्रथम अवसर पाते ही सभापतिसे उसका उल्लेख करते हुए उस अंशपर एतराज करना चाहिये। इस अवस्थामें सभापति वक्तासे पूछेगा कि उसने वह बात कही या नहीं। यदि वक्ताने स्वीकार किया तब तो कोई बात नहीं; अस्वीकारकी हालतमें सभापति सभाकी मतगणनासे यह निश्चय करेगा कि वे शब्द वास्तवमें वक्ताके थे या नहीं। इसके बाद वह उस सम्बन्धमें क्या कार्यवाही करनी चाहिये, यह निश्चय करेगा। जिस व्यक्ति या जिन व्यक्तियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कार्यवाही की जाती है, वे उस समय सभासे हट जाते हैं जब उनपर कार्यवाही करनेके सम्बन्धमें विचार किया जाता है। साधारण नियम यह है कि जिन व्यक्तियोंके सम्बन्धमें कोई कार्यवाही करनेका विचार किया जा रहा हो, उन व्यक्तियोंको सभामें न रहना चाहिये; क्योंकि उनकी उपस्थितिसे उस कार्यवाहीमें भाग लेनेवाले व्यक्तियोंको सङ्कोच हो सकता है, और कार्यवाहीमें उचित न्याय न होनेकी आशङ्का हो सकती है। परन्तु यदि पदाधिकारियोंमेंसे किसीके किसी आचरणपर कोई कार्यवाही करनेका विचार हो रहा हो तो यह आवश्यक नहीं है कि वह वहांसे चला जाय। ये नियम कहांतक उचित हैं, यह प्रश्न विचारणीय है। जिस व्यक्तिपर कार्यवाही की जा रही हो, उसका अनुपस्थित रहना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। जिस प्रकार पदाधिकारियोंके सम्बन्धमें यह कहा गया है कि उन्हें बाहर जानेकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार अन्य सदस्योंकी उपस्थिति भी अनियमित न मानी जानी चाहिये। आपत्तिजनक शब्द निकलते ही उन शब्दोंके सम्बन्धमें एतराज करना चाहिये। यदि उन शब्दोंके बाद कुछ कार्यवाही हो जाय और उसके बाद उनपर एतराज किया जाय तो वे आपत्तिजनक नहीं रह जाते।

वादविवादका अन्त---वैसे तो सभापतिको अधिकार होता है कि विशेष अवस्थाओंमें यदि वह उचित समझे तो किसी समय भी वादविवाद रोक सकता है। इसके अतिरिक्त साधारणतः वादविवादके निर्धारित समयपर वह वैसे भी, यदि नियमित रूपसे उसका नियन्त्रण किया गया हो तो, समाप्त हो जाता है। परन्तु अन्य अवस्थाओंमें उसे रोकनेके लिये पृथक प्रस्ताव उपस्थित करने पड़ते हैं। ये प्रस्ताव साधारणतः दो प्रकारके होते हैं—एक ऐसे, जिनके द्वारा थोड़ी देरके लिये विवाद रोका जा सकता है और दूसरे ऐसे, जिनके द्वारा हमेशाके लिये रोका जा सकता है। प्रस्तुत प्रश्नको रोक रखनेका प्रस्ताव (to lay on the table) रखकर कुछ समयके लिये वादविवाद स्थगित किया जा सकता है। इस प्रस्तावमें बहुमतकी ही जरूरत है। परन्तु निषेधार्थक प्रस्ताव, एक निर्धारित समयपर वादविवाद समाप्त कर देनेका प्रस्ताव, प्रस्तुत विषयपर विचार करनेपर एतराज करनेका प्रस्ताव रखकर भी वादविवाद बन्द कराया जा सकता है। इन प्रस्तावोंके लिये दो-तिहाई वोटोंकी आवश्यकता पड़ती है।

इन प्रस्तावोंके अतिरिक्त केवल इसी अभिप्रायसे एक प्रस्ताव रखा जाता है, जिसे वादविवादान्तक प्रस्ताव कहते हैं। वादविवादान्तक प्रस्तावका प्रयोग उसी अवस्थामें होना चाहिये जब यथेष्ट समयतक और यथेष्ट मात्रामें वाद-विवाद हो चुका हो, जिससे किसी पक्षको कोई विशेष हानि न पहुंचे। किन्तु यदि कोई पक्ष जान-बूझकर समय टालनेके लिये लम्बी-लम्बी वक्तृताएं देता हो और केवल शरारतके लिये समय बिता रहा हो तो (कभी-कभी जब वादविवादका समय पहिलेहीसे निर्धारित होता है, तब कमजोर पक्ष समय टालनेके लिये ही इस प्रकारकी युक्तियोंसे काम लेते हैं, परन्तु यह अनुचित

है) बीचमें ही वादविवादान्तक प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है। उस समय यदि उस पक्षका कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति भी भाषण देनेसे रह गया हो, तो उसके लिये वादविवाद बढ़ाया नहीं जाना चाहिये। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कोई पक्ष अपना बहुमत जानकर यह न करने पावे कि विपक्षकी बातें सुननेका मौका दिये बिना वादविवादका अन्त करा दे। इस प्रकारसे जब विवादान्तक प्रस्ताव उपस्थित किया जायगा, तब सभापतिके लिये यह आवश्यक होगा कि वह उस प्रस्तावको सभाके सामने वोटके लिये पेश करे और जब वह स्वीकार हो जाय तो प्रस्तावकर्त्ताको उत्तरका अवसर देकर मूल प्रस्तावपर वोट ले ले। परन्तु यदि सभापति वादविवादान्तक प्रस्तावको उचित न समझे तो वह इसलिये वाध्य नहीं किया जा सकता कि वाद-विवादान्तक प्रस्ताव मंज़ूर ही कर ले। वह न्यायके नामपर उसे पेश करनेसे इनकार भी कर सकता है।

यह प्रस्ताव किसी प्रश्नके छिड़े होनेपर भी पेश किया जा सकता है, परन्तु यदि कोई वक्ता भाषण दे रहा हो तो साधारणतः बीचमें यह पेश नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि वक्ता जान-बूझकर वादविवाद बढ़ानेके अभि-प्रायसे भाषण करता ही चला जा रहा हो, तो बीचमें भी यह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है।

वादविवाद रोकनेकी एक आकस्मिक अवस्था भी आती है। वह यह कि सभासे इतने सदस्य उठकर चले गये हों कि कोरम भी पूरा न रह गया हो। ऐसी अवस्थामें यदि सभापतिका ध्यान इस ओर दिलाया जाय तो वादविवाद—वादविवाद ही क्यों, सभी कार्यवाही बन्द हो जायगी।

सम्मति-गणना

जब किसी विषयपर वादविवाद हो चुकता है, अथवा विषयके अविवादास्पद होनेपर जब वह पेश हो चुकता है, तब उसपर सभाकी राय जाननेका प्रयत्न किया जाता है। यह प्रयत्न ही सम्मति-गणना (Voting) के नामसे पुकारा जाता है। वादविवाद समाप्त हो जानेके बाद सभापति प्रस्तुत विषय सभाके सामने सम्मतिके लिए पेश करते हुए कहता है कि "अब असुक विषय पर वादविवाद हो चुका, क्या इसपर सभाकी सम्मति ली जाय ?" इसके बाद उपयुक्त समयतक वह उत्तरकी प्रतीक्षा करता है। यदि कोई सदस्य उत्तर नहीं देता, तो स्वीकृति समझकर वह फिर आगे सम्मति-गणनाके लिए प्रयत्न करता है। सम्मति-गणना कई प्रकारसे होती है, जिनमेंसे निम्नलिखित विधियां अधिक प्रचलित हैं:—जबानी हां या न कहकर, हाथ उठाकर, खड़े होकर, सभासदोंके नाम पढ़कर, सम्मति पत्रद्वारा, (Ballot Paper)—सभा-भवनमें

दाहिनी और बाईं ओर खड़े होकर, डाकद्वारा या प्रोक्सी द्वारा। इनमेंसे पिछली दो विधियां अनुपस्थित लोगोंकी सम्मतिके लिए प्रयोगमें आती हैं, शेष उपस्थित सदस्योंकी सम्मति-गणनाके लिए।

उपस्थित सदस्योंकी सम्मति-गणना—सम्मति गणनाकी जिन विधियोंका उल्लेख किया गया है, उन्हें कुछ विस्तारपूर्वक समझानेकी भी आवश्यकता प्रतीत होती है। उनमेंसे उपस्थित सदस्योंकी सम्मति-गणनापर पहले विचार करना शायद अधिक उपयुक्त होगा।

[१] **जबानी**—जबानी सम्मति-गणना उस सम्मति-गणनाको कहते हैं, जिसमें किसी प्रस्तुत विषयपर केवल सदस्योंसे हां या न कहलवाकर सम्मति गणना की जाती है। यह प्रथा यद्यपि सबसे अधिक प्रयोगमें नहीं आती, फिर भी प्रायः ऐसे प्रश्नोंपर, जिनमें बहुमत और अल्पमतका अन्तर काफी होता है, केवल ध्वनिसे अन्दाज लग सकता है कि प्रस्तुत विषयके पक्षपाती बहुत हैं या विरोधी। इस दशामें सभापतिके यह पूछते ही कि प्रश्नके पक्षमें कौन-कौन सज्जन हैं, यदि पक्षवाले बहुमतमें हुए तो चिल्ला उठते हैं, सब सब। इसी प्रकार विपक्षमें जो सदस्य होते हैं, यदि उनका बहुमत हुआ तो विपक्षका प्रश्न करनेपर वे भी चिल्ला उठते हैं सब-सब। इससे स्पष्ट रूपसे सभापतिको सभाकी सम्मतिका अन्दाज़ा हो जाता है।

[२] **हाथ उठाकर**—हाथ उठाकर सम्मति-गणना करनेका प्रचार सबसे अधिक है। प्रायः सभाओंमें यही विधि बरती जाती है। यह अधिक सुविधाप्रद भी है। हाथ उठाकर सम्मति-गणना करनेमें भूलकी सम्भावना कम होती है; और सभासदोंको भी अधिक कष्ट नहीं होता। इस अवस्थामें सभापति कहता है, जो सदस्य प्रश्नके पक्षमें हों, वे हाथ उठावें, फिर जो विपक्षमें

हों, वे हाथ उठावें। इस प्रकार दोनों पक्षोंके हाथ उठाकर वह सम्मतिका निर्णय करता है।

[३] खड़े होकर—इस प्रणालीके अनुसार जो सदस्य अपनी सम्मति देता है, वह खड़ा हो जाता है। जिस प्रकार हाथ उठानेकी विधिमें सभापति-के यह कहनेपर कि जो पक्ष या विपक्षमें हों, वे हाथ उठावें, सदस्यगण हाथ उठा देते हैं, उसी प्रकार इस विधिके अनुसार पक्ष या विपक्षमें सम्मति देने-वालोंको खड़ा होनेका आदेश सभापति देता है और उसके आदेशपर सदस्यों-को खड़ा होना पड़ता है। यह प्रथा असुविधाप्रद है। खड़े होनेमें सदस्योंको अपेक्षाकृत अधिक असुविधा होती है।

[४] सभासदोंके नाम पढ़कर—यह गणना-विधि अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। इसमें सभाका कर्मचारी या मन्त्री सभासदोंके नाम पुकारता जाता है और उनसे पक्ष या विपक्षमें सम्मति पूछता जाता है। जो सदस्य जिस पक्षमें सम्मति देता है, उसकी सम्मति उसी प्रकार लिख ली जाती है और बादमें सुनायी जाती है। इस प्रकारकी सम्मति-गणनामें यह अच्छा होता है कि पक्षमें वोट देनेवालोंके नामके आगे नामावलीके कागजपर बाईं ओर एक, दो क्रम संख्या दी जाय और विपक्षमें वोट देनेवाले सदस्योंमें दाहिनी ओर तथा जो वोट न दें, उनके लिए एक तीसरे स्थानपर संख्या लिख ली जाय। इससे लाभ यह होगा कि जब सम्मतिगणना सुनाई जायगी, तब कर्मचारी तुरन्त कह सकेगा कि पक्षमें इतने, विपक्षमें इतने और सम्मति न देनेवाले इतने सदस्य हैं। अन्यथा एक बार सबके नामके आगे पक्ष या विपक्ष लिखना पड़ेगा, फिर उनकी गिनती करनी पड़ेगी और तब वह पूर्ण संख्या बता सकेगा। इस प्रकारकी सम्मति-गणनामें वोटोंकी संख्या बतानेके पहले पूर्ण

निश्चयके लिये यह आवश्यक होता है कि लिखनेवाला व्यक्ति पूरी नामावली समाप्त हो जानेके बाद पक्ष और विपक्षमें वोट देनेवाले व्यक्तियोंके नाम क्रमसे अलग-अलग सुना जाय, ताकि किसीके नाममें भूल न रह जाय। इसमें नाम पुकारते समय पक्षवाले 'हां' और विपक्षवाले 'नहीं' और किसी ओर वोट न देनेवाले सदस्य केवल 'उपस्थित' कहकर रह जाते हैं। यह विधि भी असुविधा-जनक है।

[५] **सम्मति-पत्र द्वारा**—(Ballot) इस पद्धतिका प्रधान उद्देश्य यह है कि सभाको यह विदित न होने पावे कि किस सदस्यने किस पक्षको वोट दिया है। ऐसी अवस्था विशेषकर ऐसे प्रश्नोंपर सम्मति-गणनाके अवसरपर आती है, जिसमें सभासद अपनी सम्मति छिपाना चाहते हैं। प्रायः किसी सदस्यके निर्वाचन, किसी पदाधिकारी द्वारा किये गये अपराधपर दण्ड-व्यवस्था आदि अवसरोंपर इस प्रणालीसे वोट देनेकी आवश्यकता होती है। इस विधिसे सम्मति देनेमें होता यह है कि सभासदोंको परचे दिये जाते हैं, जिनमें 'पक्ष' या 'विपक्ष' अथवा यदि किसीके निर्वाचनके सम्बन्धमें प्रस्ताव हुआ तो उन व्यक्तियोंके नाम, जो उम्मेदवार खड़े हुए हैं, लिखे रहते हैं। प्रत्येक सभासद अपनी इच्छाके अनुसार पक्ष या विपक्षमें या नामके आगे एक निश्चित निशान बना देता है। वही उसकी सम्मति मानी जाती है। इसके बाद वह उस परचेको इस ढंगसे मोड़ देता है, जिससे यह न मालूम पड़े कि वह किस पक्षमें वोट दे रहा है। इस प्रकार तैयार करके परचा अपने पास रख लेता है। इसके बाद या तो सभाका एक कर्मचारी बक्स या थैला लेकर एक-एक करके सब परचे उस बक्स या थैलेमें डलवाता है, अथवा बक्स या थैला एक स्थानपर रखा रहता है और सदस्योंसे स्वयं प्रार्थना की जाती है कि वे आ-आकर उनमें परचे डाल दें।

जब कर्मचारी डलवाने जाता है, तब तो एक सदस्यके दो बार डालनेकी आशङ्का नहीं होती; क्योंकि वे अपने स्थानसे उठ नहीं सकते और न कर्मचारी एक बारसे अधिक उनके पास जायगा। परन्तु जब सदस्य स्वयं परचा डालने आयें, तब किसी सदस्यके दो बार परचे डालनेकी सम्भावना हो सकती है। उसे रोकनेके लिये यह अच्छा होता है कि एक कर्मचारी उस बक्सके पास बैठा दिया जाय, जो सभासदोंकी सूचीमेंसे उन सदस्योंके नाम काटता जाय जो परचे डाल चुके हों। इस प्रकार यदि कोई सदस्य दुबारा वोट डालने आवेगा तो पकड़ा जा सकेगा। एक ही साथ दो परचे मोड़कर डालनेकी चेष्टा की जाय, तो वह अनियमित मानी जायगी और उस दशामें वे दोनों वोट गिनतीमें न आवेंगे। एक साथ एक ही परचा पड़ा हुआ होना चाहिये। यदि दो परचे एक साथ मुड़ गये हों, परन्तु लिखा एक ही हो तो लिखा हुआ परचा नियमित माना जायगा, कोरा फेंक दिया जायगा। परन्तु दोनों लिखे हुए होंगे तो वह बेईमानीसे लिखे गये माने जायंगे और उस दशामें दोनो परचे नाजायज़ माने जायंगे। इस प्रकारकी प्रथा कारपोरेशन, म्युनिसपैलिटी, कौंसिल आदिके चुनावमें काम आती है। परचोंमें यदि ऐसा प्रसंग आवे, जिसमें सदस्यकी अशिक्षा, अज्ञानता आदिसे लिखनेमें ऐसी गलती हो गयी हो जिससे अर्थमें कोई गड़बड़ी न आती हो, तो उस गलतीकी उपेक्षा करनी चाहिये, उसका वोट अभिप्रेत पक्षमें गिन लेना चाहिये। जैसे, यदि किसी कर्मचारीको अपराधी या निरपराधी साबित करनेके लिये सम्मति ली जा रही हो और उस दशामें कोई सदस्य 'अपराधी' या 'निरपराधी' लिख दे तो इन वोटोंको रद्द नहीं करना चाहिये। परन्तु जब ऐसी अवस्था आये कि लिखनेके ढंगसे ठीक-ठीक पता न चले कि किस पक्षमें वोट दिया गया है, तब सभापति चाहे तो सभाके सामने यह प्रश्न उपस्थित कर

सकता है कि वह वोट किस पक्षमें शामिल किया जाय और उसीके निर्णयके अनुसार वह शामिल किया जायगा। सम्मति-पत्रों द्वारा लिये जानेवाले वोटोंकी गणना करनेके लिये आदमी नियुक्त किया जाता है। वह अपनी रिपोर्ट प्रायः यों देता है—इतने वोट पड़े, इतने पक्ष या विपक्षकी जीतके लिये जरूरी थे, इतने पक्षमें आये, इतने विपक्षमें आये, इतने रद्द कर दिये गये। यदि इस प्रकार किसी पक्षके जीतनेके लिये जितने वोटोंकी आवश्यकता है, उतने न आये हों तो उसका अन्तिम निर्णय करनेके लिये सभापतिको फिर वोट लेने पड़ेंगे। सम्मति-गणनाकी यह पद्धति भी बड़ी असुविधाजनक है और सार्वजनिक सभाओंमें जहांतक हो सके, वहांतक इसको बचाना चाहिये।

[६] **सभा-भवनमें दाहिनी या बाईं ओर जाकर**—कभी-कभी पक्ष या विपक्षके सदस्योंको सभा-भवनकी अलग-अलग दिशाओंमें खड़े करके भी सम्मति-गणना की जाती है और कभी-कभी सदस्योंके विश्रामके लिये बने हुए सभा-भवनके निकटवर्ती भिन्न-भिन्न कमरोंमें (lobbies) में भेजकर वोट लिये जाते हैं। यह गणना भी पूर्वोक्त तीनों गणना-विधिकी भांति ही असुविधाजनक है।

अनुपस्थित सदस्योंकी सम्मति-गणना—ऊपर जिन विधियोंका वर्णन किया गया है, वे उपस्थित सदस्योंकी गणना-विधियां हैं, और वास्तवमें ये ही गणना-विधियां उपयुक्त भी हैं। साधारणतः विचारात्मक सभाओंमें अनुपस्थित सदस्योंकी सम्मति नहीं ली जाती। परन्तु विशेष अवस्थाओंमें—खास तौरपर उस समय, जब किसी संस्थाका संगठन विस्तृत भू-भाग व्यापी हो और उसे कोई ऐसे काम करने हों, जिनमें सदस्योंकी सम्पूर्ण संख्याके बहुतमतकी जानकारी आवश्यक हो, तब अनुपस्थित लोगोंकी सम्मति जाननेकी जरूरत पड़ती है

और उसके लिये प्रयत्न किया जाता है। अनुपस्थित लोगोंकी सम्मतियां दो प्रकारसे उपलब्ध होती हैं—डाक द्वारा और प्रोक्सी द्वारा।

(१) **डाक द्वारा**—जब किसी विशेष पदाधिकारीका निर्वाचन, या संस्थाके नियम-विधानके परिवर्तनका कोई प्रस्ताव उपस्थित होता है, अथवा कोई अन्य ऐसा ही प्रश्न होता है, तब बाहरके सदस्योंको पत्र लिखा जाता है, जिसमें उन प्रश्नोंका विवरण दिया रहता है। कभी-कभी पक्ष और विपक्षके नेताओंसे प्राप्त करके उस प्रश्नके सम्बन्धकी विशेष-विशेष युक्तियां भी साथमें लिखकर भेज दी जाती हैं और साथमें एक परचा रहता है, जिसमें वे सदस्य सम्मति लिखकर वापस भेजते हैं। साधारणतः ऐसी अवस्थाओंमें सम्मति बन्द लिफाफेमें भेजी जाती है। परन्तु इस प्रणालीसे यह छिपाया नहीं जा सकता कि किस सदस्यने किस विषयपर पक्षमें या विपक्षमें वोट दिया। उसका कारण यह है कि डाकसे भेजते समय सदस्योंके लिये यह आवश्यक होता है कि अपनी सम्मति लिखकर उसपर स्पष्ट रूपसे अपने हस्ताक्षर कर दें। यदि उनके हस्ताक्षरका नियम न रहे तो पता नहीं लग सकता कि किन सदस्योंने वोट दिये। साथ ही यह भी हो सकता है कि एक सदस्य एकसे अधिक उम्मेद-वारके लिये (यदि ऐसा प्रश्न हो तो) सम्मति दे या एकहीके लिये कई वोट दे।

(२) **प्रोक्सीके द्वारा**—प्रोक्सी एक प्रकारसे सम्मति देनेका मुख्तारनामा है। जो सदस्य स्वयं उपस्थित नहीं हो सकता, वह किसी अन्य व्यक्तिको—जो अधिकांशमें उस संस्थाका सदस्य होता है—अपनी ओरसे प्रस्तुत प्रश्नोंपर सम्मति देनेका अधिकार दे देता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अनुपस्थित सदस्य किसी अन्य सदस्यको यह अधिकार न देकर

एक गैरसदस्य व्यक्तिको अपनी ओरसे भेजता है। परन्तु यह अवस्था नितान्त अवांछनीय है और किसी गैरसदस्यको प्रोक्सी न मिलनी चाहिये। सदस्योंको भी प्रोक्सी मिलनेका नियम न हो, तो अच्छा है। वैसे भी प्रोक्सी सब जगह प्रचलित भी नहीं है। इसका प्रयोग विशेष अवस्थाओंमें ही, और सभाके नियमोपनियमोंमें विशेष रूपसे उल्लिखित होनेपर ही किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। इसमें एक दोष यह है कि जिस सदस्यके पास प्रोक्सी है, उसको अन्य सदस्योंकी अपेक्षा, जिनके पास प्रोक्सी नहीं है, एक या जितनी प्रोक्सी हो उतने वोट अधिक देनेका अधिकार हो जाता है। इससे सदस्योंकी समानताका भाव, जो सभाके लिये जरूरी होता है, नष्ट हो जाता है। फिर कभी-कभी ऐसी अवस्था भी आ जाती है, जब अकेले एक आदमीके पास इतनी अधिक प्रोक्सी हों कि उपस्थित अन्य सब सदस्योंको मिलाकर भी उसके वोटोंकी संख्या अधिक हो जाय। ऐसी अवस्थामें वह सभाके निर्णयको अपनी इच्छाके अनुसार बदल सकता है, यह किसी दशामें भी उचित और वांछनीय नहीं कहा जा सकता। अतः इस प्रथाका जहांतक हो सके, वहांतक बहिष्कार करना चाहिये। परन्तु कुछ अवसर ऐसे आ सकते और आते भी हैं, जब प्रोक्सी उपयोगी सिद्ध होती है। उन अवस्थाओंमें सोच-समझकर इनका प्रयोग करना चाहिये।

घोषणा और निर्णय—किसी प्रस्तुत प्रस्तावपर उपरोक्त विधियोंसे वोट ले लेनेके बाद सभापति उन सम्मतियोंकी घोषणा करता है। ऐसी अवस्थामें साधारणतः जब सभापतिको किसी प्रकारका शक नहीं रह जाता, तब तो वह खड़ा होकर कहता है—"पक्षमें बहुमत है, इसलिये प्रस्ताव स्वीकार किया गया" या "विपक्षमें बहुमत है, अतः अस्वीकृत किया गया।" परन्तु जब

सम्मति-गणनामें उसे शक हो तब वह कहेगा—"मालूम होता है कि बहुमत पक्षमें है।" इतना कहकर वह थोड़ी देर ठहरेगा, ताकि उसके इस कथनपर यदि कोई आपत्ति करना चाहे तो करे। परन्तु यदि कोई आपत्ति न आवे तो थोड़ी देर बाद ही वह कहेगा—"बहुमत पक्षमें है, अतः प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।" कभी-कभी शककी हालतमें सभापति सदस्योंके एतराजकी प्रतीक्षा किये बिना ही निश्चय करनेके अभिप्रायसे दुबारा मत-गणना कर लेता है, और उसके बाद निश्चित रूपसे निर्णय देता है। वोटोंकी घोषणा करनेके साथ-साथ सभापतिको तीन बातें बतानी पड़ती हैं—एक तो यह कि प्रस्ताव स्वीकार हुआ या अस्वीकार हुआ, दूसरे यह कि उस स्वीकृति और अस्वीकृतिका क्या प्रभाव पड़ा या क्या परिणाम हुआ? और तीसरे यह कि अब सभाके सामने कौनसा कार्य है। यदि कोई कार्य सभाके सामने कार्यक्रमके अनुसार शेष न रह गया हो तो सभापति उसके बाद पूछेगा कि सभा अब किस प्रश्नपर विचार करना चाहती है, और उसके बाद यदि कोई उपयुक्त प्रश्न सामने आया, जिसपर विचार करनेके लिये सभा समर्थ हो, तो उस प्रश्नपर विचार किया जायगा। अन्यथा सभापति आदेश देगा कि अब सभाका कार्य समाप्त हो गया है, अतः वह विसर्जित की जाती है और इसके बाद सभा विसर्जित हो जायगी।

सम्मति-विभाजन—(Division) सभाओंमें कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं, जब दोनों पक्षोंके मतोंकी संख्यामें अधिक अन्तर नहीं होता। ऐसी अवस्थामें किसी पक्षका कोई आदमी खड़ा होकर सम्मति-विभाजनकी मांग पेश कर सकता है। इसका अर्थ यह होता है कि उसकी दृष्टिसे सम्मति-गणना ठीक-ठीक नहीं हुई, अतः दुबारा होनी चाहिये। यह अवस्था उसी समय आती है, जब जबानी, हाथ उठाकर या खड़े होकर सम्मति-गणना की गयी हो; क्योंकि

अन्य अवस्थाओंमें तो गणनामें कोई शक रह जानेकी सम्भावना ही नहीं रहती। सम्मति-विभाजनकी मांग पेश करनेके लिये किसी समर्थन या अनुमोदनकी आवश्यकता नहीं पड़ती, न इस मांगकी स्वीकृति या अस्वीकृतिके लिये वोट ही लिये जाते हैं। इस मांगके पेश करनेका ठीक प्रसंग उस समय होता है, जब सभापतिने दोनों पक्षोंकी सम्मति-गणना कर ली हो और यह सुना दिया हो कि पक्ष या विपक्षमें कितने-कितने वोट आये; परन्तु यह घोषित न किया हो कि प्रस्ताव पास हो गया या गिर गया। यदि वोटोंकी संख्या सुनानेके बाद उसने प्रस्तावपर अपना निर्णय—अर्थात् उसकी स्वीकृति या अस्वीकृतिकी घोषणा—भी सुना दिया हो तो विभाजनकी मांग पेश नहीं की जा सकती। इसी प्रकार यदि सभापतिने यह न सुनाया हो कि किस पक्षमें कितने वोट आये हैं तो भी विभाजनकी मांग पेश नहीं की जा सकती। मांग पेश हो जानेके बाद सभापति तुरन्त दुबारा मत-गणनाका प्रयत्न करता है। उस अवस्थामें या तो वह उक्त तीन विधियोंके अतिरिक्त बतायी गयी उपस्थित सदस्योंकी सम्मति-गणनाकी अन्य विधियोंके अनुसार गणना करेगा अथवा हाथ उठाकर या खड़ा करके भी सम्मति-गणना कर सकता है। इस दशामें वह पक्ष या विपक्षमें सभासदोंके हाथ उठवाकर या उन्हें खड़ा करके तबतक उसी अवस्थामें (हाथ उठाये या खड़े) रहनेके लिये आदेश देगा, जबतक कि वह उनकी ठीक-ठीक गणना न कर लेगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इस प्रकारकी मत-गणनाके समय पक्ष और विपक्षकी ओरसे उनके अलग-अलग आदमी खड़ा करके भी गिनती करवाई जाती है। इसके बाद जो निष्कर्ष निकलता है, उसकी घोषणा सभापति करता है। इस अधिकारका दुरुपयोग न हो, इसका सभापतिको ध्यान रखना चाहिये।

सदस्य और मत प्रदान—साधारणतः जो सदस्य उपस्थित होते हैं, उन सबको मत प्रदान करनेका अधिकार होता है। परन्तु यदि किसी प्रश्नसे उनका सीधा या प्रकारान्तरसे सम्बन्ध हो तो उस सम्बन्धमें मत देनेका अधिकार उन्हें नहीं होगा। पर इसके यह अर्थ भी नहीं होते कि वह सरासर किसी भी प्रश्नपर अपनी सम्मति न दे। यदि ऐसा हो तो सदस्योंको मार्ग-व्यय आदिके अधिकार देनेके प्रश्न असम्भव ही हो जायं। इसलिये उपरोक्त नियम विवेकके साथ बरता जाता है। परन्तु निर्वाचन आदिमें सदस्य अपने या अपने साथियोंके लिए वोट देनेका अधिकारी होता है। यदि किसी सदस्य पर कोई अपराध लगाया गया हो और वह अपराध सावित हो गया हो तो वह वोट देनेके अपने अधिकारसे वंचित कर दिया जाता है।

इन अवस्थाओंके अतिरिक्त अन्य सब अवस्थाओंमें सदस्य वोट देते हैं। परन्तु यदि कभी कोई सदस्य किसी विषयपर वोट न देना चाहे तो उसे वोट देनेके लिए वाध्य नहीं किया जा सकता।

साधारणतः सदस्य जब वोट दे चुकता है, उसके बाद वह अपना मत बदलता नहीं है, परन्तु यदि वह चाहे तो उस समय तक जबतक कि अन्तिम बार सम्मति गणनाकी घोषणा न की जा चुकी हो, वह सभापतिसे कहकर अपना मत एक पक्षसे दूसरे पक्षमें करा सकता है। परन्तु यदि सभापतिने अन्तिम रूपसे यह घोषित कर दिया हो कि पक्षमें इतने और विपक्षमें इतने वोट आये तो—बशर्ते कि उसने प्रस्तावके स्वीकृत या अस्वीकृत होनेके सम्बन्धमें कोई निर्णय न दिया हो—कोई सदस्य साधारणतः अपना वोट न बदल सकेगा। उस समय वोट बदलनेके लिए उसे सभाकी आज्ञा लेनी पड़ेगी। ऐसी दशामें सभापति सभासे पूछेगा कि अमुक सदस्यको अपना मत बदलने

दिया जाय? किसीको कोई एतराज तो नहीं है। यदि एतराज न हुआ तो बदल दिया जायगा परन्तु यदि एक सदस्यने भी एतराज किया तो बाकायदा प्रस्ताव पेश करना पड़ेगा कि अमुक सदस्यका वोट अमुक पक्षमें न गिनकर अमुक प्रक्षमें गिना जाय। इस प्रस्तावपर वाद-विवाद न होगा और बहुमतके निर्णय के अनुसार इसपर कार्यवाही की जायगी।

निर्णायक मत—जब किसी प्रश्नपर सभाकी सम्मति पक्ष और विपक्ष में बराबर बराबर बँट गयी हो तब यदि सभापति चाहे तो अपना निर्णायक वोट दे सकता है। उस दशामें वह जिस ओर वोट देगा उसी पक्षकी जीत होगी। इस निर्णायक वोटके अतिरिक्त यदि सभापति उस संस्थाका सदस्य भी हो तो विशेष अवस्थाओंमें एक वोट सदस्यकी हैसियतसे भी वह दे सकता है। परन्तु इस प्रकार दो वोट देनेका अधिकार उसी समय सभापतिको मिलता है जब इस बातका उल्लेख सभाके नियमोंमें आ गया हो अन्यथा सभापति केवल एक वोट दे सकता है। इस वोटके सम्बन्धमें भी शिष्टाचार यह है कि सभापति अपना निर्णायक वोट नहीं देता। जब किसी प्रश्नपर पक्ष या विपक्ष की सम्मति बराबर होती है तब सभापति उस प्रश्नको अस्वीकृत घोषित करता है। परन्तु कुछ विशेष अवस्थाओंमें वह प्रश्नको स्वीकृत भी घोषित कर सकता है। विशेषकर सभापतिके निर्णयके विरुद्ध यदि कोई अपील की गयी हो और उसपर यदि बराबर बराबर वोट आये हों, इतना ही नहीं, यदि सभापतिने स्वयं सदस्यकी हैसियतसे अपना वोट देकर दोनों ओरकी सम्मतियां बराबर कर दी हों तो भी वह निर्णय नियमित और उचित समझा जायगा।

निर्णयके रूप—निर्णयके दो प्रधान रूप होते हैं, स्वीकृत और दूसरा अस्वीकृत। अस्वीकृत प्रश्न तो प्रायः बहुमतसे ही अस्वीकृत होते हैं, परन्तु

यदि प्रस्तावपर वाद विवाद होनेके बाद प्रस्तावक और समर्थक भी विपक्षकी बात मान लें और उसी पक्षमें वोट दें तो सर्वसम्मतिसे भी प्रस्ताव अस्वीकृत हो सकते हैं। हालां कि यह अवस्था प्रायः आती नहीं है।परन्तु स्वीकृत प्रस्तावोंमें कुछ उपभेद भी होते हैं, जैसे, सर्वसम्मतिसे स्वीकृत, बहुमतसे स्वीकृत, निर्विरोध स्वीकृत, आदि। सर्वसम्मतिसे स्वीकृत वे प्रस्ताव माने जाते हैं, जिनमें सब उपस्थित सदस्योंने पक्षमें वोट दिये हों, बहुमतसे स्वीकृत प्रस्ताव वे प्रस्ताव माने जाते हैं, जिनमें वोट देनेवाले सदस्योंने दूसरे पक्षकी अपेक्षा अधिक संख्यामें वोट दिये हों, और निर्विरोध स्वीकृत प्रस्ताव उन प्रस्तावोंको कहते हैं जिनमें सब उपस्थित लोगोंने पक्षमें तो वोट न दिया हो परन्तु विरोध भी किसीने न किया हो। बहुमतके फिर दो तिहाई बहुमत तीन चौथाई बहुमत बहुत अधिक बहुमत आदि अन्य रूप भी होते हैं।

सम्मतिका व्यर्थीकरण—जब कोई अनधिकारी व्यक्ति वोट देता है, अथवा अधिकारी व्यक्ति अनुचित ढंगसे वोट देता है, तब तो वे व्यर्थ हो ही जाते हैं, कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं, जब किसी विषयपर दिये गये सर्व-सम्मत वोट तक व्यर्थ कर दिये जाते हैं। ऐसी अवस्था उस समय आती है, जब प्रश्न स्वयं उस सभाके नियमोंके विरुद्ध होता है। ऐसा प्रश्न चाहे जितने बड़े बहुमतसे क्यों न पास किया जाय स्वीकार नहीं किया जा सकता। बहुमत तो सभी प्रस्तावोंकी स्वीकृतिके लिये आवश्यक होता है किन्तु कुछ प्रस्ताव ऐसे होते हैं जिनमें एक निश्चित बहुमतकी आवश्यकता होती है। ऐसे प्रस्ताव तो काफी अधिक हैं, जिनकी स्वीकृतके लिए दो तिहाई बहुमतकी आवश्यकता है। इन प्रस्तावोंकी एकत्र तालिका प्रस्ताव शीर्षक अध्यायमें दी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त अलग-अलग प्रस्तावोंपर विचार करते हुए भी

उनका उल्लेख यथा स्थान किया जा चुका है। अतः उनके दोहरानेकी यहां आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार जिन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें सम्मतियोंकी कुछ विशेष संख्या आवश्यक मानी गयी है, उन प्रस्तावोंकी स्वीकृति उतनी संख्यासे कममें नहीं की जा सकती। यदि उस प्रकार की गयी हो तो वह स्वीकृति अनुचित और अनियमित मानी जायगी।

शान्ति और व्यवस्था

सभाओंमें शान्ति और व्यवस्थाकी रक्षा करनेका दायित्व उसके सभापति पर तो सबसे अधिक होता ही है परन्तु, उसके संयोजकों और उसमें भाग लेनेवाले सभासदोंपर भी कम नहीं होता। यह शिष्टाचारका तकाजा है कि यदि कोई व्यक्ति सभामें भाग लेनेके लिए स्वीकृति दे, उसमें भाग ले तो उसके नियम और व्यवस्थाका पालन भी करे। इसके लिए आवश्यक यह होता है कि सम्बन्धित सभाके नियमोपनियमका पूर्णतया पालन करे और कोई ऐसा काम न करे जिससे सभाके कार्यमें अनुचित रूपसे बाधा उपस्थित हो।

भाषण-संयम—भाषणमें संयम रखनेकी बात वाद-विवादके प्रकरणमें कही जा चुकी है। प्रत्येक वक्ताको अपने भाषणमें उचित और आवश्यक संयमसे काम लेना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी बातके औचित्यके लिए केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि वह बात ईमानदारीके

साथ कही गयी हो। ईमानदारी और नेकनीयतीसे कही गयी बात भी अनुचित और आपत्तिजनक हो सकती है। अतः वक्ताको खूब सावधानीके साथ अपना भाषण देना चाहिए। किसी बातके औचित्यके लिए साधारणतया निम्न-लिखित बातें आवश्यक होती हैं। (१) बात ऐसे प्रमाणोंके आधारपर कही गयी हो जो सत्य हों, (२) बात प्रामाणिक और सत्य हो तथा वक्ता ईमानदारीके साथ हृदयसे उसका उसी रूपमें अनुभव करता या मानता हो (३) वह ऐसी घटनाओंके अनुरूप (relevant) हो जो सत्य हों (४) किसी व्यक्तिके व्यक्तित्व पर बिना पर्याप्त कारणके आपत्तिजनक और अनुचित आक्षेप न किया गया हो (५) द्वेषका भाव बिलकुल न हो, इन बातोंकी ओर यदि वक्तागण सामान्यतः ध्यान रखें तो शान्ति भंगके अवसर बचाये जा सकते हैं।

शिष्टाचारका उल्लंघन—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अशांति का मूल कारण शिष्टाचारका उल्लङ्घन है। यदि प्रत्येक सदस्य शिष्टाचारका पूरा पूरा पालन करे तो शान्ति और व्यवस्थाके भंग होनेका कोई अवसर ही न आवे। शिष्टाचारके उल्लङ्घनमें भी विशेषतया भाषण-सम्बन्धी शिष्टाचारका उल्लङ्घन ही होता है। उसपर सबसे अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है। इस विषयका विवेचन वाद-विवादके प्रकरणमें तथा ऊपर भी किया जा चुका है। वास्तवमें विवेकहीन और असहिष्णु वक्ता ही अशान्तिका कारण बनते हैं। जो शान्त और विवेकशील हैं, वे पहिले तो ऐसी बात कहते ही नहीं जिससे अशान्तिकी आशंका हो दूसरे यदि किसी प्रकार कोई बात निकल भी गई तो उसके प्रति विरोधका प्रदर्शन देखते ही उसे सुधार लेते हैं। परन्तु दुराग्रही और असहिष्णु वक्ता दोहरा नुकसान करते हैं। पहिले तो वे अनर्गल बातें कह डालते हैं, फिर विरोधको देखकर और भी उत्तेजित हो

होते हैं और बादमें जब अधिक कड़ी कार्यवाही करनी पड़ती है तब कहीं शान्त रहते हैं।

यह तो भाषणमें अनजानमें निकल जानेवाली बात हुई। कभी-कभी जान-बूझकर और केवल भाषणसे ही नहीं, अन्य उपायोंसे भी सभाकी शान्ति और व्यवस्था भंग करनेका प्रयत्न किया जाता है। यह दृश्य निर्वाचन सम्बन्धी सभाओंमें अथवा ऐसी सभाओंमें जहां दो प्रतिद्वन्दी दल रहते हैं, अकसर देखनेमें आता है। एक दलके वक्ताने बोलना शुरू किया, दूसरे दलवालोंने शोर मचाना शुरू किया—बैठ जाइए, बैठ जाइए, हम नहीं सुनना चाहते या ऐसी ही अन्य कोई बात। कभी-कभी मुंहसे न चिल्लाकर तालियां पीटकर या पैर रगड़-रगड़कर भी शान्ति-भंग करनेका प्रयत्न किया जाता है, कभी सीटियां बजाई जाती हैं और जब कभी शैतानी बहुत बढ़ जाती है, टीनके कनस्टर, ढोल आदि भी पीटे जाते हैं, ताकि वक्ताका भाषण न सुना जा सके।

इसके अतिरिक्त सभापतिके किसी नियमित आदेशको न मानने; सभापति, सदस्य आदि किसीके प्रति कहे गये अपशब्दोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी सफाई देने, उन्हें वापस लेने या उसके लिए क्षमा-प्रार्थना करनेसे इनकार करने; या किसी प्रकार नियमित कार्यवाहीको होने देनेमें जान-बूझकर आपत्ति-जनक ढंगसे वाधा डालने आदिसे भी शान्ति भंग होती है। जब सम्मति-विभाजनका समय आता है, तब यदि सभापति किसी सदस्यसे वोट देनेको कहे, उस समय उस सदस्यको वोट देना चाहिये। जो सभापतिके आदेशपर भी वोट न दे, वह भी कहीं-कहीं व्यवस्था भंगका अपराधी माना जाता है। परन्तु यह अवस्था उपेक्षणीय है। सभासदोंको वोट देनेके लिए वाध्य न करना ही उचित है। उन्हें यह अधिकार होना चाहिये कि यदि वे न चाहें, तो किसी ओर भी वोट न दें।

संगठित विरोध——कभी-कभी प्रतिद्वन्दी दलका विरोध करनेके लिए दल-विशेष संगठित रूपसे तैयारी करते हैं। ऐसी अवस्थामें वे सभाओंमें अनधिकारी और उत्पाती आदमियोंको ला बिठाते हैं, जो अपने लानेवालेके इशारेपर उत्पात मचाते रहते हैं। कभी-कभी बाहरके आदमी न लाकर स्वयं उस सभाके सदस्योंका ही एक गुट बन जाता है जो इस प्रकार शान्तिभंग करनेका तथा कार्यवाहीको रोकनेका प्रयत्न किया करता है। ऐसे लोग प्रायः दो प्रकार-से काम करते हैं। कभी-कभी वे दो-दो तीन-तीनकी टोलियां बनाकर सभा-भवन के विभिन्न स्थानोंपर बैठकर समय कुसमय हो-हल्ला मचाया करते हैं। जहां एक स्थानकी टोलीने हल्ला मचाना शुरू किया वहीं सब विभिन्न स्थानोंमें बैठी हुई टोलियां हल्ला मचाना शुरू करती हैं, इससे सारी सभामें हल्ला मच जाता है। कभी-कभी अलग-अलग न बैठकर उनकी पूरी मण्डली एक ही स्थानपर बैठती है, सब मिलकर एक साथ हो-हल्ला मचाते हैं। इस प्रकार एक साथ बैठनेकी हालतमें प्रायः लोग पीछे बैठते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि चूंकि वे अनुचित कार्य करनेके इरादेसे आते हैं, उनमें नैतिक साहसकी कमी रहती है, अतः वे यह सोचते हैं कि पीछे बैठकर उत्पात मचानेकी कोशिश करेंगे, यदि उसमें सफल हुए तब तो ठीक ही, अन्यथा वहांसे खिसक आनेमें सहूलियत रहेगी।

उपाय और दण्ड-व्यवस्था—शान्ति और व्यवस्थाका भंग होना निश्चय ही अनिष्ट और अवांछनीय है, फिर भी एक हदतक यदि इस प्रकारकी रुकावटें बीचमें आ जायं, तो उनका स्वागत ही करना चाहिये। क्योंकि जहां उनसे थोड़ी देरके लिए काममें बाधा पड़ती है, वहीं आपसकी बातचीतके कारण जो गरमागरम बहस हो जाती है, उससे सभामें जीवन आ जाता है।

परन्तु यह लाभ होता है एक निश्चित सीमातक ही। इसलिए इसकी मात्राको बढ़ता हुआ देखकर तुरन्त इसके रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये। शान्ति-भंगका दायित्व, जैसा कि ऊपरके विवरणसे स्पष्ट है, सदस्योंपर ही सबसे अधिक होता है, अतः उसकी रक्षाके उपायके लिए भी उन्हें अधिक सचेष्ट रहना चाहिये। सभापति और संयोजक तो उसके लिए चेष्टा करेंगे ही; परन्तु उस चेष्टामें सदस्योंका यथेष्ट सहयोग होना आवश्यक है। वास्तवमें सदस्योंके सहयोगके बिना कोई चेष्टा सफल नहीं हो सकती। अतः सदस्योंको शान्ति रक्षाकी चेष्टामें सभापतिका साथ देना चाहिये।

ऊपर जान-बूझकर संगठित रूपसे विरोध करनेकी जो बात कही गयी है, उसका आभास पहिलेहीसे मिल जाता है। अतः संयोजकोंको चाहिये कि सभाका कार्य आरम्भ होनेके पहिले ही वे विरोधी दलवालोंसे मिलकर उन्हें समझा बुझाकर शान्ति स्थापित करनेकी चेष्टा करें। जब वे समझाने बुझानेसे न मानें, तब अन्य उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये। सबसे पहले तो यह प्रयत्न करना चाहिये कि विरोध करनेवालोंको ढूंढ़-ढूंढ़कर सबसे आगे बिठाया जाय। उस दशामें सामने रहनेके कारण उनमें कुछ संकोच होगा और वे अनुचित रूपसे विरोधका प्रदर्शन अधिक मात्रामें न कर सकेंगे। परन्तु यदि वे सामने न बैठें, छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें अलग-अलग बैठें, तो उनकी प्रत्येक टोलीके पास शान्तिके समर्थक अपने आदमीको बैठा देना चाहिये, जो उनके हो-हल्ला मचाते ही उन्हें शान्त करनेका प्रयत्न करें, तथा उन उत्पातियोंके अतिरिक्त सभाके अन्य सदस्योंको उनका साथ देनेसे रोकें। यदि सब-के-सब पीछे ही बैठे हों, तो उनके आगे पीछे अपने आदमी बैठा देना चाहिये, ताकि वे शान्ति-भंगके समय परिस्थिति संभालनेका प्रयत्न करें। परन्तु यदि वे

उत्पाती इसपर भी न माने, तो उनपर निन्दाका प्रस्ताव लाना चाहिये, उनका नाम सदस्योंकी श्रेणीसे काट देना चाहिये, या सभा-भवनसे चले जानेके लिए बाध्य करना चाहिये। इस प्रकार यदि एकाध व्यक्तिपर कड़ी कार्यवाही की गयी, तो सम्भव है अन्य सदस्य शान्त हो जायं। बाहरसे आये हुए ऐसे व्यक्तियोंको जो सभामें भाग लेनेके अधिकारी नहीं हैं, आसानीसे निकाला जा सकता है। ऐसी अवस्थामें शिष्टाचार तो यह है कि यदि अनधिकारी व्यक्तिकी उपस्थितिमें कोई एतराज न करे, तब तो वे बैठे रहें, परन्तु जब एतराज हो तो वे तुरन्त उठकर अपने आप चले जायं। परन्तु यदि वे स्वयं उठकर न जायं, तो सभापति उन्हें अपने आदेशसे निकलवा सकता है।

ऐसे अवसरोंपर सभापतिको बड़ी सतर्कतासे काम लेनेकी आवश्यकता पड़ती है। पहले तो उसे चाहिये कि वह छोटे-मोटे विरोधियोंकी उपेक्षा करे। पर यदि वे बढ़ते ही जायं तो सहूलियतके साथ शान्तिपूर्वक समझानेकी कोशिश करनी चाहिये, उस अवस्थामें न विरोधियोंकी शिकायत करनी चाहिये, न उनपर कोई कड़ी कार्यवाही करनेकी ही चर्चा करनी चाहिये। प्रायः जब सहानुभूति और प्रेमसे काम लिया जाता है, तब शान्ति स्थापित हो जाती है। उसे ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे यह मालूम ही न पड़े कि विरोधोकी बातोंसे उसे कोई चोट पहुँची है, या उसे अपमानका अनुभव हुआ है। यदि सभापति इस प्रकार व्यवहार-कुशलतासे काम ले, तो बहुत सम्भव है कि सारा झगड़ा शान्त हो जाय, क्योंकि जनता विचारोंकी अपेक्षा भावोंसे अधिक प्रभावित होती है। उसके रुखमें क्रोधका भाव तो आने ही न पावे, उसे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

परन्तु यदि इस प्रकार शान्त व्यवहारसे काम न चले और उत्पाती सदस्य दुराग्रह करे तो सभापतिको सख्तीसे काम लेना चाहिये। उस समय यदि वह

चाहे तो सदस्यको कुछ समयके लिए बोलने या सभामें और कोई भाग लेनेसे रोक सकता है, सदस्योंसे उसका नाम खारिज कर सकता है, या उसे सभासे निकाल सकता है।

सभासे निकाला जाना—किसी सदस्यको सभासे निकाल देना उसके लिए बहुत बड़ी सजा है। अतः इस दण्ड-व्यवस्थाका जितना कम हो सके, उतना कम प्रयोग करना चाहिये। फिर भी आवश्यकता आ पड़नेपर इसका प्रयोग करना ही चाहिये। सभा-भवनसे निकल जानेसे कोई सदस्य इस आधार पर एतराज नहीं कर सकता कि उसने प्रवेश शुल्क दिया है। प्रवेश शुल्क देनेपर भी यदि वह नियमकी पाबन्दी न करे तो कानूनन हटाया जा सकता है। क्योंकि उस दशामें वह शान्ति-भंगका अपराधी हो जाता है। प्रवेश शुल्क शांति-भंग करनेका अधिकार-पत्र नहीं दे देता। यदि कोई सदस्य सभापतिकी आज्ञाके बाद भी सभासे निकलनेसे इनकार करे, तो सभापति या संयोजक पुलिसकी सहायतासे उसे बाहर हटा सकते हैं, और उसपर मामला चला सकते हैं। कभी-कभी इस प्रकारकी आवश्यकतापर काम लेनेके लिए पहले हीसे पुलिसका प्रबन्ध भी कर लिया जाता है। जब सभा खुले मैदानोंमें होती है, तब तो पुलिसको शान्ति-भंग करनेवाले सदस्यको गिरफ्तार करनेमें और भी सुविधा होती है, क्योंकि उस दशामें किसी व्यक्ति विशेष या समुदाय विशेषकी नहीं वरन् सार्वजनिक शान्ति-भंगका अपराध उसपर लगता है। जहांपर पुलिसकी सहायता मिल सकती या ली जा सकती है, वहां तो यह उपाय ठीक ही है। परन्तु अनेक अवसरोंपर और अपने यहां तो प्रायः सदा ही पुलिसकी सहायता उपलब्ध नहीं होती या ली नहीं जाती। ऐसी दशामें यदि सभासद दुराग्रहपूर्वक शान्ति-भंग करते ही जा रहे हों और सभापतिके

आदेश देनेपर भी सभासे बाहर न जा रहे हों तो सभापतिको सभा भंग करके चला जाना ही एक उपाय रह जाता है।

सभासे सदस्योंका नाम काट देनेका कार्य सार्वजनिक सभाओंमें तो आसानीसे हो जाता है, क्योंकि उनके कोई लिखित या व्यवस्थित सदस्य नहीं होते, सभासे निकाल देना ही उनका नाम कट जाना होता है। परन्तु संगठित सभाओं या क्लबों आदिसे किसी सदस्यका नाम ऐसे ही नहीं निकाला जा सकता। इन सभाओंमें यदि किसी सदस्यके व्यवहारसे असन्तोष होता है, और उसका नाम सभासे निकाल देनेका विचार होता है, तो पहले इसके लिए सभा की मीटिंगकी सूचना नियमित रूपसे विचारणीय विषयोंकी सूचीमें इस विषयके स्पष्ट उल्लेखके साथ निकालनी पड़ती है। इसके बाद उस सदस्यपर जो अभियोग लगाये गये हैं, वे सभाके सामने पेश किये जाते हैं और उनपर सभा पूरी तरह जांच-पड़ताल करती है। यदि उसे आवश्यक समझ पड़े तो वह इस कामके लिये एक विशेष समिति भी बना देतीहै, जो वही काम करती है, जो सभा—उस दशामें जब वह स्वयं निर्णय करती है—स्वयं करती है। सभा या समितिके सामने जब मामला उपस्थित किया जाता है, तब अभियुक्तको अपनी सफाई पेश करनेका अवसर आता है। उसके बाद सभा या समिति जब निकाल देनेका निर्णय दे, तब वह निम्नलिखित आधारपर उस निर्णयका विरोध कर सकता है:—(१) यह कि निकाल देना नियमोंके विरुद्ध है। (२) यह कि वह नियमोंके अनुसार नहीं है और सभाके हितकी दृष्टिसे ठीक नहीं है। (३) जो कार्यवाही की गयी है, उसमें अभियुक्तको सफाईका उचित अवसर नहीं दिया गया। (४) जो सदस्य उपस्थित होनेके अधिकारी थे, उन्हें सूचना नहीं दी गयी। (५) सभाकी योजना, संगठन और कार्यवाही अनियमित थी।

(६) जो कार्यवाही हुई वह राज्यके कानूनके खिलाफ थी। (७) निकालनेका दण्ड ईमानदारीसे, सद्भावनासे नहीं दिया गया। इस प्रकार उसके एतराज करनेपर सभा या समितिको अपने निर्णयपर फिर विचार करना होगा। उस अवसरपर फिर सभासद उपस्थित हो सकेगा और अपनी बात कहकर उसे सभा-भवन से चला जाना होगा। पहिले विचारके समय भी वह इसी प्रकार अपनी बात कहकर चला जायगा। उसके चले जानेके बाद उपस्थित सदस्यगण उसपर विचार करेंगे। इस अवसरपर यदि सभासद चाहे तो अपना कोई वकील भी ला सकता है। परन्तु यदि वकील अनियमित कार्यवाही करे, तो वह निकाला जा सकेगा। सब बातें सुनकर और सम्यक रूपसे जांच-पड़ताल करके सदस्यके निकाले जानेके सम्बन्धमें सभापति उपस्थित सदस्योंकी सम्मति लेगा। यह सम्मति पत्रद्वारा होगी ताकि वह स्पष्ट भी हो और गुप्त भी। उसके बाद बहुमतके निर्णयके अनुसार वह अपना निर्णय देगा। यह निर्णय सभासदको सुनाया जायगा और उसके बाद सभासदको उसी निर्णयके अनुसार काम करना पड़ेगा।

पदाधिकारी और सभासद

किसी सभाको नियमित रूपसे संचालित करनेके लिए पदाधिकारी और सदस्य—दोनोंकी आवश्यकता होती है। इनकी संख्या सभाके संगठनके अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। किसी सभामें अधिक सदस्य और अधिक पदाधिकारी होते हैं, किसीमें कम। सार्वजनिक तात्कालिक सभाओंमें सदस्योंकी संख्या तो अधिक होती है—प्रायः सभी उपस्थित जन सदस्यही-से होते हैं, परन्तु पदाधिकारियोंकी संख्या कम होती है, इनमें केवल सभापति और अधिकसे अधिक एक मन्त्री या संयोजक होता है। इसके विपरीत संगठित सभाओंमें पदाधिकारियोंकी संख्या काफी अधिक होती है। अधिकांशमें निम्नलिखित पदाधिकारी संगठित सभाओंमें होते हैं।

(१) *सभापति*—यह सभाका सबसे प्रधान पदाधिकारी है। इसके बिना कोई सभा हो ही नहीं सकती। संगठित सभाओंमें सभाकी बैठकोंके

नियंत्रणके अतिरिक्त सभाके अन्य कार्योंकी देख-रेख भी इसके द्वारा होती है। इसको सभापति, अध्यक्ष, प्रधान आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। प्रत्येक सभा अपने सभापतिके लिए अपना नाम अलग-अलग निर्धारित कर सकती है। अब तो प्रेसीडेण्ट और चेयरमैन आदि अंग्रेजी नाम भी प्रचलित हो गये हैं और कई सभाएँ इन नामोंसे भी अपने सभापतियोंको पुकारती हैं। परन्तु फिर भी अधिक प्रचलित नाम सभापति ही है। जहां सभाने कोई नाम निर्धारित न किया हो, वहां यही नाम व्यवहारमें आता है।

वैयक्तिक योग्यता--सभापतिका प्रधान कार्य सभाओंका नियंत्रण है। अतः उसे अन्य गुणोंकी अपेक्षा ऐसे गुणोंकी अधिक आवश्यकता होती है, जिनसे सभाके संचालनमें सुविधा हो। इस दृष्टिसे एक सभापतिमें सभा-विधान सम्बन्धी ज्ञान, तीव्र विवेक बुद्धि, शीघ्र निश्चय कर सकनेकी शक्ति, आत्म-विश्वास, अपने विषयकी अच्छी जानकारी, निष्पक्षता, अक्रोध, लोगोंको प्रसन्न रखनेकी युक्ति, सुलझा हुआ दिमाग, निश्चयकी दृढ़ता आदि गुणोंकी आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त यदि उसकी आवाज भी साफ और बुलन्द हुई, और डीलडौलसे भी गम्भीर मालूम पड़ता हो, तथा समाजमें उसका प्रभाव भी हो, तो और भी अच्छा। परन्तु यदि सभापतिमें इन बातोंका अभाव हो, वह सदस्योंके प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार न करता हो, कर्तव्य-परायण न हो, अनर्गल व्यवहार करता हो, या सहजमें उत्तेजित हो जानेवाला हो, तो वह सभापति सभाको सफलतापूर्वक संचालित नहीं कर सकता। अतः यह आवश्यक है कि सभापतिका निर्वाचन करते समय इन गुणोंकी ओर ध्यान रहे, और जिसमें इनमेंसे अधिक गुण मिलें, उसीको सभापति बनाया जाय। अपने यहां सभापतिके निर्वाचनमें विशेषतः सामाजिक प्रभाव ही

देखा जाता है, अथवा आर्थिक अवस्था देखी जाती है। इनकी उपेक्षा करनेकी तो आवश्यकता नहीं है, परन्तु साथ ही अन्य बातोंकी ओर भी ध्यान जाना आवश्यक है।

कर्तव्य——सभापतिके कर्तव्य अनेक हैं। सभाके आरम्भमें आसन ग्रहण कर सभासदोंको सावधान करके कार्यवाहीकी सूचना देना, वक्तृताधिकार देना, प्रस्तावोंको विचारार्थ और सम्मति-गणनाका परिणाम घोषित करना, व्यर्थके प्रस्ताव पेश करनेकी आज्ञा न देकर सभाको व्यर्थकी परेशानीसे बचाना, कार्यवाही शान्ति और सुविधाके साथ हो सके इसका प्रयत्न करना, सदस्योंपर नियंत्रण रखना, व्यवस्था और शिष्टाचारके पालनके लिये सभासदोंपर जोर डालना, जिन प्रश्नोंके सम्बन्धमें उसे निश्चय हो, उनके सम्बन्धमें स्वयं निर्णय देना, जिनके सम्बन्धमें निश्चय न हो, उन्हें सभाके सामने निश्चयके लिए पेश करना, अनुशासनका प्रश्न (Point of order) छिड़ गया हो, तो उसपर अपना निर्णय देना, कार्य-विवरण, आदेशों, कानूनों, प्रस्तावों और हिसाब किताब आदिपर अपने हस्ताक्षर करके उसे प्रामाणिक बना देना आदि अनेक कर्तव्य सभापतिके हैं। इसके अतिरिक्त उसे यह देखना चाहिये कि सभाका संगठन ठीक-ठीक हुआ है या नहीं, अर्थात् कोरम पूरा है या नहीं, सभापतिका निर्वाचन ठीक ढंगसे हुआ है या नहीं, सभाकी सूचना विधिवत् दी गयी या नहीं; नियमोंका पालन ठीक ढंगसे हो रहा है कि नहीं, कार्यक्रमके अनुसार ठीक-ठीक कार्य हो रहा है कि नहीं, जो लोग बोलना चाहते हैं, उन्हें उचित समय मिलता जाता है या नहीं आदि। किसी प्रश्नके विचारार्थ उपस्थित न होनेपर सभामें किसी प्रकारका वादविवाद नहीं हो सकता। अतः यदि इस प्रकारका वादविवाद हो रहा है, तो सभापतिको उसे रोक देना चाहिये। साथ

ही प्रश्नके उपस्थित होनेपर भी यदि वादविवादमें नियमका पालन न हो रहा हो, तो उसे भी रोक देना चाहिये।

अपने अधिकारोंके गर्वमें आकर सभापतिको किसीके प्रति रूखा व्यवहार न करना चाहिये। किसीसे कोई गल्ती हो जाय, तो शान्तिपूर्वक उसे गल्ती बताकर उसको सुधार देना चाहिये, यदि कोई सदस्य गलत ढंगसे प्रस्ताव पेश करे, तो सभापतिको चाहिये कि वह उसे बता दे कि प्रस्तावका रूप यह होना चाहिये। यदि सभापति स्वयं किसी विषयपर अधिक जानता हो, तो किसी सदस्यके, जो विषयका अच्छा ज्ञाता न हो, बोलते समय उसे बीच-बीचमें टोक कर बाधा न डालनी चाहिये, किसीके प्रति अन्याय न करना चाहिये। अपने सभा-विधान-ज्ञानकी शेखी भी बहुत न बघारनी चाहिये। और न उस विधानके पालनमें रुखाईका वर्ताव ही करना चाहिये। आवश्यकतानुसार ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे नियमोंका उल्लंघन भी न हो और सदस्योंके प्रति सख्ती का व्यवहार भी न होने पावे। नियम पालनके सम्बन्धमें बड़ी सभाओंमें थोड़ी सख्ती करनी पड़ती है और उसका करना आवश्यक भी होता है, क्योंकि ऐसा न करनेसे सभासदोंके समय और शक्तिका व्यर्थ नाश होता है। जब अपने विषयमें कुछ कहना हो तो प्रथम पुरुष एक वचन 'मैं', 'मेरे' आदि सर्वनामोंका प्रयोग न करना चाहिये। कभी-कभी सभापतिके जिम्मे किसी विभाग-विशेषका कार्य-भार भी दे दिया जाता है। ऐसे विभागोंका उल्लेख सभाके नियमोंमें होता है। उस दशामें सभापतिको उन विभागोंके कार्योंका निरीक्षण तथा सम्पादन भी करना चाहिये।

अधिकार—सभाकी शान्ति और व्यवस्थाके लिये तथा सुविधापूर्वक उसकी कार्यवाहीके सञ्चालनके लिये जिन बातोंकी आवश्यकता पड़े, साधारणतः

उन सब बातोंको करनेका अधिकार सभापतिको होता है। इस विचारसे यद्यपि उसके सब अधिकारोंका वर्णन एकत्र होना एक प्रकारसे असम्भव-सा ही है, तथापि कुछ विशेष बातोंकी ओर यहां निर्देश किया जाता है। वादविवादके समय यदि वक्ता ठीक ढंगसे विषयके अनुरूप भाषण देता चला जायगा, तब तो सभापति बीचमें बाधा न दे सकेगा; परन्तु यदि वह विषयान्तरपर भाषण देने लगे अथवा शिष्टाचारका उल्लङ्घन करे तो सभापति उसे बोलनेसे रोक सकता है; किसी सभासदको दुबारा बोलनेके लिये तो नहीं, परन्तु किसी विशेष विषयके स्पष्टीकरणके लिये वह सभासदको एक बार बोल चुकनेके बाद भी मौका दे सकता है। वैसे तो वैधानिक ढंगसे ही सभाका सञ्चालन करना चाहिये, परन्तु यदि सुविधा होती हो तो सभापति सभासदोंकी विशेष सम्मति (General consent) से भी कार्य कर सकता है। यह याद रखना चाहिये कि कानून सुविधाके लिये है या न कि असुविधाके लिये। अतः यदि साधारण सम्मतिसे सुविधा हो तो उसीसे काम चला लेना चाहिये। परन्तु यदि इस पद्धतिसे कार्य करनेमें किसी सदस्यको एतराज हो तो सभापतिको वैधानिक ढंगसे कार्य करनेके लिये बाध्य होना पड़ेगा। यदि कोई सदस्य उसके लिये नये निर्णयके सम्बन्धमें अपील करे तो उस अपीलपर उसे विचार करना चाहिये, परन्तु यदि वह केवल बाधा डालनेके लिये की जाय, तो उसपर विचार करनेसे सभापति इन्कार कर सकता है। यदि कोई सदस्य अपने आचरणसे सभाके काममें बाधा डालता हो तो सभापति उसे सभा भवनसे निकाल सकता है, या अन्य प्रकारसे दण्ड दे सकता है। सभापति किसी विषयपर अपना निर्णायक वोट दे सकता है। उसे यदि वह सदस्य हो तो, सदस्यके नाते वोट देनेका अधिकार होता है। परन्तु इन

दोमेंसे साधारण अवस्थामें एक ही वोट सभापति दे सकता है। परन्तु यदि नियमोंमें विशेष रूपसे उल्लेख किया गया हो तो दोनों वोट देनेका अधिकार सभापतिको होता है। परन्तु सदस्य वोट उसे सम्मति गणनाके पहिले ही दे देना चाहिये। निर्णायक वोट वह बादमें दे सकता है। यदि सभापतिके सदस्यकी हैसियतसे दिये गये वोटसे प्रस्तुत प्रस्तावका परिणाम उलटा हो जानेकी संभावना है। जैसे यदि कोई प्रस्ताव दो तिहाई वोटोंसे स्वीकार किया जाने वाला है और सभापतिके वोट देनेसे ठीक दो तिहाई वोट हो जाते हों, तो उसे देकर वह चाहे तो उस प्रस्तावको स्वीकृत करा सकता है। इसी प्रकार यदि किसी प्रस्तावपर अन्य मतकी ओर वोट देनेसे दोनों पक्ष बराबर हो जाते हों तो इस प्रकार बराबर मत कराकर वह इस प्रस्तावको गिरा सकता है। इन दोनों अवस्थाओंमें उसके वोटसे फलाफल बदल जाता है।

यदि सभापतिके ऊपर निन्दा या प्रशंसाका प्रस्ताव आवे अथवा यदि किसी अन्य सदस्य या सदस्योंके साथ उसपर निन्दा या प्रशंसाका प्रस्ताव आवे तो सभापति उस प्रस्तावको सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित नहीं कर सकता। ऐसी अवस्थामें यदि उप सभापति उपस्थित हो तो वह, अन्यथा मंत्री या स्वयं प्रस्तावक उस प्रस्तावको सभाके सामने उपस्थित करता है, और उसपर निर्णयकी घोषणा करता है। परन्तु यदि किसी समितिमें अथवा किसी प्रतिनिधि मण्डलमें उसका नाम रखा जाता हो, अकेले या अन्य सदस्योंके साथ तो वह स्वयं ऐसे प्रस्तावको सभाके सामने विचारार्थ उपस्थित कर सकता है।

कभी कभी सभापति सभामें उपस्थित विषयोंमें वाद-विवाद करनेके लिये अपना आसन छोड़ देता है। यह प्रथा ठीक नहीं है। वास्तवमें सभापति

को वाद-विवादमें भाग नहीं लेना चाहिये। इससे उसकी निष्पक्षतापर शंका हो सकती है और आगे चलकर इसीके कारण उसपरसे सभासदोंका विश्वास कम हो सकता है। इसीलिये सरकारी व्यवस्थापिका सभाओं आदिमें सभापतिको वादविवादमें भाग न लेनेका नियम ही बना दिया गया है। आसन छोड़नेकी बात तो अलग रही, उसे अपने आसनपरसे भी किसी विषय के स्पष्टीकरण आदि प्रसंगोंपर भी बहुत सावधानीसे अपनी बातें कहनी चाहिए, जिससे किसी पक्ष विशेषका पक्षपात न साबित हो, फिर भी यदि किसी कारण वश वह भाग लेना ही चाहे तो उसे सभापतिका आसन छोड़कर किसी उपस्थित उपसभापतिको या अन्य सदस्यको देना होगा। साधारण नियम यह है कि यदि किसी कारणवश सभापतिको अपना आसन छोड़नेकी आवश्यकता पड़ जाय, तो यदि वहां पर उपसभापति उपस्थित हों तो क्रमा-नुसार पहिले प्रथम उपसभापति उसकी अनुपस्थितिमें द्वितीय और तृतीय आदि उप-सभापतियोंको वह अपना आसन देगा। परन्तु यदि उप-सभापतियों-मेंसे कोई भी उपस्थित न हो तो सदस्योंमेंसे किसीको आसन देकर वह चला जायगा। यही नियम उस समय भी प्रयोगमें आता है, जब सभापति अनु-पस्थित हों, अथवा उसकी मृत्यु हो गयी हो और बाकीके समयके लिए सभा कोई नया सभापति निर्वाचित न करना चाहती हो। आसन छोड़नेके समय सभापति किसी सदस्यको अपना आसन दे सकता है। परन्तु यदि किसी भविष्यत सभाके लिये, जिसमें वह स्वयं उपस्थित न होना चाहता हो, पहिले हीसे वह किसी सदस्यको सभापतिके पदके लिए नियुक्त करना चाहे तो न कर सकेगा। जब सभापति अनुपस्थित हो, तब उपस्थित होनेकी हालतसे उप-सभापति सभापतिका आसन ग्रहण करेंगे, परन्तु यदि वे उपस्थित न हो तो

उपस्थित सदस्योंमेंसे सभापतिका निर्वाचन करके कार्य आरम्भ किया जायगा। इस प्रकारके निर्वाचनके बाद यदि सभापति आ जाय, तो यद्यपि वर्तमान नियम यही है कि तात्कालिक सभापति आसन छोड़ दें, तथापि यह अधिक उचित मालूम होता है कि सभाका कार्य उस नये निर्वाचित सभापतिकी अध्यक्षतामें ही होता रहे।

धन्यवाद, प्रशंसा, शोक अथवा अन्य ऐसे प्रस्ताव, जिनके सम्बन्धमें सभा का एकमत है, और जिनके सम्बन्धमें सदस्यगण भाषण देना नहीं चाहते, सभापति अपनी ओरसे पेश कर सकता है। इन प्रस्तावों पर वादविवाद नहीं होता और प्रायः ये सर्वसम्मतिसे अविरोध स्वीकृत होते हैं। सभापति बिना सभाकी सम्मतिके किसी वादविवादको नहीं रोक सकता बशर्ते कि वह नियमानुसार हो रहा हो अथवा सभा उसे सुनना चाहती हो। इसी प्रकार वह किसी कामको जल्दी जल्दी करके समाप्त भी नहीं कर सकता। परन्तु यदि कोई कार्य अनियमित हो रहा हो तो उसे वह रोक सकता है और कोई आपत्तिका समय आये, जैसे आग आदि लग जाय, दंगा होने लगे, या सदस्य-गण इतना उत्पात मचाने लगें कि सभाकी कार्यवाही करना असम्भव हो जाय तो सभाकी सम्मतिकी प्रतीक्षा किये बिना सभा भंग कर सकता है।

भाषण आदि देनेमें बड़ी सभाओंमें तो सभापतिको विशेषरूपसे खड़े होनेकी आवश्यकता होती है। छोटी सभाओंमें भी खड़े होनेका नियम अच्छा होता है। सभापति सामान्यतः दो भाषण देता है। पहिले कार्य-वाहीके आरम्भमें (यही उसका प्रधान भाषण होता है) और दूसरा कार्य-वाहीकी समाप्ति पर। परन्तु वादविवाद सभाओं (Debating societies) में यह नियम उलट जाता है। उन सभाओंमें सभापति प्रायः एक ही

भाषण देता है और वह भी कार्यवाहीकी समाप्ति पर। इसका कारण यह है कि वादविवादके विषय पर सभापतिको अपने विचार छिपा रखने पड़ते हैं। दोनों पक्षोंकी बातें कहकर और उन भाषणोंके आधारपर उपस्थित जनताका मता-मत जान लेने तथा घोषित कर देनेके बाद सभापतिको अपना भाषण देना चाहिए। पहिले ही भाषण दे देने और अपने विचार व्यक्त कर देनेसे उपस्थित जनता पर सभापतिके विचारोंका प्रभाव पड़ सकता है और इससे पक्ष या विपक्षमें बोलनेवाले व्यक्तियोंमेंसे किसी न किसीका पक्ष कमजोर हो सकता है। इसीलिये सभापतिका बादमें बोलना उचित माना गया है। सभापति प्रायः एक ही चुना जाता है। परन्तु किसी-किसी संस्थामें उसके नियमोंके अनुसार दो सभापति भी होते हैं। जिनमेंसे एकको साधारण सभापति और दूसरेको कार्यकारी सभापति (Acting President) कहते हैं।

(२) *उपसभापति*—उपसभापतिको सभापतिका समकक्ष ही समझना चाहिए। इसे सभापतिकी अनुपस्थितिमें उसके सब कर्तव्योंका पालन करना और सब अधिकारोंका उपभोग करना होता है। इसलिये जो गुण सभापतिके लिये आवश्यक होते हैं वे ही उपसभापतिके लिए। अतः उपसभापति निर्वाचित करते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इस पदके लिये ऐसा व्यक्ति निर्वाचित किया जाय जो आवश्यकता पड़नेपर सफलता-पूर्वक सभापतिके कार्योंका सम्पादन कर सके। उपसभापतियोंकी संख्या आवश्यकताके अनुसार एक भी हो सकती है और अनेक भी। प्रायः उप-सभापति एकसे अधिक ही होते हैं।

(३) *मंत्री*—यद्यपि पदके विचारसे सभापतिका दरजा सबसे ऊंचा है तथापि कार्यकी गुरुता और महत्ताके विचारसे मंत्रीका पद सबसे ऊंचा कहा जायगा। सभाका प्रायः सबका सब काम मंत्रीके द्वारा होता है। सभा की सूचनासे लेकर उसकी समाप्ति और उसके बाद तकका काम मंत्रीको देखना पड़ता है। सभापति तो एक प्रकारसे व्यवस्थापक है और मंत्री प्रबन्धक। इसलिये मंत्रीके निर्वाचनमें बड़ी सावधानीकी जरूरत होती है।

योग्यता—मन्त्रीको यह जाननेकी आवश्यकता है कि उसकी संस्था या सभा किस प्रकार काम करती आयी है, उसके उद्देश्य क्या हैं, उसके नियम क्या हैं, उसने क्या-क्या काम किये हैं आदि। इनकी जानकारीसे वह भविष्यमें अच्छा काम कर सकेगा। इन बातोंकी जानकारीके अतिरिक्त उसमें बातोंको शीघ्रतासे संक्षेपमें लिखनेकी शक्ति होनी चाहिये तथा उसे व्यवहार-कुशल होना चाहिये। इसके साथ-साथ यदि वह विद्वान और प्रभावशाली व्यक्ति हो तो बहुत ही अच्छा।

कर्तव्य—मन्त्रीको सभाके पहिले सभाकी बैठकके लिये नियमानुसार सब सदस्योंके पास सूचना भेजनी पड़ती है, उसे सब बैठकोंमें उपस्थित होना पड़ता है। सभामें जिन-जिन विषयोंपर जिस क्रमसे विचार करना होता है, उसके अनुसार विस्तृत कार्यक्रम तैयार करना पड़ता है, जो सभापतिके सम्मुख कार्यारम्भके साथ ही रखा जाता है। कार्यवाही आरम्भ होनेपर उसे सभाकी सूचना और तत्पश्चात् गत बैठककी कार्यवाहीका विवरण पढ़कर सुनाना पड़ता है, यदि उसमें संशोधन किये जायं तो उन संशोधनोंको यथास्थान लिखना पड़ता है। फिर उस सभामें जो प्रस्ताव, संशोधन आदि उपस्थित होते हैं, उनको लिपिबद्ध करना पड़ता है। इस प्रकार सभाकी प्रायः सब कार्यवाही

लिखनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त उसे सदस्योंकी नामावलीका रजिस्टर, नियमोपनियम तथा उद्देश्योंका रजिस्टर, स्थायी समितियोंके रजिस्टर, अन्य कार्योंके विवरणका रजिस्टर आदि लिखने पड़ते हैं। मन्त्री ही आय-व्ययका लेखा भी रखता है। जब इन रजिस्टरोंके सम्बन्धमें सभा द्वारा कोई परिवर्तन किया जाता है, तब मन्त्री सभाके कार्यविवरणमें तो उन संशोधनों और परिवर्तनोंका उल्लेख करता ही है, साथ ही इन रजिस्टरोंमें भी यथास्थान परिवर्तन कर देता है। सदस्योंका नाम काटना, नियमोंमें परिवर्तन करना आदि सब काम मन्त्रीको करने पड़ते हैं। इस प्रकारके संशोधन प्रायः लाल स्याहीसे करने चाहिये और जहांपर संशोधन किया जाय, उस स्थानपर उस सभाका तथा कार्यविवरण-रजिस्टरके पन्नेका हवाला दे देना चाहिये, जिसमें परिवर्तन करना स्वीकार किया गया हो। संस्थाके द्वारा जो पत्र-व्यवहार होता है, उसका सम्पादन और निरीक्षण करना भी मन्त्रीका कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त संस्थाके छोटे-मोटे कर्मचारियोंको रखना, निकालना, कार्यालयकी व्यवस्था करना, चन्दा एकत्र करना आदि अन्य कार्योंमें भी मन्त्रीका ही प्रधान हाथ रहता है। अपनी सभाके मन्तव्योंका प्रचार करना मन्त्रीका प्रथम कर्तव्य है। जब किसी सभामें प्रतिनिधियों अथवा समितियोंका निर्वाचन हो तो निर्वाचित सदस्योंको उनके निर्वाचनका संवाद देना तथा जो काम उन्हें सौंपा गया है, उसके सम्बन्धके कागजात देना या अन्य जानकारीकी बातें बताना भी मन्त्रीका ही कर्तव्य है। सारांश यह कि सभाके कामका जहांतक सम्बन्ध है, प्रायः सबका सब काम मन्त्री स्वयं करता है या किसीसे करवाता है। विशेष अवस्थाओंको छोड़कर जब किसी विशेष कार्यका भार किसी अन्य मन्त्री या पदाधिकारीको दे दिया गया हो, तब अन्य सब अवसरोंपर कार्योंका उत्तरदायित्व मन्त्री ही पर रहता

है; चाहे वह स्वयं करे, चाहे कर्मचारियों या सदस्योंसे या अन्य व्यक्तियोंसे करवाये।

अधिकार—मंत्रीके कर्तव्योंकी अपेक्षा अधिकारोंकी मात्रा थोड़ी है। ऊपर कर्मचारियों और कार्यालयकी व्यवस्था आदिमें उसके अधिकारकी संक्षिप्त बात कही जा चुकी है। परन्तु उसमें भी उसे पूर्ण अधिकार नहीं। किसी बड़े परिवर्तनके लिए उसे सभापति या सभाकी सम्मति लेनी ही पड़ती है। सभाओं-में भी उसे बोलनेके बहुत कम अवसर मिलते हैं। जब नियम, उद्देश्य या सभाके कार्योंके सम्बन्धमें कोई प्रश्न उपस्थित होता है, तभी उसे बोलनेका मौका मिलता है, वह भी सभापतिकी आज्ञा प्राप्त करके—चाहे सभापति स्वयं आज्ञा दे, चाहे वह प्रार्थना करके आज्ञा प्राप्त करे। फिर भी सभाका प्रधान सूत्रधार मन्त्री ही होता है। वह जिस रूपमें सभाका संचालन करना चाहे (हो वह नियमानुकूल ही) कर सकता है। सभाके कागजोंपर सभापतिके साथ-साथ उसके भी हस्ताक्षरोंकी आवश्यकता पड़ती है। विशेष कर आदेशों और आज्ञाओंके सम्बन्धमें जो पत्र भेजे जाते हैं, उनमें तो दोनोंके हस्ताक्षर अवश्य होते हैं। मन्त्री थोड़ी देरके लिए सभापति भी बन सकता है। जब केवल की कार्यवाही आरम्भ करनेके समय सभापतिका निर्वाचन करना हो, तब है। के सभापतिके निर्वाचनके लिए वह सभापति बन सकता है और बनता भी है। इसके बाद जब सभापतिका निर्वाचन समाप्त हो जाता है, तब वह आसन छोड़ देता है। उसकी कुर्सी सभामें सभापतिके पास ही रहती है, क्योंकि बीच-बीचमें सभापतिको उसकी सहायताकी बराबर आवश्यकता पड़ा करती है। मन्त्रीकी संख्या प्रायः एक ही होती है। परन्तु कभी-कभी संयुक्त मन्त्री और चुन लिया जाता है और इस प्रकार संख्या बढ़ा दी जाती है।

(४) *सहकारी मन्त्री*––यह पद प्रायः उपसभापतिकी ही तरह का है। उपसभापतिका सभापतिके पदके साथ जो सम्बन्ध होता है, प्रायः वही सम्बन्ध सहकारी मन्त्रीका मन्त्रीके साथ होता है। परन्तु इनमें थोड़ा अन्तर है। उपसभापति सभापतिकी उपस्थितिमें प्रायः निरर्थक-सा हो जाता है, जब कि यह मन्त्रीकी उपस्थितिमें भी कामका हो सकता है। मन्त्रीकी अनुपस्थितिमें तो उसके सब काम यह करता ही है। उसकी उपस्थितिमें भी इसे काम करने पड़ते हैं। कभी-कभी तो जब काम अधिक होता है, तब मन्त्री किसी विशेष विभागका पूरा कार्य-भार अपने सहकारियोंपर छोड़ देता है। उस दशामें जब उस विभागका प्रश्न आता है, तब सहकारी मन्त्री ही उसपर कार्यवाही करता है। ऐसे भी जो काम मन्त्री इन्हें सुपुर्द कर दे, वह काम इनको करना पड़ता है। सहकारी मन्त्री एक या अनेक भी हो सकते हैं।

(५) *कोषाध्यक्ष*––इस पदाधिकारीका कार्य केवल यह होता है कि सभामें जो रुपया आये, वह जमा कर ले और मन्त्री या सभापति या दोनोंकी या सभाकी आज्ञासे उसे दे। प्रायः यह होता है कि सभाका रुपया मन्त्रीके पास या सभापतिके पास आता है। वह उस रुपयेसे अपने तात्कालिक खर्चके लिये आवश्यक धन रखकर, बाकी कोषाध्यक्षके पास जमा कर देता है; फिर जब जरूरत होती है, तब उससे रुपया मंगा लेता है। इस प्रकार कोषाध्यक्षका काम एक प्रकारसे सभाकी बैंकका काम हो जाता है। इसके अतिरिक्त कोषाध्यक्षका कोई काम नहीं होता। कोषाध्यक्ष अपनी इच्छासे कोई खर्च नहीं कर सकता। परन्तु यदि मन्त्री या सभापति या कोई अन्य पदाधिकारी या कर्मचारी उससे रुपये मँगाये और उसे यह शक हो जाय कि यह रुपया अनु-

चित कार्यमें खर्च करनेके लिये मंगाया जा रहा है, तो वह देनेसे इन्कार कर सकता है। उस दशामें वह प्रश्न सभाके सामने उपस्थित किया जायगा और सभाके निर्णयके अनुसार काम किया जायगा। रुपया मंगाते समय यह नियम होता है कि साथमें यह भी लिख दिया जाय कि रुपया किस कामके लिये मंगाया जा रहा है। इससे कोषाध्यक्षको निर्णय करनेमें सुविधा मिलती है।

कहीं-कहींपर कोषाध्यक्षको ही आय-व्ययका सारा हिसाब रखना पड़ता है। उस दशामें सभापति और मन्त्रीके हस्ताक्षरोंके साथ जो वाउचर उसके पास ले जाये जाते हैं, उन्हींके आधारपर अपनी विवेक बुद्धिके अनुसार वह सम्बन्धित व्यक्तियोंको रुपया देता है। इसके बाद वही स्वयं वार्षिक या त्रैमासिक आय-व्ययका विवरण तैयार करता है, और उसे सभाके सम्मुख उपस्थित करता है। परन्तु यह प्रथा ठीक नहीं है, क्योंकि जिसके हाथसे काम होता है, उसीके हाथसे खर्च भी होना अच्छा और सुविधाप्रद होता है; और चूंकि काम होता है मन्त्रीके हाथसे, इसलिये उसीके पास आय-व्ययका लेखा रहना उचित है।

(६) *आय-व्यय-परीक्षक*—प्रत्येक सभामें एक ऐसा व्यक्ति निर्वाचित किया जाता है, जो आय-व्ययकी जांच-पड़ताल करता है और उसके औचित्यकी साक्षी देता है। यह व्यक्ति न कार्यकारिणीका सदस्य ही माना जाता है, न पदाधिकारियोंमें ही गिना जाता है। इसका कारण यह है कि पदाधिकारी खर्च करते हैं। यदि इसे पदाधिकारी मान लिया जायगा, तो पदाधिकारी ही जांच करनेवाले माने जायेंगे। इस प्रकार यदि हिसाबमें कुछ बेईमानी की गयी, तो अवस्था यह आवेगी कि पदाधिकारी ही बेईमानी करनेवाले होंगे और वही जांच करनेवाले। इस अवस्थामें पदाधिकारीके नाते आय-व्यय-परीक्षक पक्षपात या अन्याय कर सकता है।

सभासद—सभासद सभाके सभापतिकी भांति ही प्रत्युत कई अंशोंमें उससे भी अधिक आवश्यक अंग हैं। बिना सभासदोंके कोई सभा नहीं हो सकती। सार्वजनिक तात्कालिक सभाओंमें उपस्थित जन-समुदाय ही सभासद माने जाते हैं। परन्तु संगठित सभाओंमें सदस्योंकी संख्या और योग्यता निर्धारित रहती है। जो मनुष्य सभा-विशेषके नियमों, उद्देश्यों आदिको मानता है, वह सभाका सदस्य या सभासद कहलाता है। किसी-किसी सभाके सदस्य बननेके लिये कुछ चन्दा भी देना पड़ता है। इस प्रकार जो-जो नियम सभासदके लिये निर्धारित होते हैं, उन सभी नियमोंका पालन करना आवश्यक होता है।

कर्तव्य—सभासद सभाकी कार्यवाहीको सुविधापूर्वक सञ्चालित करनेमें बड़े सहायक हो सकते हैं और यदि उनमें शरारत आ जाय, तो वे उसमें बाधक भी बड़े जबर्दस्त हो सकते हैं। परन्तु एक शिष्ट और सभ्य नागरिककी हैसियतसे प्रत्येक सभा अपने सदस्योंसे शिष्टता और सभ्याचारकी ही आशा रखती है; और प्रत्येक सदस्यको इस आशाके अनुरूप काम करना चाहिये। उसे सभापतिका पूरा-पूरा सहायक बनकर सभाका कार्य सञ्चालित करनेमें सुविधा पहुंचानेका प्रयत्न करना चाहिये। सभाके तथा शिष्टाचारके अन्य नियमोंका पालन करना, सभामें शान्ति और व्यवस्था बनाये रखनेका उद्योग करना आदि सभासदके प्रधान कर्तव्य हैं। जब कभी ऐसे प्रसंग आवें, जिनके विरोधकी आवश्यकता हो, तब उनका विरोध अवश्य करें। परन्तु विरोध हो पूर्ण सौजन्य और शिष्टताके साथ। उसके बाद सभा जो निर्णय करे, उस निर्णयका पालन सभासदोंको करना चाहिये। यदि सभामें उनके मतका समर्थन न किया गया हो, तो भी (विरोध मत रखते हुए भी) उन्हें सभामें

बहुमत द्वारा निश्चित मतके अनुसार काम करना चाहिये। यदि किसी सदस्यको अपने निश्चयको छोड़कर सभाके निश्चयपर अमल करना पसन्द न हो, तो उसे उस सभाकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे देना चाहिये। परन्तु जबतक वह सभाका सदस्य रहे, तबतक उसके बहुमत द्वारा निश्चित किये गये नियमोंका पालन और कार्योंका सम्पादन उसे अवश्य करना चाहिये। इसी प्रकार सभामें यदि सभापति कोई आज्ञा दे, तो उसका पालन करना भी सभासदका कर्तव्य है। यदि उस आज्ञामें उसे अनौचित्य मालूम होता हो, तो वह उसके सम्बन्धमें अपील कर सकता है; परन्तु इसके बाद जो निर्णय हो, उसको मानना ही चाहिये। यदि इसपर भी उसे सन्तोष न हो, तो विरोध-स्वरूप वह सभा-स्थल छोड़ सकता है, या सदस्यतासे पृथक हो सकता है। सदस्यको सदा यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके भाषणमें कोई अनुचित और आक्षेपजनक शब्द न आ जायं। परन्तु यदि इतनी सावधानीके पश्चात् भी ऐसे शब्द आ ही जायं तो ज्यों ही उनकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया जाय, त्यों ही नम्रतापूर्वक उन शब्दोंको या तो वापस ले लेना चाहिये या उनके सम्बन्धमें खेद प्रकट करना चाहिये या माफी मांग लेनी चाहिये। उसे अनुचित होनेपर भी अपनी बातपर अड़े रहनेका दुराग्रह नहीं करना चाहिये।

अधिकार—सदस्योंके अधिकारोंके सम्बन्धमें कोई विशेष बात नहीं है। वैसे तो वे सभाके सर्वेसर्वा होते ही हैं और बहुमतसे बहुत कुछ कर सकते हैं। फिर भी यदि उनके अधिकारोंकी कुछ चर्चा की ही जाय, तो कहा जा सकता है कि उन्हें अपनी इच्छाके अनुसार सभापति निर्वाचित करने, व्यवस्थाके विरुद्ध काम हो रहा हो तो उसकी ओर सभापतिका ध्यान

दिलाने, यदि किसी सदस्यने अनुचित आचरण किया हो तो उसे दण्ड दिलाने, कोई बात आ जाय तो उसे स्पष्ट करनेके लिये बीचमें ही बोलने, कोरम पूरा न हो तो उस ओर सभापतिका ध्यान दिलाने आदिके अधिकार होते हैं। सम्मति देनेका अधिकार तो उनका प्रधान अधिकार है ही और इसी प्रकार सम्मति-विभाजनकी मांग पेश करनेका अधिकार भी उनका विशेष अधिकार है। सदस्य एक प्रकारसे देशकी प्रजाके समान है, जिसके सभापति राजा, और मन्त्री, मन्त्री होता है; और देशमें प्रजाको जो अधिकार होते हैं, वैसे ही अधिकार सभामें सभासदोंको होते हैं।

साधारण सदस्य—सभासद कई प्रकारके होते हैं। जो नियमों और उद्देश्योंको मानकर किसी सभाके कार्योंमें योगदान करते हैं, वे साधारण सदस्य कहे जाते हैं। इसी प्रकार जो किसी संस्था-विशेषके नियमोंमें निर्धारित चन्दा आदि देकर सदस्य बनते हैं, वे भी साधारण सदस्य कहे जाते हैं। तात्कालिक सार्वजनिक सभाओंमें यौंही भाग लेनेवाले—यह तो निश्चय ही है कि इस प्रकार भाग लेनेवाले उस सभाके उद्देश्यों और नियमोंको मानते हैं—उपस्थित जन-समुदाय भी साधारण सदस्योंकी कोटिमें ही गिने जायंगे। साधारण सदस्य होना किसी संस्था या सभामें भाग लेनेके लिये अनिवार्य होता है। अन्य प्रकारके सदस्य (जैसे किसी संस्थाकी कार्यकारिणी आदिके सदस्य) या पदाधिकारी आदि भी वे ही लोग बन सकते हैं, जो साधारण सदस्य बन चुके हैं या उसकी योग्यता रखते हैं। यदि किसी व्यक्तिमें साधारण सदस्य होनेकी योग्यता न हो, तो वह अन्य किसी प्रकारका सदस्य भी नहीं बन सकता। हर प्रकारका सदस्य बननेके लिये पहिले साधारण सदस्य होना आवश्यक होता है।

निर्वाचित सदस्य—इस प्रकारके सदस्य कौंसिलों, जिला बोर्डों, म्युनिसिपैलिटियों आदिमें होते हैं। ये जनता द्वारा निर्वाचित होकर उक्त संस्थाओंमें जाते हैं। इनका अपना-अपना, अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र होता है। उसीकी जनता (साधारण सदस्य अर्थात् वे लोग, जिन्हें वोट देनेका अधिकार है) द्वारा उस सदस्यका निर्वाचन होता है। ऐसे सदस्योंकी संख्या उपरोक्त संस्थाओंमें अन्य प्रकारके सदस्योंसे प्रायः अधिक होती है। अन्य संगठित संस्थाओंमें भी इस प्रकारके सदस्य होते हैं, परन्तु उनकी साधारण सभामें नहीं, विशेष सभाओं या समितियोंमें। साधारण सभामें तो सब साधारण सदस्य होते ही हैं, विशेष सभाओंमें (जैसे कार्यकारिणी सभा आदि) वे साधारण सदस्योंमेंसे निर्वाचित होकर जाते हैं।

प्रतिनिधि—प्रतिनिधि इसी प्रकारके निर्वाचित सदस्योंका एक रूप है। जब कोई संस्था बहुत व्यापक और विस्तृत हो जाती है, जिसके सब साधारण सदस्योंको एक स्थानपर एकत्र होना असम्भव या प्रायः असम्भव होता है, तब साधारण सदस्य अपने एक एक हिस्सेसे अपनी बातें सभाके सामने उपस्थित करनेके लिये अपनी ओरसे नियमानुसार एक या अधिक व्यक्ति चुनकर भेजते हैं। इन्हीं चुने हुए व्यक्तियों या सदस्योंको प्रतिनिधि कहते हैं। इस प्रकारके प्रतिनिधि राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक आदि संस्थाओंमें प्रायः निर्वाचित होते हैं। कौंसिलों, कारपोरेशनों आदि के निर्वाचित सदस्य भी अपने अपने निर्वाचन क्षेत्रके प्रतिनिधि ही होते हैं।

नियुक्त सदस्य—कुछ संगठित सभाओंमें विशेषकर कौंसिलों, म्युनिसिपैलिटियोंमें कुछ सदस्य ऐसे होते हैं, जो अधिकारियों द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। संगठित संस्थाओंके उच्च पदाधिकारियों द्वारा भी कभी-

कभी—बहुत कम—इस प्रकारके सदस्य किसी विशेष सभाके लिये नियुक्त किये जाते हैं। जैसे कांग्रेसके वर्तमान विधानमें कार्यकारिणीके सदस्योंको सभापति अपनी इच्छाके अनुसार नियुक्त करता है। परन्तु यह प्रथा सरकारी या अर्ध सरकारी संस्थाओंमें ही अधिक पायी जाती है, सार्वजनिक संस्थाओंमें केवल अपवादके रूपमें।

अधिकार प्राप्त सदस्य—(Ex officio) अधिकार प्राप्त सदस्य उन सदस्योंको कहते हैं, जो न तो किसीकी ओरसे निर्वाचित किये जाते हैं और न नियुक्त ही। परन्तु जो अपने पद या ओहदोंके कारण किसी विशेष सभा या संस्था या समितिके सदस्य मान लिये जाते हैं। जैसे कौंसिलों, बोर्डों आदि संस्थाओंमें कुछ सरकारी अधिकारी अपने पद या ओहदेके कारण ही उन संस्थाओंके सदस्य बन जाते हैं। इसी प्रकार कांग्रेस आदि संस्थाओंमें भूतपूर्व सभापतिके नाते कुछ व्यक्ति सभासद माने जाते हैं।

सम्मिलित सदस्य—(Coopted member) कभी-कभी सभाओं विशेषकर समितियोंको अपने निर्धारित सदस्योंकी संख्याको बढ़ा लेनेका अधिकार दिया जाता है। इस अधिकारको कार्यान्वित करते हुए उस समिति के सदस्य जिन अन्य व्यक्तियोंको समितिमें सम्मिलितकर लेते हैं, उन्हें सम्मिलित सदस्य कहते हैं। सभामें सम्मिलित हो जानेके बाद सब सदस्योंके कर्तव्य और अधिकार एकसे हो जाते हैं।

दर्शक—दर्शक उन व्यक्तियोंको कहते हैं, जो सभामें उपस्थित तो अवश्य होते हैं, परन्तु सभाकी कार्यवाहीमें नियमानुसार भाग नहीं ले सकते। उपस्थित जनताका यह भेदभाव संगठित सभाओंमें ही दृष्टिगत होता है, जहां सदस्योंको सभाके विशेष नियमोंके अनुसार सदस्य बनना पड़ता है।

सार्वजनिक तात्कालिक सभा और असंगठित सभाओंमें यह नहीं होता। वहां तो प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति सदस्य मान लिया जाता है। क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि जो उस सभामें आये हैं, वे सभाके उद्देश्योंसे सहमत होंगे और अलगसे सदस्यताके कोई नियम होते नहीं हैं, अतः सभी लोग सदस्य मान लिये जाते हैं। परन्तु संगठित सभाओंमें यह बात नहीं होती। वहां सदस्य बननेके विशेष नियम होते हैं। जो उन नियमोंके अनुसार सदस्य नहीं बन चुकता, वह सभामें भाग लेनेका अधिकारी नहीं माना जाता। सदस्य बन चुकनेके बाद भी बड़ी बड़ी सभाओंमें जहां भाग लेनेके लिये प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आते हैं, वहां साधारण सदस्य भी यदि वह प्रतिनिधि नहीं बना तो सभामें भाग नहीं ले सकता। वास्तवमें ऐसी बड़ी सभाएं प्रतिनिधियोंकी सभायें ही होती हैं। अतः साधारण सदस्य यदि आभी जाय तो वह एक दर्शककी हैसियतसे केवल सभाकी कार्यवाही देख भर सकता है, उसमें भाग नहीं ले सकता।

विशेष दर्शक या निमंत्रित व्यक्ति—सभाओं में समाजके कुछ विशिष्ट व्यक्ति निमंत्रित किये जाते हैं। उनकी उपस्थिति सभाका गौरव बढ़ाती है। ऐसे सदस्य यद्यपि सभाकी वास्तविक कार्यवाहीमें नियमानुसार कोई भाग नहीं ले सकते, तथापि किसी विशेष प्रश्नपर उनकी सम्मति जाननेके लिये उनसे विशेष रूपसे प्रार्थनाकी जा सकती है, कि वे अपना भाषण दें। कभी कभी बिना किसी विशेष विषयका निर्देश किये हुए भी उनके विचार सुननेकी उत्सुकतासे उनके भाषणकी व्यवस्था की जाती है। इन विचारों और भाषणोंसे जनता तथा सभाको अवश्य लाभ पहुंचता है, और किसी छिड़े हुए विषयपर जब वे भाषण देते हैं, तब उपस्थित सदस्योंका

मतामत बदल भी सकता है। इस प्रकार एक जीतता हुआ पक्ष हार और हारता हुआ पक्ष जीत भी सकता है। कभी कभी सभाके संयोजक या नियामक परिस्थितिको अनुकूल बनानेके लिये भी इस प्रकारके भाषणोंकी व्यवस्था करते हैं। परन्तु यदि इस प्रकारके भाषणोंके सम्बन्धमें उपस्थित सदस्य आपत्ति करें तो ये बन्द कराये जा सकते हैं। खासकर किसी छिड़े हुए विषयपर तो आपत्ति और भी अधिक प्रभावशाली होती है। विशेष दर्शक भाषण देनेके अतिरिक्त कार्यवाहीमें और कोई भाग नहीं ले सकते।

सदस्यों और दर्शकोंमें प्रधान भेद यह होता है कि सदस्य छिड़े हुए प्रश्नपर सम्मति दे सकते हैं, और दर्शक नहीं दे सकते। अन्यान्य कार्यवाहीमें भी सदस्य गण भाग ले सकते हैं, परन्तु दर्शक नहीं।

सदस्योंसे साधारण रूपमें यह आशा की जाती है कि वे अपनी सभाके मन्तव्योंके विरुद्ध प्रचार न करें। परन्तु यदि किसी विशेष प्रश्नको लेकर उनका मतभेद हो हो तो साधारण सदस्य विरोधमें प्रचार कर सकता है। किन्तु कार्य समितिके सदस्य और खासकर पदाधिकारी ऐसा कदापि नहीं कर सकते। जो पदाधिकारी या कार्यकारिणीका सदस्य अपनी संस्थाके मतके विरुद्ध प्रचार करता हो, उसे उससे रोका जा सकता तथा पदसे पृथक किया जा सकता है।

समितियां

किसी सभा या संस्थामें जब किसी विशेष विषयपर विचार करना होता है, अथवा कोई विशेष कार्य करना होता है, अथवा किसी खास पत्रका मजमून बनाना, किसी विषयके प्रस्तावका रूप स्थिर करना होता है, तब सभाकी अनुमतिसे कुछ सदस्योंकी एक छोटी-सी सभा बना दी जाती है। इसे समिति कहते हैं। इसीको वह विशेष विषय विचार करने या विशेष कार्य सम्पादन करनेके लिये सौंपा जाता है। समितिका निर्माण करनेके साथ ही उस विशेष विषयके सम्बन्धके सब कागज पत्र तथा अन्य उपयोगी और आवश्यक उपकरण भी दिये जाते हैं। समिति इन वस्तुओंको, काम हो जानेके बाद, मूल सभाको वापस लौटा देती है।

संगठन---जब सभा या संस्था समिति बनानेका निश्चय कर लेती है, तब एकत्रित सभामें ही उसका निर्माण भी कर लिया जाता है। समितिके

सदस्योंकी संख्या पहलेसे निर्धारित हो जाती है। हां, कभी-कभी समितिको यह अधिकार भी दे दिया जाता है कि वह चाहे तो और सदस्य बढ़ा ले। समिति-संगठनके लिये कई प्रकारके उपाय काममें लाये जाते हैं। सबसे अधिक उपयुक्त प्रचलित उपाय यह है कि उपस्थित सदस्य प्रस्तावके रूपमें सदस्योंके नाम पेश करें, उनपर वोट लिये जायं और जिनको बहुमत स्वीकार करे, उन्हें समितिका सदस्य बनाया जाय। इस प्रस्तावमें एक सदस्य अनेक नाम (परन्तु यह संख्या उससे अधिक न होनी चाहिये, जितनी कि समितिके सदस्योंके लिये निर्धारित हुई हो।) एक साथ ले सकता है। दूसरा उपाय यह है कि सभामें उपस्थित सदस्यगण समितिकी सदस्यताके लिये व्यक्तियोंको नामजद करें। इस अवस्थामें एक सदस्य केवल एक ही नाम पेश कर सकता है, और यदि इस प्रकार एक-एक करके केवल उतने ही नाम सामने आये, जितने कि समितिके संगठनके लिये आवश्यक हैं, तब तो वे सब-के-सब बिना सम्मति लिये स्वीकार ही कर लिये जाते हैं, परन्तु यदि नाम अधिक हुए, तो एक-एक नामपर अलग-अलग पक्ष और विपक्षमें वोट लिये जायंगे। इस प्रकार वोट लेनेपर जिनके नामपर आधेसे कम वोट मिलेंगे, उनके नाम अस्वीकृत कर दिये जायंगे। बहुमत मिलनेवाले नाम भी यदि निर्धारित संख्यासे अधिक होते हों, तो उनमें जिस क्रमसे वोट अधिक कम मिले हैं, उसी क्रमसे निर्धारित संख्यातकके सदस्य निर्वाचित कर लिये जायंगे। परन्तु यदि जिन लोगोंको बहुमत मिला है, उनसे समितिकी निर्धारित सदस्य संख्या पूरी न होती हो, तो और नाम मांगे जायंगे और संख्या पूरी होनेतक निर्वाचन होता रहेगा। तीसरा उपाय यह है कि सभापति सदस्योंके नाम नामजद करे। सभापति पूरी संख्याके नाम नामजद कर सकता है। सम्मति-गणना आदिमें

वही प्रणाली बरती जायगी, जो सभाद्वारा नामजद किये जानेमें बरती जाती है। एक बार दिये गये नामोंके अस्वीकृत हो जानेपर सभापति अन्य नाम नामजद कर सकता है। समिति निर्माणका चौथा उपाय यह है कि सभापति स्वयं सदस्योंकी नियुक्ति कर दे। यह कार्य सभापति उसी दशामें कर सकता है, जब सभा उसे यह अधिकार दे दे। ऐसी दशामें सभापति जिन व्यक्तियों-को नियुक्त करेगा, वे बिना किसी तर्क-वितर्कके स्वीकार कर लिये जायंगे।

सदस्योंकी संख्याके सम्बन्धमें कोई बात निश्चित नहीं होती। आवश्य-कतानुसार उनकी संख्या कम या बेशी रखी जाती है। फिर भी साधारणतः संख्या ३ से कम और ९ से अधिक नहीं होती। किसी कम्पनीके बोर्ड आफ-डायरेक्टर्स अपने किसी एक डायरेक्टरको भी कमेटी मान सकते हैं। उस समय एक व्यक्तिका काम कमेटीका काम समझा जायगा।

साधारणतः नियम यह है कि जो व्यक्ति सभाके सदस्य हैं, वे ही समि-तियोंमें निर्वाचित या नियुक्त किये जाते हैं। परन्तु विशेष अवस्थाओंमें यदि किसी बाहरी व्यक्तिसे काममें अधिक सुविधा मिलनेकी आशा हो, तो सभाकी अनुमतिसे या उस दशामें, जब समितिको अपने सदस्य बढ़ानेका अधिकार मूल-सभाद्वारा प्राप्त हो चुका हो, समिति अपने बहुमतसे, किसी बाहरी व्यक्ति को भी समितिका सदस्य बना सकती है।

प्रायः समितियां छोटी होती हैं और उनमें अलगसे सभापति और संयोजक या मन्त्रीके अतिरिक्त अन्य पदाधिकारी नहीं रहते। इन पदाधि-कारियोंका चुनाव भी अधिकांशमें समितिका निर्वाचन करनेके साथ ही सभा द्वारा कर लिया जाता है। परन्तु यदि किसी कारणसे सभा वह निर्वाचन न करे, तो समितिके सदस्यगण आपसमें ही इनका निर्वाचन कर लेते हैं। इस

दशामें प्रथा यह है कि जिसका नाम समितिके सदस्योंमें सर्वप्रथम निर्वाचित हुआ है, वही उस समयतक सभापति बनाया जाता है, जबतक कि समिति अपने सभापतिका निर्वाचन नहीं कर लेती। इसलिये प्रथम नामके निर्वाचनमें योग्यता और महत्ताका अधिक ध्यान रखना चाहिये। परन्तु यदि समितिमें संयोजक पहलेहीसे निर्वाचित कर लिया गया हो, तो संयोजक ही स्थायी सभापतिका निर्वाचन हो जानेतक सभापतिका कार्य करता है। जब समिति बड़ी होती है, और उसमें काम भी बहुत अधिक करना होता है, तब सभा-पतिके अतिरिक्त अन्य पदाधिकारी भी निर्वाचित कर लिये जाते हैं।

जब किसी विशेष कार्यके सम्पादनके लिये समिति बनायी गयी हो, तब इस बातका ध्यान विशेष रूपसे रखना चाहिये कि उसमें वे ही सदस्य निर्वा-चित किये जायं, जो उस विषयसे पूर्ण सहमत हों। उदाहरणार्थ यदि कोई समिति इसलिये बनायी गयी हो कि सार्वजनिक सभाका आयोजन करे। ऐसी सभामें यदि वे सदस्य रखे जायं, जो सभा करनेके विरोधी हैं, तो काममें बाधा पड़नेके अतिरिक्त कोई लाभ न होगा। इस प्रकारकी कार्य करनेवाली समितिमें इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि जहांतक सम्भव हो, वहांतक नजदीक-नजदीक रहनेवाले सदस्य ही इसमें निर्वाचित किये जायं; ताकि आव-श्यक अवसरोंपर थोड़ी देरकी सूचनामें ही वे उपस्थित हो सकें। समितियोंकी कोरम संख्या मूल-सभा प्रायः निर्धारित कर देती है। परन्तु यदि वह न करे, तो साधारणतः ३ की उपस्थितिमें काम हो जाता है। अन्यथा बड़ी समितियों में एक तिहाई सदस्योंकी उपस्थिति वांछनीय होती है, परन्तु यदि उपनियमोंमें इससे कमकी संख्या दी गयी हो, तो उससे भी कार्य हो सकता है। परन्तु संख्या दोसे अधिक होनी चाहिये।

पाबन्दियां और अधिकार—समितिके सुपुर्द जो काम किया जायगा, वह कार्य समितिको करना ही पड़ेगा। उसे वह टाल नहीं सकती। यह हो सकता है कि उसके सदस्य इस्तीफा देकर अलग हो जांय और, उनके स्थानपर नवीन समितिका निर्वाचन हो, परन्तु जबतक सदस्यगण समितिके सदस्य बने रहेंगे, तबतक उनका कर्तव्य हो जाता है कि उस विषयपर अवश्यमेव कार्य-वाही करें, जो उन्हें सौंपा गया है। इस प्रकारका कार्य कर चुकनेके बाद वह इस बातको भी नहीं छिपा सकती कि अपने विषयकी छान-बीनमें उसे क्या क्या बातें मालूम हुई और वह किस परिणामपर पहुँची। साथ ही यह भी नहीं है कि जो कुछ समिति निर्णय करे; उसको माननेके लिये मूलसभा बाध्य ही हो। समिति प्रस्ताव या रिपोर्टके रूपमें अपनी बात मूल सभाके सामने उपस्थित कर सकती है और उसके बाद यह सभाके अधिकारकी बात होती है कि वह उस प्रस्ताव या रिपोर्टको माने या अस्वीकार कर दे। परन्तु मूल-सभा भी समितिकी रिपोर्टमें या प्रस्तावमें महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं कर सकती। वह केवल शब्दोंका हेर-फेर ही कर सकती है, उसके विचारों और भावोंमें परिवर्तन नहीं कर सकती। यदि मूलसभाको प्रस्तुत रिपोर्टसे असन्तोष हो, तो वह उसे अस्वीकार कर सकती है, या यह कर सकती है कि उस विषयको पुनर्विचारके लिये फिर समितिके हवाले करे, या उस समितिको न देकर नयी समिति बनाकर उसे सौंपे, परन्तु रिपोर्टमें महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं कर सकती। समिति किसी सदस्यको उसके शिष्टाचारका पालन न करनेके लिये सजा नहीं दे सकती है, और न उसका सभापति किसी महत्वपूर्ण विषयमें, जो उसके विचारणीय विषयसे बाहरका है, अपना निर्णय (Ruling) ही दे सकता है। ऐसे अवसरोंपर उसको एक ही मार्गका अनुसरण करना चाहिये।

वह यह कि मूलसभाको इन बातोंकी सूचना दे और उसके द्वारा इस सम्बन्धमें कार्यवाही करवा ले। समितियोंमें निषेधार्थक प्रस्ताव किसी दशामें भी नहीं लाया जा सकता। हां, यदि सदस्यगण आवश्यक समझें, तो स्थायी समितियों-को छोड़कर अन्य समितियोंमें समिति-भंग करनेका प्रस्ताव ला सकते हैं। यह प्रस्ताव भी स्थायी समितियोंमें तो आ ही नहीं सकता, साधारण समितियोंमें भी उसी समय आ सकता है, जब समिति अपना काम पूरा कर चुकी हो और मूलसभाके सामने पढ़नेके लिये उसकी रिपोर्ट तैयार हो चुकी हो। समितिमें प्रायः वे ही सदस्य उपस्थित होते हैं, जो उसमें निर्वाचित हुए हैं, परन्तु यदि मूलसभाके कोई अन्य सदस्य जाना चाहें, तो जा सकते हैं, परन्तु केवल दर्शकके रूपमें वहां रह सकते हैं। यदि उस विषयपर कुछ बोलना चाहते हों, तो उन्हें आवेदन करना पड़ेगा और उसकी स्वीकृतिकी हालतमें ही वे बोल सकेंगे। समितियोंका निर्णय बहुमतका निर्णय होता है। अल्पमत साधारणतः अपना मत अलग नहीं लिखते और जब वह निर्णय सभाके सामने पेश होता है, तब समितिका निर्णय कह कर ही पेश किया जाता है, बहुमत या अल्प-मतका कहकर नहीं।

इस प्रकार जहां उसके सामने अनेक पाबन्दियां रहती हैं, वहां सुविधाएं भी खूब रहती हैं। समितिमें सभाओंके नियम, कानून उतनी सख्तीके साथ नहीं पालन किये जाते। एक सदस्य जितनी बार चाहे, बोल सकता है, उसको खड़े होनेकी भी आवश्यकता नहीं होती। बोलते समय सभापतिसे वक्तृता-धिकार प्राप्त करना भी जरूरी नहीं होता और न इसी बातकी आवश्यकता होती है कि प्रस्तावोंका समर्थन किया जाय। बिना समर्थनके भी सभापति समितिके सामने विचारार्थ प्रश्न उपस्थित कर सकता है। सभापति जिसे बकी

सभाओंमें बोलनेका अधिकार नहीं होता, समितियोंमें स्वतन्त्रतापूर्वक विचारणीय प्रश्नोंमें वादविवाद कर सकता है और अपनी सम्मति दे सकता है। सभापति सदस्यकी हैसियतसे भी वोट दे सकता है, और निर्णायक वोट भी दे सकता है। यदि कोई प्रश्न पहले विचारा जा चुका हो, तो मूलसभामें उसकी सूचना देनेके पहले किसी समय उस प्रश्नके सम्बन्धमें पुनर्विचार किया जा सकता है, और अन्तिम निर्णयके बाद ही वह मूलसभामें पेश किया जायगा। ये अधिकार इसलिये हैं, जिससे मूलसभाके सामने उस प्रश्नका महत्वपूर्ण निर्णय पहुँचे। जल्दी-जल्दीमें ऐसा न हो जाय कि विचार अपरिपक्व ही रह जांय। समितिकी मीटिंग प्रायः सभापति या संयोजक बुलाता है। परन्तु यदि आवश्यक हो तो दो सदस्य भी बुला सकते हैं। परन्तु यह जरूरी है कि सब सदस्योंके पास सूचना पहुँच गयी हो। समितिकी मीटिंगके लिये बहुत पहले सूचना देनेकी प्रथा भी नहीं है। यदि उपनियमोंमें कोई विशेष उल्लेख न हो, तो इतना समय देकर, जिसमें लोग समितिमें आ सकें, सूचना दी जा सकती है और वह न्यायानुमोदित मानी जायगी। समितिमें कार्यवाहीका विवरण (Proceeding) लिखनेकी आवश्यकता नहीं होती। और अधिकांश समितियोंमें कार्य-विवरण भी नहीं लिखा जाता। उनकी रिपोर्ट ही पर्याप्त होती है। परन्तु कार्यकारिणी समिति, स्वागत समिति आदि ऐसी समितियोंमें, जो स्वयं बड़ी सभाका काम करती हैं, कार्य-विवरण (Minute) रखना आवश्यक और उचित होता है। इन बातोंके अतिरिक्त अन्यान्य बातोंमें समिति मूलसभाके नियमोंके अनुसार काम करती है। समितिके सामने जो प्रश्न विचारार्थ उपस्थित किया जाता है, उसपर कार्यवाही हो जानेके बाद वह समिति भंग कर दी जाती है। उसकी अवधि केवल प्रस्तुत प्रश्नपर विचार

करनेतक ही रहती है। परन्तु स्थायी समितियोंकी अवधि निर्धारित रहती है और वे उस समयतक अपने विषयके अनेक प्रश्नोंपर विचार कर सकती है। समितियां आवश्यक होनेपर उपसमितियां भी बना सकती हैं।

कार्य—ऊपर कहा जा चुका है कि कमेटियां कोई विशेष कार्य सम्पादन करनेके लिये अथवा किसी विषयका अनुसंधान करने या किसी प्रश्नपर विचार करनेके लिये निर्धारित की जाती हैं। संगठनके पश्चात् वे इसीके अनुसार अपने कार्य करती हैं। जब समितियोंको कार्य सौंपा जाता है, तब उस कार्यका सम्पादन करके वह मूलसभाके सामने अपना कार्य-विवरण उपस्थित करती है। इस विवरणमें समितिके सदस्योंमें मतभेदकी कोई बात ही नहीं आती, क्योंकि उसमें विचारोंकी बात ही नहीं होती। घटनाओंका वर्णन होता है, जो दो तरहका हो ही नहीं सकता। अनुसंधान करनेके लिये बनी हुई समितिमें भी मतभेदकी कम गुंजाइश रहती है। अधिकांशमें जो गवाहियां या सबूत उस सम्बन्धमें पेश होते हैं, उनसे एक ही प्रकारका निष्कर्ष निकलता है। फिर भी ऐसे प्रसंग आ सकते हैं, जब एक सबूतको एक व्यक्ति एक प्रकारसे देखे और दूसरा दूसरे। उस दशामें मतभेदकी गुंजाइश हो सकती है। विचारके लिये उपस्थित प्रश्नोंमें मतभेदकी अधिक सम्भावना होती है। परन्तु इन मतभेदोंके होते हुए भी समितिके सदस्योंको अपना निर्णय सम्मिलित रूपमें देना चाहिये और अपने मतभेद समितिके भीतर ही तय कर डालने चाहिये। फिर भी यदि किसी कारणवश मतभेद दूर न हो, तो साधारण प्रश्नोंमें अल्पमतकी उपेक्षा करके समितिका निर्णय पेश किया जा सकता है, परन्तु विशेष महत्वपूर्ण विषयोंपर समितिके विवरणके साथ ही अल्पमत अपनी विरोधात्मक बातें भी लिख सकता है। इस प्रकारका विरोध यदि थोड़ा ही

हुआ, तब तो जो रिपोर्ट समितिद्वारा तैयार की जाती है, उससे सर्वथा सहमत होनेवाले सदस्योंके हस्ताक्षरोंके बाद थोड़ा विरोध करनेवाले सदस्योंके हस्ताक्षर होते हैं और हस्ताक्षर करते समय वे सदस्य यह लिख देते हैं कि रिपोर्टके अमुक हिस्सेको छोड़कर अन्य सबसे मैं सहमत हूँ। परन्तु यदि विरोध बहुत अधिक हो तो अल्पसंख्यक अपनी अलग रिपोर्ट भी पेश कर सकते हैं। इस सम्बन्धमें कुछ विद्वानोंका मत है कि समितिको अल्पमतका प्रदर्शन करना ही न चाहिये। परन्तु यह बात समीचीन नहीं प्रतीत होती। इसी प्रकार कुछ लोगोंका यह कथन भी है कि समितिके कार्य-विवरण (Report) में किसीके हस्ताक्षरोंकी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु यह कथन भी उचित नहीं है। समितिके सब सदस्योंके हस्ताक्षर कार्य-विवरणमें रहने चाहिये।

समिति जब अपनी तमाम कार्यवाही समाप्त कर चुकती है, तब या तो उसका सभापति या उसका कोई अन्य सदस्य या कुछ सदस्य मिलकर एक कार्य-विवरण तैयार करते हैं। वही समितिके सामने स्वीकारार्थ उपस्थित किया जाता है और समितिद्वारा स्वीकृत हो जानेके बाद मूलसभाके सामने उपस्थित किया जाता है। प्रायः इस रिपोर्टके साथ समिति अपने सुझाव और सिफारिशें भी सभाके सामने पेश करती है। कभी-कभी ये सुझाव और सिफारिशें प्रस्ताव के रूपमें भी पेश की जाती है।

रिपोर्ट—अपने अनुसंधान और जाँच-पड़तालके बाद समिति जो विवरण तैयार करती है, उसे कार्य-विवरण या अधिक प्रचलित शब्दोंमें रिपोर्ट कहते हैं। रिपोर्टें प्रायः यों प्रारम्भ की जाती है—"जिस समितिके सामने अमुक प्रश्न विचारार्थ उपस्थित किया गया था, वह नम्रतापूर्वक निवेदन करती है कि......" अथवा यों कि—"आपकी वह समिति जिसे अमुक विषय

विचारार्थ सौंपा गया था, निवेदन करती है......" आदि। जब अल्पमत भी अपनी रिपोर्ट पेश करता है, तब अल्पमतके सदस्य कुछ इस प्रकार प्रारम्भ करते हैं कि—"नीचे हस्ताक्षर करनेवाले समितिके अल्पमतवाले लोग बहुमतसे सहमत न होनेके कारण अपना पृथक मत प्रकट करना चाहते हैं" रिपोर्ट सदा अन्य पुरुषमें लिखी जानी चाहिये, चाहे उसका लिखनेवाला केवल एक ही व्यक्ति क्यों न हो।

इस प्रकार तैयार हो जानेके बाद रिपोर्ट प्रथम बार समितिके सामने स्वीकृतिके लिये पेश की जाती है। पहले वाचनमें रिपोर्ट केवल पढ़कर सुनायी जाती है, जिसे सब उपस्थित सदस्य सुनते हैं। इस पाठके समय कोई अन्य कार्यवाही नहीं होती। इस प्रकार एक पूरा पाठ हो जानेके बाद फिर उस रिपोर्टका एक-एक अंश पढ़ा जाता और उसपर अलग-अलग विचार किया जाता है। इसमें संशोधन, समर्थन, विरोध आदि सब कुछ होता है। इसके बाद वह एक निश्चित रूपमें समितिद्वारा स्वीकृत किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक पैरेग्राफके स्वीकार करते समय कुछ-कुछ इस प्रकारका प्रस्ताव पेश किया जाता है कि—"यह पैरेग्राफ रिपोर्टमें शामिल किया जाय।" एक-एक करके जब सब पैरेग्राफोंपर विचार हो चुकता है, और उनका एक निश्चित रूप स्वीकार हो चुकता है, तब पूरी रिपोर्ट तृतीय बार स्वीकारार्थ उपस्थित की जाती है। इस अवसरपर फिर सदस्योंको अधिकार होता है कि वे उस रिपोर्टके किसी अंशके सम्बन्धमें संशोधन, समर्थन या विरोध करें। परन्तु इस बार केवल शब्दोंका या बहुत कम महत्वके अंशोंका विरोध या संशोधन किया जाता है। अधिकांशमें वह रिपोर्ट वैसे ही स्वीकार कर ली जाती है। रिपोर्टको स्वीकार करनेके लिये जो प्रस्ताव समितिमें रखा जाता है, उसका रूप कुछ

कुछ ऐसा होता है—"यह रिपोर्ट समितिकी ओरसे मूलसभामें पेश की जाय।" या "गवाहियों और सबूतोंका यह विवरण मूलसभाके सामने पेश किया जाय" आदि। और इसके बाद उस रिपोर्टके स्वीकृत हो जानेपर यह मूलसभा में पेश की जाती है।

मूलसभामें रिपोर्ट—उपरोक्त ढंगसे तैयार कर चुकनेके बाद रिपोर्ट मूलसभाको दे दी जाती है। मूलसभा अपनी किसी आगामी मीटिंगमें उस रिपोर्टको कार्यक्रममें रखती है। जब उपयुक्त अवसर आनेपर सभापति उस समितिके अधिकारीसे (जो प्रायः समिति सभापति होता है, अथवा समितिकी आज्ञासे कोई अन्य व्यक्ति भी हो सकता है) रिपोर्ट पढ़नेके लिये आदेश देता है। आदेश पानेके बाद वह अधिकारी खड़ा होकर सभापतिको सम्बोधित कर और उसका ध्यान आकर्षित करके रिपोर्टका पाठ करता है और उसके बाद वह रिपोर्ट सभापतिको, मन्त्रीको या अन्य पदाधिकारीको दे देता है। यदि कार्यक्रममें रिपोर्टके लिये कोई स्थान न दिया गया हो, तो समितिका सभापति किसी ऐसे अवसरपर, जब सभाके सामने कोई प्रश्न छिड़ा न हो, खड़ा होकर अपनी रिपोर्ट पेश करनेका अवसर मांग सकता है और सभापति एवं सभा यदि उसे उचित समझे, तो समय दे सकती है और तब वह अपनी रिपोर्ट पढ़ सकता है, अन्यथा नहीं। रिपोर्ट जब मूल-सभाको सौंप दी जाती है, तो स्थायी समितियोंको छोड़कर अन्य समितियां उसी समय अपने आप भंग हो जाती हैं। उनके लिये भंग करनेके प्रस्तावकी आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु यदि समितिने अपने कामका एकाध हिस्सा ही पूरा किया हो, तो बाकी का हिस्सा पूरा करनेके लिये वह बनी रहती है। यदि किसी प्रश्नके सम्बन्धमें अल्पमतवालोंने पृथक रिपोर्ट पेश की हो, तो बहुमतकी रिपोर्ट पेश करनेके

तुरन्त बाद ही रिपोर्टके बाचनेवालेको इस बातकी सूचना सभाको दे देनी चाहिये। ताकि उस रिपोर्टके बाद ही अल्पमतवाली रिपोर्ट भी सभामें बांची जा सके। बहुमतवाली रिपोर्टके सम्बन्धमें मूल-सभाके सामने यह प्रस्ताव आता है कि यह रिपोर्ट स्वीकार की जाय, जब कि अल्पमतकी रिपोर्टके सम्बन्धमें यह प्रस्ताव पेश किया जाता है कि बहुमतकी रिपोर्टके स्थानपर यह अल्पमतकी रिपोर्ट स्वीकार की जाय। रिपोर्ट जब सभाके सामने बांचनेके लिये पेश की जाती है, तब इस प्रकारका प्रस्ताव रखा जाता है कि "रिपोर्ट 'सुनी' जाय" और जब उसे स्वीकार करनेके लिये प्रस्ताव उपस्थित किया जाय, तब शब्द हों कि "रिपोर्ट 'स्वीकार' की जाय।" इन दोनोंके अन्तर पर ध्यान रखनेकी आवश्यकता है।

मूल-सभाके सामने रिपोर्ट पेश हो जानेकी हालतमें जैसी रिपोर्ट होती है, उसी प्रकार वह स्वीकृत भी की जाती है। यदि रिपोर्टमें और कोई बात न हुई केवल किसी विषयपर एक वक्तव्य तैयार करनेके लिये ही समिति बनायी गयी हो और उसके बाद वक्तव्य मात्र तैयार करके दिया गया हो, तो उस वक्तव्य पर कार्यवाही करनेका कोई प्रस्ताव नहीं पेश किया जायगा। रिपोर्ट पढ़नेवाले व्यक्तिके अतिरिक्त अन्य कोई सदस्य खड़ा होकर इतना कहेगा कि यह वक्तव्य स्वीकार किया जाय और उसके बाद बहुमत द्वारा वह स्वीकार किया जायगा। इस स्वीकृतिका अर्थ केवल यह होगा कि मूल-सभा स्वयं भी इससे सहमत है। यदि वक्तव्य आर्थिक प्रश्नके हिसाब-किताब आदिके सम्बन्धमें हो, तो मूल-सभा द्वारा उसकी स्वीकृति न होकर वह एक प्रस्ताव द्वारा आय-व्यय-परीक्षक या उसके अभावमें आर्थिक समिति (जो यदि पहले हीसे बनी न होगी, तो उसी समय बनायी जायगी) के सुपुर्द किया जायगा।

यदि रिपोर्टके साथ प्रस्तावके रूपमें नहीं, सिफारिशके रूपमें कुछ बातें कही गयी हों, तो उन्हें सदा रिपोर्टके अन्तमें रखना चाहिये। और इनकी स्वीकृतिके लिये प्रस्ताव रखनेका उचित रूप यह है कि—"यह सिफारिशें स्वीकार की जायं।"

यदि रिपोर्टकी समाप्ति प्रस्ताव या प्रस्तावोंके साथ हुई हो, तो रिपोर्ट पाठ करनेवाले सदस्यके लिये प्रस्ताव करनेका उचित ढंग यह है कि ये प्रस्ताव स्वीकार किये जायं।

यदि समितिके विचारके लिए कोई प्रस्ताव ही दिया गया हो तो, यदि उस प्रस्तावके सम्बन्धमें, सुपुर्द करते समय अनिश्चित समयके लिये स्थगित करनेका प्रस्ताव आया हो और उस पर विचार न हो सका हो तो समिति स्थगित करनेवाले उपरोक्त प्रस्ताव पर ध्यान न देगी। और यदि उस समय कोई संशोधन छिड़े हुए हों तो समिति अपनी रिपोर्ट पेश करते समय उन संशोधनोंका उल्लेख अवश्य करेगी। यदि ऐसे प्रस्तावोंके सम्बन्धमें समिति उन्हें स्वीकृत करनेकी सिफारिश करे अथवा किसी प्रकारकी सिफारिश ही न करे तो समितिकी रिपोर्ट पेश हो जानेके बाद पहिले उन संशोधनोंपर विचार करना चाहिए जो उस समय छिड़े हुए थे, जब प्रस्ताव समितिके सुपुर्द किया गया था। यदि समिति यह सिफारिश करे कि प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जाय तो सभापति समितिकी सिफारिशकी उपेक्षा करके मूल प्रस्ताव पर विचार करनेका आदेश देगा। यही कार्य-पद्धति उस समय व्यवहारमें आती है, जब समिति किसी संशोधनको अस्वीकार करनेकी सिफारिश करती है। यदि समिति यह सिफारिश करे कि प्रश्न अनिश्चित या निश्चित समयके लिए स्थगित कर दिया जाय तो सभामें पहिले स्थगित करनेके सम्बन्धमें विचार किया जायगा,

उसके बाद मूल प्रस्ताव पर। यदि समितिने किसी प्रस्ताव या पत्र-व्यवहारमें संशोधन पेश किये हों तो सभामें पहिले उन संशोधनोंपर विचार किया जायगा और एक-एक करके सब संशोधनोंपर सम्मतियां ली जायंगी। इन संशोधनों के सम्बन्धमें भी सभासद संशोधन आदि उपस्थित कर सकते हैं। इस प्रकारकी कार्यवाहीके बाद यदि वे स्वीकृत हो जायं तो संशोधित रूपसे प्रस्ताव या पत्र-व्यवहार स्वीकृत करनेका प्रस्ताव पेश किया जायगा। इस कार्य-पद्धतिका अनु-सरण न कर सभाकी सम्मति (General consent) से रिपोर्ट पूरी की पूरी ऐसे ही स्वीकार की जा सकती है। जब सुभात्मक समिति (Commitee of whole) ने कोई संशोधन उपस्थित किये हो तब वादविवाद की गुंजाइश नहीं रहती, क्योंकि उनके सम्बन्धमें सब लोग पहिले ही वाद विवाद कर चुकते हैं। उस दशामें, उन स्थलोंको छोड़कर जिनपर अलगसे वोट लेना जरूरी है शेष स्थलोंको एक साथ ही वोटके लिए पेश कर दिया जाता है। इसके बाद अलगसे वोट लिये जानेवाले स्थल पेश किये जाते हैं। यदि समितिने यह रिपोर्ट दी हो कि उस प्रस्तावके पहले जो उसे सुपुर्द किया गया अमुक प्रस्ताव जिसे समिति स्वयं बनाकर देगी, पेश किया जाय तो, यदि सुपुर्द करते समय मूल प्रस्तावके साथ संशोधन भी रहे हों तब तो पहिले उन संशोधनोंपर विचार किया जायगा और उस मूल प्रस्तावका संशोधित रूप तैयार कर लिया जायगा और यदि सुपुर्द करते समय संशोधन न रहे हों तो उस प्ररतावका रूप तैयार रहेगा ही। इस प्रकार मूल प्रस्ताव और उसके स्थानपर आनेवाला समितिका प्रस्ताव—दोनोंका निश्चित रूप सभाके सामने आयेगा। तब सभा पहिले स्थानापन्न प्रस्तावपर विचार करेगी और उसके बाद मूल प्रस्ताव पर। यदि स्थानापन्न प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया

जाय तो मूल प्रस्ताव पर उपस्थित सदस्यगण संशोधन आदि पेश कर सकेंगे। नामजदगी और सदस्यताके लिए की गई समितिकी सिफारिशोंके सम्बन्धमें तुरन्त वोट ले लिये जाते हैं।

यदि समितिकी पूरी रिपोर्ट सामने न आयी हो, केवल उतना भाग उसकी ओरसे पेश किया गया हो, जितनेपर समितिने विचार कर लिया हो तो उसपर भी इसी प्रकार कार्यवाही की जायगी, जिस प्रकार पूरी रिपोर्टके पेश होनेकी हालतमें होती है। सभाओंमें रिपोर्ट पेश करनेके बाद साधारण नियम यह है कि सभाका कोई सदस्य, अधिकांशमें वह रिपोर्टका बाचनेवाला ही होता है, यह प्रस्ताव करता है कि रिपोर्ट स्वीकार की जाय। परन्तु यदि सभाकी ओरसे उसकी स्वीकृतिके लिए कोई प्रस्ताव न आये तो सभापति बिना इस प्रकारके शिष्टाचारके भी अपनी ओरसे उसे विचारार्थ उपस्थित कर सकता है। ऐसा नहीं हो सकता कि सभा समिति द्वारा उपस्थित की गयी उस विषयकी रिपोर्टपर कोई विचार न करे जो उसे सौंपा गया था। रिपोर्ट पर विचार करनेमें मूल सभा भी उसी कार्य-पद्धतिसे काम लेती है जिससे रिपोर्ट समितिके अन्दर स्वीकार की जाती है। रिपोर्टमें अधिक और महत्वपूर्ण संशोधन नहीं किये जा सकते। वह अस्वीकार या पुनः सुपुर्द भले कर दी जाय। जब सब रिपोर्ट थोड़ी-थोड़ी करके स्वीकार हो जाय, तब समष्टि रूपसे पूरी रिपोर्ट स्वीकार करनेका प्रस्ताव किया जाता है। उस समय स्वीकार करनेके प्रस्ताव पर और रिपोर्ट पर—किसीपर कोई संशोधन नहीं उपस्थित किये जा सकते।

कार्यकारिणी समिति—समितियोंमें कार्यकारिणी समितिका स्थान सब से अधिक महत्वपूर्ण होता है। कार्य-समिति प्रायः बड़ी सभाकी समकक्ष होती है। जहांतक कार्य करनेका सम्बन्ध है, वहांतक तो वह शायद बड़ी

सभासे भी अधिक शक्ति-शालिनी होती है। सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों मंतव्यों, सिद्धान्तों आदिको कार्य-रूप देना इसी समितिका काम है। बड़ी सभा जो नीति निर्धारित कर देती है, उसपर आरूढ़ रह कर यह समिति सब काम किया करती है। इसके लिए उसे बड़ी सभासे सलाह मशविरा लेनेकी भी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु इतनी आजादी होते हुए भी यह बड़ी सभा से अधिक प्रभावशाली नहीं है। बड़ी सभा चाहे तो इसके किये हुए कामों-को रद्द कर सकती है। कार्य-समिति कोई कार्य ऐसा नहीं कर सकती जो बड़ी सभाके प्रस्तावों, मन्तव्यों, सिद्धान्तों या नीतिके विरुद्ध हो। उसे बड़ी सभाके प्रस्तावों आदिमें परिवर्तन, संशोधन आदि करनेका अधिकार भी नहीं होता, और न कार्य-समिति सभाके किसी नियमको ही परिवर्तित संशोधित कर सकती है। वह तो एक प्रकारसे बड़ी सभाकी मुख्तार आम होती है, जो उसकी नीतिपर चलकर उसके कार्योंका सम्पादन किया करती है।

कार्य-समितिका संगठन भी लगभग उसी प्रकार होता है जिस प्रकार बड़ी सभा का। अर्थात् उसमें सभाके सदस्योंके प्रत्येक समूहके प्रतिनिधि रहते हैं, सभापति, मंत्री, तथा अन्य पदाधिकारी भी रहते हैं, जब कि अनेक अन्य समितियोंके लिए यह आवश्यक नहीं होता कि उनमें सब विचारों और समूहोंके प्रतिनिधि रहें या सभापति और मन्त्रीके अतिरिक्त अन्य पदाधिकारी रहें।

स्वागत समिति—व्यापकता और महत्ताकी दृष्टिसे कार्यसमितिके बाद स्वागत समितिका नम्बर आता है और विस्तारकी दृष्टिसे तो यह समिति अन्य सभी समितियोंसे अधिक बड़ी है। स्वागत समिति वास्तवमें एक स्वतन्त्र सभा-सी ही है, जो इसलिये निर्मित की जाती है कि भविष्यमें होनेवाली बड़ी सभाके किसी अधिवेशनका समस्त आयोजन करे। जब यह आयोजन बहुत

बड़े रूपमें होता है, तब विभिन्न स्थानोंसे निर्वाचित होकर सैकड़ों-हजारों प्रतिनिधि आते हैं, उनके स्वागत-सत्कारकी व्यवस्था तथा अधिवेशन सम्बन्धी अन्य तैयारियोंकी चेष्टा आदि करनेके लिये इस समितिकी आवश्यकता पड़ती है। जब अधिवेशन बहुत विस्तृत नहीं होता, तब स्वागत-सत्कारका काम करनेके लिये जो समिति बनती है, उसे संयोजक समिति कहते हैं, और कभी-कभी तो एकाध संयोजक ही सब व्यवस्था कर लेता है।

स्वागत समितिका संगठन बिलकुल एक स्वतन्त्र सभाकी भांति होता है। यह वास्तवमें स्वतन्त्र सभा है ही, जिसमें पदाधिकारी, सदस्यों आदिके अतिरिक्त अपनी कार्यसमिति तथा कार्योंकी विभिन्नताके अनुरूप अन्यान्य उप-समितियां भी होती हैं। परन्तु ये सब समितियां और उपसमितियां काम करती हैं, उस अधिवेशनको सफल बनानेमें सहायता पहुंचानेके विचारसे ही। उसके अतिरिक्त अन्यान्य कार्योंमें हाथ डालना उनके लिये अनधिकार चेष्टा कही जायगी। जिस विशेष अधिवेशनकी तैयारीके लिये स्वागत समितिका निर्माण किया जाता है, उसके समाप्त हो जानेके बाद स्वागत समितिका कार्य भी समाप्त हो जाता है। उसके बाद वह अपने कार्यों तथा उस अधिवेशनकी रिपोर्ट प्रकाशित कर विसर्जित हो जाती है।

स्थायी समिति (स्टैण्डिङ्ग कमेटी)—ऊपर कहा जा चुका है कि विशेष विशेष कार्योंका प्रतिपादन करनेके लिये अलग अलग समितियां बना दी जाती हैं। परन्तु जब कारपोरेशन, डिस्ट्रिक्ट या म्युनिसिपल बोर्ड आदि जैसी संस्थाओंमें भिन्न-भिन्न विषयोंके कार्य बराबर पड़ा ही करते हों, तब प्रति वार अलग अलग समिति बनाकर कार्य-प्रतिपादन करनेके बजाय विशेष विशेष कार्योंके लिये स्थायी समितियां बना दी जाती हैं। जैसे अर्थ-समिति, प्रचार-

समिति, शिक्षा समिति आदि। ये समितियां अपने-अपने विषयके प्रश्नोंपर बराबर विचार करती रहती हैं। जब-जब इन समितियोंके विषयोंपर मूल सभा-के सामने प्रश्न आते हैं, तब-तब मूल सभा उन्हें इनके सुपुर्द कर देती है और ये उनपर विचार-अनुसन्धान कर अपनी रिपोर्ट सभाके सामने पेश करती हैं। इस प्रकार इनका कार्यकाल प्रसंग-विशेषके लिये बनी हुई अस्थायी समितियोंसे अधिक लम्बा होता है। जब कि अस्थायी समिति अपना एक काम, जो उसे सुपुर्द किया जाता है, करके खतम हो जाती है, तब ये स्थायी समितियां उस प्रकारके दर्जनों काम करके भी खतम नहीं होतीं। उनका खातमा तब होता है, जब उन्हें नियुक्त करनेवाली बड़ी सभा ही खतम हो जाती है।

विशेष समिति—कभी-कभी सभाके सामने किसी विशेष विषयके गंभीर प्रश्न आ उपस्थित होते हैं। उनपर विचार करनेके लिये यह आवश्यक होता है कि उस विषयके विशेषज्ञोंकी एक समिति बना दी जाय, जो उस विषयपर उचित और आवश्यक सुविधाके साथ विचार कर सके। इस प्रकारकी समिति-को विशेष समिति कहते हैं। अपने विचारणीय विषयपर विचार कर चुकनेके बाद इस समितिका विसर्जन हो जाता है। विषय-निर्वाचिनी समिति आदि इसी कोटिकी समितियोंमें आती हैं।

उपसमिति– उपसमितियां उन समितियोंको कहते हैं, जो समितियों द्वारा निर्वाचित या नियुक्त की जाती हैं। समितियोंके पास जब अधिक या विशेष कार्य आ जाता है, तब अपनी सुविधाके लिये वे अन्य छोटी समितियां बना देती हैं, जो उस विशेष विषयपर विचार या अनुसन्धान करके अपनी रिपोर्ट पेश करती हैं, जो समिति द्वारा स्वीकृत हो जानेके बाद समितिके द्वारा ही मूल सभामें पेश की जाती है। उपसमितियोंका कार्यकाल उस विशेष

विषयपर विचार करनेके बाद समाप्त हो जाता है। उपसमितियाँ सभात्मक समिति (Committee of the whole) को छोड़कर अन्य सब समितियाँ बना सकती हैं।

सभात्मक समिति—(Committee of the whole) यह समिति बड़ी विचित्र-सी समिति है। जब सभाके सामने कोई ऐसा विषय उपस्थित होता है, जिसे सभा समितिके सुपुर्द करना नहीं चाहती—चाहे इसलिये कि समिति आदिका संगठन करने और फिर उस समितिको विचार करनेका अवसर देने आदिमें अधिक समय लगेगा (अधिकांशमें यही कारण होता है) चाहे किसी अन्य कारणसे—तब वह स्वयं उपस्थित सभाको ही समिति मान लेती है। एक प्रस्ताव द्वारा यह स्वीकृत कर लिया जाता है कि यह सभा समितिके रूपमें परिणत की जाती है और फिर उस विषयपर वही सभा विचार करती है। उस अवस्थामें समितियोंको जो सुविधाएं प्राप्त हैं, वे सब सुविधाएं उस सभाको प्राप्त हो जाती हैं और उस विषयपर विचार करनेमें सुविधा मिलती है। जब सभाको समिति माननेका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है, तब सभाका सभापति तुरन्त अपना आसन छोड़ देता है और उसके स्थानपर समितिका कोई अन्य व्यक्ति सभापति निर्वाचित कर लिया जाता है और कार्य आरम्भ हो जाता है। यह समिति उपसमितियोंको कोई विषय सुपुर्द नहीं कर सकती। सभापतिके निर्णयपर इसमें अपील की जा सकती है, परन्तु उसपर तुरन्त वोट ले लेने पड़ेंगे, वह भविष्यके लिये स्थगित नहीं की जा सकती। इसी प्रकार स्थगित करने आदिके प्रस्ताव सभात्मक समितिके सामने नहीं पेश किये जा सकते।

सभात्मक समितिका रूपान्तर—(As if in the committee of the whole) कभी-कभी ऐसा होता है कि सभात्मक समितिकी पूर्वोक्त विधिसे स्थापना न करके केवल इस प्रकारका प्रस्ताव किया जाता है कि अमुक प्रश्नपर सभात्मक समितिकी भांति विचार किया जाय। इससे सभात्मक समितिकी अपेक्षा सभाको थोड़ी अधिक सुविधा मिल जाती है। सभात्मक समितिमें वर्तमान सभापतिकोबदलनेकी आवश्यकता पड़ती है, जबकि इसमें वही सभापति बना रहता है, और कमेटीकी सब सुविधाएं इसे प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार विचार करते समय यदि कोई प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है या विचारणीय प्रश्नके सम्बन्धमें कोई निर्णय कर लिया जाता है, तो तुरन्त ही समिति भंग मान ली जाती है। इसके बाद सभापति उस प्रस्ताव या निर्णयकी घोषणा करता है। वह घोषणा उस समितिकी रिपोर्टके रूपमें स्वीकार की जाती है और उसका उल्लेख भी सभाकी कार्यवाहीमें आता है। यह व्यवस्था बहुत ही थोड़े समयके लिये होती है।

ऊपर सभात्मक समिति या सभात्मक समितिका रूपान्तर शीर्षकसे जिन व्यवस्थाओंका उल्लेख किया गया है, वे बहुत कम, पिछली तो एकदम ही कम व्यवहारमें आती है। फिर भी विषयकी सम्यक् जानकारीके अभिप्रायसे उनका उल्लेख यहां किया गया है।

सभाचारविहीन विचार—(Informal consideration) साधारण सभाओंमें सभात्मक समितियों आदिकी अपेक्षा सभाचारका ख्याल छोड़कर किसी विषयपर विचार करनेकी प्रथा अधिक प्रचलित है। जब किसी विषयपर सभामें विचार करनेमें कठिनाई आती है और सभाचारकी उपेक्षा करके उसपर विचार करनेकी बात सभासदगण सोचते हैं, तब वे इस आशयका एक प्रस्ताव

उपस्थित करते हैं कि "अमुक प्रस्तावपर सभाचारकी उपेक्षा करके विचार किया जाय।" (The question should be considered informally) इसके स्वीकृत हो जानेके बाद प्रस्तुत विषयपर आजादीके साथ विचार होगा। इसमें जैसाकि सभात्मक समितिमें भी, प्रधान प्रस्ताव और उसके संशोधनोंपर ही विचार किया जाता है। यदि कोई नया प्रस्ताव उठाया गया, तो उस विषयपर सभाचारके अनुसार ही व्यवहार किया जायगा। इसमें एक सदस्य कई बार उसी हालतमें बोल सकेगा, जब कोई अन्य सदस्य बोलनेवाला न हो। इस प्रकार विचार यद्यपि सभाके नियन्त्रणसे मुक्त रहते हैं, तथापि उसपर लिये गये वोट सभाचारसंगत माने जाते हैं और ज्योंही प्रस्तुत विषयपर कोई निर्णय कर लिया जाता है, चाहे वह अल्पस्थायी हो, चाहे स्थायी, त्योंही सभाचारमुक्त विचारका अधिकार छूट जाता है। इसमें सभापतिको कोई रिपोर्ट नहीं सुनानी पड़ती। सभा-नियन्त्रण-विहीन निर्णय ही सभाका निर्णय हो जाता है।

स्थायी सभाओंका संगठन।

परामर्श सभा—जब किसी प्रकारकी स्थायी सभाका संगठन करना होता है, तब पहले तो जिस व्यक्तिके मनमें सबसे पहले उस सभाके संगठन का विचार उत्पन्न होता है, वह अपने मिलनेवाले अथवा ऐसे अन्य लोगोंसे बातचीत करता है, जो उस विचारसे सहानुभूति रखते हैं। इस प्रकार कुछ व्यक्तियोंसे चर्चा करनेके बाद अथवा बिना चर्चा किये हुए ही (क्योंकि हर हालतमें बातचीत कर लेना आवश्यक ही नहीं होता) वह व्यक्ति अथवा यदि पहिलेसे कुछ व्यक्तियोंसे वह विचार कर चुका है, तो व्यक्तियोंका एक समूह ऐसे सब आदमियोंकी एक सभा करता है, जो उस सोचे हुए नियमसे दिलचस्पी रखते हैं। सभा बुलानेमें अक्सर यह किया जाता है कि बुलानेवाले व्यक्तियोंमें प्रभावशाली नाम सम्मिलित कर लिये जाते हैं, जिससे कि लोगोंका आकर्षण हो और उपस्थिति अच्छी हो। इस प्रकार एक परामर्श सभा की

जाती है। परामर्श सभामें यदि स्थायी संगठनका निश्चय हुआ, तो यह भी निश्चय कर लिया जाता है कि उसके सदस्य किस नियमके अनुसार बनाये जायं।

संयोजक समिति---इस सभामें परामर्श करनेके बाद यदि सबकी इच्छा हुई कि सभाका स्थायी संगठन किया जाय, तो दूसरा काम यह किया जाता है कि उसी सभामें एक संयोजक समिति या अस्थायी सभा बना दी जाती है। कभी-कभी समिति न बनाकर एक व्यक्ति ही निर्वाचित कर लिया जाता है। यह समिति, (सभा या व्यक्ति) स्थायी संगठनके लिये आवश्यक कार्य करता है। इस समितिमें मन्त्री और कोषाध्यक्ष प्रायः दो ही पदाधिकारी बनाये जाते हैं। अन्य पदाधिकारियोंकी इनमें आवश्यकता नहीं होती। इसका कार्य केवल यह होता है कि वह परामर्श सभाद्वारा निर्धारित नियमके अनुसार सभाके सदस्य बनावे, चन्दा एकत्र करे, तथा उसके संगठनके लिये आवश्यक प्रचार-कार्य आदि करे। जिस समय इस प्रकारकी समिति बनायी जाती है, उस समय प्रायः यह भी निश्चय कर दिया जाता है कि समिति अमुक समय तक अपना कार्य समाप्त कर दे। उस निर्धारित समयपर (प्रायः यह अवधि समयके आधारपर नहीं, सदस्योंकी संख्याके आधारपर निर्धारित की जाती है। अर्थात बजाय इसके कि "एक महीनेके अन्दर स्थायी संगठनके लिये सभा की जाय" कहा यह जाता है कि "जब १०० सदस्य बन जायं, तब स्थायी संगठन के लिये सभा की जाय" आदि) परन्तु यह कोई निश्चित नियम नहीं है। समयके आधारपर भी अवधि निर्धारित की जाती है। जब यह अवधि समाप्त हो जाती है, तब संयोजक समिति स्थायी संगठनके लिये सभा बुलाती है, जिसमें उसके सदस्य ही शामिल हो सकते हैं।

स्थायी संगठन—स्थायी संगठनके लिए जो सभा होती हैं उसमें फिर यह विचार करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि सभाका स्थायी संगठन होना चाहिये अथवा नहीं, क्योंकि यह निश्चय करके ही तो कार्य आरम्भ किया जाता है। इस सभामें सबसे प्रथम कार्य किया जाता है सभा के नियमोंपनियम बनानेका। ये नियम या तो वहीं पर बैठकर बना लिये जाते हैं, अथवा इनके लिए फिर एक समिति नियुक्त या निर्वाचित कर दी जाती है, जो नियमोपनियम बनाकर सभाकी दूसरी बैठकमें पेश करती है। नियम दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। नियम और उपनियम।

नियम—वास्तवमें ऊपर लिखे गये दोनों भेद एक ही वस्तु हैं, फिर भी कुछ सुविधाओं और नियमोंकी गुरुता और लघुताके विचारसे भेद कर दिये गये हैं। नियम उन नियमोंको कहते हैं जो बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण होते हैं, और साधारणतः जिनको स्थगित नहीं किया जा सकता। नियमके अन्दर साधारणतः निम्नलिखित बातें आती हैं।—

१—संस्थाका नाम क्या हो।

२—उसका उद्देश्य क्या हो।

३—सदस्यताके लिये आवश्यक योजना क्या हो।

४—पदाधिकारी कौन-कौन और कितने-कितने हों।

५—उनका निर्वाचन किस ढंगसे किया जाय।

६—कार्य-समितिका निर्वाचन (यदि उसके बनानेकी आवश्यकता अनुभव हो तो) कैसे किया जाय।

७—मीटिंगें कैसे की जांय। (इसकी विस्तृत बातें उपनियमके लिए छोड़ दी जायंगी।)

८—नियमोंमें संशोधन कैसे किया जा सकता है।

अन्तिम बातके सम्बन्धमें यह ध्यान रखना चाहिये कि नियमोंके संशोधन के लिये दो बातें विशेष रूपसे आवश्यक होती हैं। एक तो यह कि संशोधन की सूचना पहलेसे सदस्योंको दी जाय। दूसरे यह कि संशोधन दो तिहाई या तीन चौथाई वोटोंसे ही स्वीकार किया जाय, केवल बहुमतसे नहीं। इस नियमको लिखते समय इन दो बातोंका उल्लेख अवश्य कर देना चाहिये। और यह होते हुए भी बार-बार परिवर्तन न करना चाहिये।

उपनियम—उपनियमोंके अन्दर ऐसी हिदायतें रहती हैं, जो नियमोंमें नहीं होतीं, साथ ही वे इतनी महत्वपूर्ण होती हैं कि उनके स्थगित करनेके लिये सूचनाकी आवश्यकता होती है। परन्तु जो हिदायतें कार्य-संचालन आदि के सम्बन्धकी होती है, उनके लिये पूर्व सूचनाकी आवश्यकता नहीं होती। कुछ उपनियम ऐसे भी होते हैं, जिनके स्थगित करनेके सम्बन्धमें स्पष्ट रूपसे नियमावलीमें जिक्र रहता है। और यदि उस प्रकारका जिक्र नियमावलीमें न हो तो वे स्थगित नहीं किये जा सकते। उपनियमोंमें नियमोंकी अपेक्षा कुछ अधिक संकीर्ण बातोंका उल्लेख होता है। इनमें ऐसी हिदायतें भी होती हैं, जिनका सम्बन्ध केवल संस्थाके कार्य-संचालनसे ही होता है। कुछ ऐसी हिदा-यतें भी होती हैं, जिनमें पदाधिकारियोंके कर्तव्यों आदिका निर्देश होता है। पदाधिकारियोंके अधिकार और कर्तव्य संस्थाएं अपनी अपनी सुविधाके अनुसार घटा बढ़ाकर रखती हैं। फिर भी अधिकांश बातें ऐसी होती हैं, जो संस्थाओं में समान रूपसे पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त इन नियमोंमें अन्यान्य बातों के साथ-साथ ऐसी बातें भी रहती हैं, जो रोजाना कामके साथ सम्बन्ध रखती हैं। जैसे कार्यालय अमुक समय खुलेगा, अमुक समय बन्द होगा आदि।

इस प्रकार बालकी खाल निकालकर नियमोपनियमके ४ भेद भी किये गये हैं, परन्तु साधारणतः दो भेद ही होते हैं, जिनमें विधान या नियम तो अलग होते हैं और बाकीके तीन उपनियमोंके अन्दर आ जाते हैं।

कोई व्यवस्था-सम्बन्धी नियम या प्रस्ताव, जो नियमोपनियम अथवा कार्य-संचालनके विरुद्ध होगा, वह जायज नहीं माना जायगा।

नियमोपनियमोंका संशोधन——नियमोपनियमोंके संशोधनके सम्बन्ध में यदि पहलेहीसे किसी बातका उल्लेख न हुआ हो, तो किसी भी मीटिंगमें उसका संशोधन किया जा सकता है, बशर्ते कि उस संशोधनके पक्षमें सभाकी पूर्ण सदस्य संख्याके दो तिहाई सदस्य हों। परन्तु यदि उस संशोधनके सम्बन्धमें पहलेसे सूचना दे दी गयी हो, तो उपस्थित सदस्योंकी दो तिहाई संख्या से भी संशोधन किया जा सकता है। नियमोंके संशोधनका संशोधन भी यदि उपस्थित किया जाय, तो उस दशामें यह ध्यान रखना होगा कि यह अन्तः संशोधन ऐसा हो, जो मूल-नियमको अपने उद्देश्यसे और भी अधिक दूर न फेंक देता हो।

पदाधिकारियोंका निर्वाचन—नियमोपनियम तैयार हो जानेपर वे दूसरी बैठकमें सभाके सामने पेश किये जाते हैं और जब वे संशोधन परिवर्तन आदिके साथ सभाद्वारा स्वीकृत कर लिये जाते हैं, तब उन्हींके अनुसार पदाधिकारियोंका निर्वाचन किया जाता है। पदाधिकारियोंके निर्वाचन की सर्वमान्य प्रणालियोंद्वारा किया जाता है, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस प्रकार सभापति, उपसभापति आदि समस्त पदाधिकारियोंका स्थायी निर्वाचन किया जाता है। इस निर्वाचनके साथ ही अस्थायी संयोजक या अन्य पदाधिकारियोंका निर्वाचन रद्द हो जाता है। जब पदाधिकारियोंका

स्थायी निर्वाचन हो जाता है, तब सभाका वास्तविक रूप बनता है। इसके बाद निर्वाचित सदस्योंके पास सूचना जाती है कि वे अमुक-अमुक पदके लिये अथवा सदस्यताके लिये निर्वाचित किये गये। यह सूचना प्रायः सभाका निर्वाचित मन्त्री भेज देता है। परन्तु यदि सभा नयी-नयी ही संगठित हुई हो, तो अच्छा यह होता है कि निर्वाचनकी सूचना उस सभापतिके हस्ताक्षरोंसे भेजी जाय, जिसके सभापतित्वमें निर्वाचन किया गया है।

वार्षिक अधिवेशन—स्थायी संगठित सभाओंमें प्रायः सबकी अपनी कार्य-समिति होती है। अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) में तो कार्य-समितिके अतिरिक्त अ० भा० कांग्रेस कमेटी भी है। जब संस्थाएं बड़ी होती हैं, तब इस प्रकारकी समितियां बना ली जाती हैं। इन समितियोंकी बैठकें कार्य-संचालनकी आवश्यकताके अनुसार हुआ करती हैं। इसके अतिरिक्त यदि बीचमें ही कोई बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ गयी, तो मूल सभाओंके विशेष अधिवेशन भी हो जाया करते हैं। परन्तु साधारण तौरपर इनके वार्षिक अधिवेशन ही होते हैं। इन वार्षिक अधिवेशनोंमें संस्थाके सदस्य भाग लेते हैं। परन्तु जब सदस्य-संख्या बहुत अधिक होती है, इतनी कि यदि सब-के-सब भाग लें, तो सबका नियन्त्रण करना और सबके लिये स्थान देना भी असम्भव हो जाय, तब सदस्योंमेंसे खास-खास हलकेसे निर्वाचित होकर प्रतिनिधि इन वार्षिक अधिवेशनोंमें आते और कार्यवाहीमें भाग लेते हैं। प्रतिनिधियोंके अतिरिक्त दर्शक स्वागत समितिके सदस्य आदि भी इन अधिवेशनोंमेंआते हैं, पपन्तु वे कार्यवाहीमें भाग लेनेके अधिकारी नहीं होते।

वार्षिक रिपोर्ट—स्थायी सभाओंका यह नियम है कि वार्षिक अधिवेशन पहले वर्ष भरके अपने कार्यका विवरण अधिवेशनमें उपस्थित जनसमुदायको

सुनानेके लिये तैयार कर लें। वार्षिक अधिवेशनोंमें जो जनसमूह एकत्र होता है, वह स्वभावतः यह जानना चाहता है कि जिस संस्थाका यह अधिवेशन हो रहा है, उसने क्या-क्या कार्य किये हैं। इसके अतिरिक्त सभाके हितकी दृष्टिसे भी यह आवश्यक होता है कि वह अपने कार्योंका व्यौरा जनताके सामने उपस्थित करे, ताकि जनता उनसे परिचित हो और उसे जनताकी सहानुभूति उपलब्ध हो। कार्योंका यह व्यौरा साधारणतः वार्षिक ही होता है, इसलिए यहाँ वार्षिक कार्य-विवरणका शीर्षक दिया गया है। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कई वर्षतक सभा अपना अधिवेशन नहीं कर पाती, उस अवस्थामें कई वर्षका कार्य-विवरण एक साथ भी तैयार कर लिया जाता है। इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि कोई सभा अपना छमाही, तिमाही या मासिक कार्य-विवरण दे। कोई और आगे बढ़ें, तो साप्ताहिक और दैनिक कार्य-विवरण भी दे सकती है। परन्तु ये सब विशेष अवस्थाएं हैं, सामान्य नहीं।

वार्षिक कार्य-विवरणमें, जिस वर्षका वह विवरण है उसके प्रारम्भमें वर्तमान पदाधिकारियोंने जिस समय काम हाथमें ले लिया, उस समय संस्थाकी क्या अवस्था थी, फिर उस समयकी किन-किन परिस्थितियोंमें सभाने कौन-कौनसे काम किये, उन कामोंमें कहांतक सफलता प्राप्त हुई, सदस्योंने कहांतक सहयोग दिया, जनताने कैसी सहानुभूति प्रदर्शित की, वर्ष भरमें कितने उत्सव आदि मनाये गये, आदि बातें सभाके निर्दिष्ट कार्यक्रम और उद्देश्योंके अनुसार लिखी जाती हैं। जिन लोगोंने सभाको सहयोग या सहायता प्रदान की है, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी विवरणका आवश्यक अंग है। इसके अतिरिक्त हिसाब-परीक्षक द्वारा जांचा और स्वीकृत किया हुआ वर्ष भरके आय-व्ययका विवरण भी वार्षिक कार्य-विवरणके साथ प्रकाशित किया जाता है। साथमें

अलगसे जिन चन्दा दाताओंसे जितना रुपया मिला हो, उनके उतने रुपयोंके लेखेके साथ उनके नाम भी प्रकाशित करने चाहिये ताकि वे देख सकें कि उनकी रकमें यथोचित रूपसे जमा की गयी हैं।

कार्य-भारका परिवर्तन—जब संस्थाएं स्थायी रूपसे संठित हो जाती है, तब उनके पदाधिकारियों और यदि आवश्यक हुआ, तो कार्य-समिति आदिका निर्वाचन भी वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर ही हो जाता है। इस प्रकार नवीन निर्वाचन समाप्त हो जानेपर पुराने पदाधिकारी अपने-अपने पद-का भार नव-निर्वाचित पदाधिकारियोंको तुरन्त सौंप देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं। उनके पास जो कागजात जो हिसाब-किताब, जो धन-सम्पत्ति, होती है, वह सब वे तुरन्त नव-निर्वाचित अधिकारियोंको सौंप देते और विशेष बातें उन्हें समझा देते हैं। साधारणतः यही नियम बरता जाता है। परन्तु कभी-कभी पारस्परिक कलह आदिके कारण कुछ पदाधिकारी जानबूझ-कर अपने कागज-पत्र नव-निर्वाचित पदाधिकारियोंको नहीं सौंपते। उनका यह व्यवहार अनुचित और आपत्तिजनक होता है। परन्तु उचितानुचितका विचार छोड़कर वे वही करते जाते हैं। ऐसी दशामें नव-निर्वाचित पदाधि-कारियोंके सम्बन्धमें निन्दा आदिके प्रस्ताव पास करा सकें और सभाके शिष्टा-चारके अनुसार उन्हें वे कागजात देनेके लिये बाध्य करें। इसपर भी यदि वे पुराने पदाधिकारी न दें, तो अदालतका मार्ग अवलम्बन किया जा सकता है, और उन्हें कागजात देनेके लिये बाध्य किया जा सकता है।

सभाका कर्ज—कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सभापर कर्ज रह जाता है। साधारण जनसमुदाय जब किसी सभाके लिये कर्ज देता है, तब वह प्रायः उस मन्त्री या अन्य पदाधिकारी (विशेष करके मन्त्री) के व्यक्तिगत

मेल-मुलाहजेसे ही कर्ज देता है। ऐसी अवस्थामें स्वभावतः वह उसी व्यक्तिसे चाहे वह मन्त्री हो और चाहे अन्य पदाधिकारी रूपये चाहता है। दूसरी ओर मन्त्री जब उस संस्थासे अलग हो जाता है, तब अथवा ऐसी अवस्थामें जब सभाके पास धन बिलकुल नहीं रह जाता, तब लाचार हो जाता है। वह दे नहीं पाता। ऐसी अवस्थाएं कभी-कभी आ जाती हैं। इन अवस्थाओंमें यह ध्यान रखनेकी बात है कि यदि सभाकी बाकायदा रजिस्ट्री करा दी जा चुकी है, तब तो कर्ज देनेवाला कोई धनी उस सभाके किसी पदाधिकारीकी व्यक्तिगत सम्पत्तिसे अपने कर्जका धन वसूल नहीं कर सकता, परन्तु यदि संस्थाकी रजिस्ट्री नहीं हुई, तो उसे अधिकार होता है कि वह उस पदाधिकारीकी व्यक्तिगत सम्पत्तिसे अपना कर्ज वसूल करे, जिसने उससे कर्ज लिया है।

फुटकर बातें

डिबेटिंग सोसाइटी—डिबेटिंग सोसाइटियोंका प्रचार इस समय देशमें बहुत अधिक हो रहा है। अतः यहां उस विषयपर अलगसे कुछ बातें लिख देनेकी आवश्यकता है। वैसे तो अन्य सभाओंमें जिस प्रणालीसे काम किया जाता है, प्रायः उसी प्रणालीका अनुसरण डिबेटिंग सोसाइटियोंमें भी किया जाता है, परन्तु फिर भी कुछ विशेषताएं हैं। यहां केवल उन विशेषताओंका उल्लेख ही अभीष्ट है सोसाइटीका संगठन तो साधारण सभाओंकी भांति ही होगी। जिस दिन वास्तवमें वाद-विवाद होता है उस दिन और खासकर विषयको पेश करनेमें, थोड़ा भेद होता है। मीटिंगके दिन सभापति पहिले एक प्रधान वक्ताको खड़ा करके उससे एक विशेष प्रस्ताव चाहे वह नकारात्मक हो चाहे स्वीकारात्मक पेश करवाता है, इसके पेश हो जानेके बाद अन्य साधारण प्रस्तावोंकी भांति उसके समर्थनकी आवश्यकता नहीं होती। उस प्रस्तावके बाद उसके विरोधी दलके प्रधान वक्ताको खड़ा

करके उसका विरोध करवाया जाता है। इसके बाद फिर पक्ष और विपक्षके लोगोंको एक-एक करके बुलाया जाता और उनके भाषण कराये जाते हैं। वक्तृताके समय प्रायः यह भी किया जाता है, यद्यपि यह कोई आवश्यक नियम नहीं है, कि एक-एक पक्षके वक्ता मेजकी अलग-अलग दिशाओंमें खड़े होकर बोलते हैं। जब दोनों पक्षवाले साधारण वक्ता बोल चुकते हैं तब विषयको उपस्थित करनेवाले मूल प्रस्तावकको सबका उत्तर देनेका अवसर मिलता है। अन्य वक्ता दो बार नहीं बोल सकते। परन्तु प्रस्तावकको जवाब देनेका अधिकार होता है। यह उस दशामें किया जाता है, जब पक्ष और विपक्षके लिए समर्थन और विरोध दो ही मार्ग होते हैं। उदाहरणार्थ जैसे एक पक्ष यह समर्थन करे कि समाजसे परदेकी प्रथा हट जानी चाहिए और दूसरा पक्ष यह कहे कि न हटनी चाहिए। यह केवल समर्थन और विरोधकी अवस्था हुई। परन्तु अकसर ऐसी अवस्था भी आती है जब दो विषय बिलकुल अलग-अलग होते हैं, जैसे एक पक्ष यह कहता है कि मानव-समाजकी उन्नतिके लिए शान्ति आवश्यक है। और दूसरा पक्ष कहता है, कि मानव-समाजकी उन्नतिके लिए युद्ध आवश्यक है। यहां केवल शान्तिका विरोध करनेसे युद्धका समर्थन नहीं हो जाता और इसलिए जो युद्धका समर्थन करना चाहते हैं उन्हें अपने पक्षकी बातें अलगसे कहनी पड़ती हैं, जब कि ऊपरवाले उदाहरणमें केवल विरोधसे विपक्षी दलका काम चल जाता है क्योंकि वह परदेका विरोध करनेके अतिरिक्त और कोई नयी बात कहना नहीं चाहता। जब इस प्रकार दो अलग-अलग विषय सामने होते हैं तब पहिले एक-एक करके दोनों विषयोंके प्रधान वक्ताओं द्वारा अपने-अपने विषय पेश कराये जाते हैं और पक्ष-विपक्षकी वक्तृताएं हो जानेके बाद दोनों प्रस्तावकोंको (क्योंकि उस दशामें दोनोंकी हैसि-

यत यही होती है) दुवारा विभिन्न वक्ताओं द्वारा छेड़े हुए प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए बोलनेका अवकाश मिलता है।

इस प्रकार वाद-विवाद समाप्त हो जानेके बाद सभापति उपस्थित जनताकी सम्मति-गणना करता है, और बहुमत तथा अल्प मतके आधारपर निर्णयकी सूचना देता है।

डिबेटिंग सभाओंमें सभापतिका भाषण अन्य सभाओंकी भांति पहिले नहीं होता। सभापतिको अपना भाषण बिलकुल अन्तमें अर्थात् सम्मति-गणना और उसके फलकी घोषणा हो जानेके बाद करना चाहिए। इससे यह न होगा कि उस भाषणसे प्रभावित होकर उपस्थित जनता पक्ष या विपक्षमें वोट देगी और इस प्रकार दोनों पक्षके वाद-विवाद वालोंके साथ पूर्ण न्याय होगा। परन्तु यदि विशेष विषयपर अपने किसी दृढ़ विश्वासके कारण सभापति कुछ बोलना ही चाहता हो और अपने विचार उपस्थित जनता तक पहुँचाना ही चाहता हो तो वह ऐसा कर सकता है, परन्तु इस अवस्थामें उसे सभापतिका आसन किसी अन्य व्यक्तिको सौंपकर अपने भाषणके लिए साधारण सदस्यके रूपमें अवसर ग्रहण करना होगा। भाषण देकर वह सभापतिके आसन पर जा सकता है। सारांश यह कि सभापतिकी हैसियतसे वह वाद-विवादमें भाग नहीं ले सकता।

इसी प्रकार यदि सभामें कोई विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित हो और सभापति तथा सभा उसके विचार भी जानना चाहती हो तो दोनों पक्षोंके साथ न्याय करनेके विचारसे उसका भाषण भी अन्तमें सभापतिके भाषणके पहिले किन्तु वोटिंग हो जानेके बाद कराना चाहिए। परन्तु यदि वह विशिष्ट व्यक्ति वाद-विवादमें शामिल होनेकी प्रार्थना करे तो वह बीचमें भी बोल सकता है और इस प्रकार किसी एक पक्षका वक्ता बन सकता है।

वाद-विवादमें भाग लेनेवाले वक्ताओंको अपना विषय पहिले हीसे तयार करके जाना चाहिए। और भाषण देते समय भी केवल दूसरे पक्षके खण्डन पर ही जोर न देकर (क्योंकि किसी पक्षका खण्डन दूसरे पक्षके समर्थनकी कोई दलील नहीं है) अपने पक्षके समर्थनमें भी युक्तियाँ और तर्क उपस्थित करने चाहिए। और प्रत्येक प्रश्नपर हर पहलूसे विचार करना चाहिए। इन सब बातोंके अतिरिक्त भाषण और भाषाकी शैली भी परिमार्जित होनी चाहिए। इन सब बातोंके साथ जो पक्ष भाग लेगा वह निश्चित बिजयी होगा।

इतनी कार्यवाहीके बाद सभा समाप्त कर दी जाती है। समाप्तिके अवसरपर साधारणतः तो सभापतिको धन्यवाद देकर कार्य समाप्त कर दिया जाता है, परन्तु यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति सभामें आया हो तो उस व्यक्तिको भी धन्यवाद देना शिष्टाचारमें शामिल है।

सभाओंमें पत्र-प्रतिनिधि——सभाओंमें पत्र-प्रतिनिधियोंको बुलाना चाहिए या नहीं इसका निर्णय अधिकांशमें सभाके उद्देश्यपर निर्भर करता है। यदि सभा केवल कुछ काम-काज करनेके लिये ही की जाती है, अथवा यदि वह किसी ऐसे विषय पर विचार करनेके लिए की जाती है, जो गोपनीय है अथवा सभा ऐसी है जिसके सामने बड़ा नाजुक विचारणीय विषय उपस्थित है और साथ ही उस विषयपर किया गया उसका निर्णय ही अन्तिम निर्णय न होगा, वरन् उस निर्णयको फिर बड़ी सभामें पास करवाना होगा तो ऐसी दशा में पत्र-प्रतिनिधियोंको बुलाना ठीक नहीं होता। परन्तु यदि सभाका उद्देश्य अपने मन्तव्योंका प्रचार करना हो, तो वहां प्रेस-प्रतिनिधियोंको अवश्य बुलाना चाहिए। संक्षेपमें बात यह है कि जिस सभाकी कार्यवाही जनतापर प्रकट करनी हो उसमें पत्र-प्रतिनिधियोंको बुलाना और जिसकी कार्यवाही प्रकट न करनी हो उसमें न बुलाना चाहिए।

कभी-कभी ऐसे प्रसंग आ जाते हैं जब सभाओंको जनताका धन खर्च करना पड़ता है। ऐसी दशामें स्वभावतः जनता यह जानना चाहती है, कि सभावालोंने उसके धनका सदुपयोग किया या दुरुपयोग। उसकी इस जिज्ञासा को तृप्त करनेके लिए, साथ ही अपने कार्योंका वर्णन देकर अपनी प्रतिष्ठा स्थापित या वर्धित करनेके लिये भी सभाओंकी कार्यवाहियां पत्रोंमें प्रकाशित करवानेकी आवश्यकता पड़ती है। इससे यह होता है कि जनता उस सभाके कार्योंसे बराबर परिचित होती रहती है, यह जानती रहती है कि वह संस्था काम करनेवाली है, अतः जब उस संस्थाके लिये कभी धन या अन्य प्रकारके सहयोग या सहायताकी आवश्यकता होती है तब उसे जनताके पास जाकर अपने कार्योंका लेखा देनेकी फिर अधिक आवश्यकता नहीं रह जाती और उसके भविष्यत् कार्यमें सुविधाएं मिलती हैं। इसलिए भी पत्र-प्रतिनिधियोंको सभामें सम्मिलित किया जाता है।

एक बात और भी ध्यान रखनेकी है। सभाओंमें एक आदमी तो होता नहीं। अतः प्रायः यह होता है, कि गुप्त रखनेकी कोशिश करने पर भी उसकी खबरें फैल जाती हैं। उस दशामें खबर देनेवालोंकी अनभिज्ञता (रिपोर्टिङ्ग ज्ञान सम्बन्धी अनभिज्ञता) के कारण जो खबर निकलती है, वह अधिकांशमें बड़े भद्दे ढंगसे निकलती है। परन्तु प्रेस वालोंको समाचारकी महत्ता और लघुताका ज्ञान होता है, उन्हें इस बातका ज्ञान होता है, कि कौन-सी बात किस ढंगसे लिखी जानी चाहिए, साथ ही उसके लिखनेका अभ्यास भी होता है। अतः वे जो समाचार देंगे, स्वभावतः अनाड़ी आदमियों द्वारा दिये गये समाचारसे अच्छा और उपयुक्त होगा। इस लिए भी उन्हें सभाओंमें बुलाना अच्छा होता है।

यदि इन तमाम बातोंके आधारपर पत्र-प्रतिनिधियोंका बुलाना ही निश्चित किया जाय तो पत्र-प्रतिनिधियोंको अलगसे निमंत्रण देकर बुलाना चाहिए। उनके पास पहिले ही से सभामें पेश होनेवाले कार्यक्रमसे लेकर अन्य सब कागजात पहुँचा देना चाहिए। उन्हें उपस्थित जनतामेंसे विशिष्ट सज्जनोंके नाम लिखा देना चाहिए, उनके बैठनेके लिए ऐसा स्थान नियुक्त कर देना चाहिए, जहाँसे वे सभाकी सब वक्तृताएं अच्छी तरह सुन सकें, तथा सब कार्यवाही ठीक-ठीक देख सकें। फिर अन्तमें सभाके किसी विशिष्ट कार्यकर्त्ताको एक बार प्रतिनिधिके पास जाकर यह भी बता देना चाहिए कि वह किन किन बातोंको विशेष रूपसे उल्लेख करवाना चाहता है। इस प्रकारकी सब सुविधाएं देकर पत्र-प्रतिनिधिको अपनी रिपोर्ट लिखनेके लिए स्वतन्त्र कर देना चाहिए। इससे उसकी लिखी हुई रिपोर्ट बहुत उपयोगी हो जायगी।

सभाओंमें पुलिस—सभाओंमें, विशेषकर सार्वजनिक सभाओंमें पुलिस प्रायः निश्चित रूपसे सम्मिलित होती है। अपने देशमें तो यह नियम-सा है कि प्रत्येक सार्वजनिक सभामें पुलिसवालोंके, खासकर पुलिसके रिपोर्टरोंके लिये बैठनेकी सुविधा कर दी जाय। पर अन्यान्य देशोंमें यह अवस्था इतनी दूरतक नहीं पहुंची। फिर भी यदि पुलिसवाले आना चाहें, तो उनके लिये अधिक रुकावट नहीं है। पुलिसका रहना—परन्तु रिपोर्टरके रूपमें नहीं, पुलिसके रूपमें ही—कभी-कभी आवश्यक होता है। यह अवस्था विशेष रूपसे चुनाव आदिकी सभाओंमें अथवा अन्य ऐसी सभाओंमें आती है, जब दो पार्टियोंमें झगड़ा हो जाने या शान्ति भंग हो जानेकी आशङ्का रहती है। ऐसी अवस्थाओंमें तो यह भी किया जाता है कि खास तौरपर पुलिसको सूचना भी देनी पड़ती है, और अनुरोधके साथ उन्हें बुलाना पड़ता है। इस प्रकारके

अनुरोधपर प्रायः निश्चित रूपसे पुलिसके अधिकारी प्रबन्ध कर देते हैं और एकाध सब-इन्सपेक्टर, कुछ कानिस्टेबल सिपाही आदि सभामें भेज देते हैं। परन्तु कभी-कभी पुलिसकी उपस्थिति उलटा असन्तोष और उत्तेजना पैदा कर देती है। अनावश्यक रूपसे पुलिसकी व्यवस्था सभामें सम्मिलित होनेवाले सभासदोंकी शिष्टाचार-परायणतापर एक प्रकारका आक्षेप-सा होता है। यही उत्तेजना और असन्तोषका कारण बन जाता है। इसलिये पुलिसकी व्यवस्था करनेमें सदा सावधानीसे काम लेनेकी आवश्यकता रहती है।

डेपूटेशन—किसी आवश्यक विषयको किसी अधिकारी या संस्थाके सामने विशेष महत्वपूर्ण ढंगसे उपस्थित करनेके अभिप्रायसे कभी-कभी संगठित सभाएं अथवा जनताका एक विशेष समुदाय अपनेमेंसे कुछ व्यक्तियोंको एकत्र कर एक साथ अपनी बात या शिकायत आदि करनेकी व्यवस्था करता है। इस व्यवस्थाको डेपूटेशन कहते हैं। डेपूटेशन या सभ्यमण्डलमें बहुत अधिक संख्यामें सदस्य होना अच्छा नहीं होता। इस सम्बन्धमें यद्यपि संख्याकी कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती (यद्यपि कहीं-कहीं यह नियम बना दिया गया है कि डेपूटेशनके सदस्योंकी संख्या ४० से अधिक नहीं होनी चाहिये) तथापि संख्याका अन्दाज सहजमें लगाया जा सकता है। किस कामके लिये कितनी संख्या पर्याप्त होगी, इसका अन्दाज लगाना बहुत कठिन नहीं है।

डेपूटेशनके लिये यह आवश्यक है कि वह जो कुछ कहना चाहता है, उसे लिखकर या छपवाकर रख ले और उसीको सम्बन्धित अधिकारी या संस्थाके सामने पेश करे। जिससे मिलना हो, उससे पहिलेहीसे यह निश्चय कर रखना चाहिये कि अमुक समयपर अमुक विषयपर अपनी बात करनेके लिये डेपूटेशन मिलना चाहता है, और स्वीकृति आ जानेके बाद डेपूटेशनकी बातें, जो

लिखित रूपसे रहती हैं, कुछ समय पहिले ही उसके पास पहुंचा देना चाहिये, ताकि वह उस विषयपर स्वयं भी सोच-विचार कर सके। इसके बाद डेपूटेशन निर्धारित समयपर उससे मुलाकात कर सकता है। मुलाकातके अवसरपर यद्यपि डेपूटेशनके सब सदस्य उपस्थित रहेंगे, तथापि बोलनेका अधिकार केवल एक सदस्यको ही रहेगा। बोलनेवाला वक्ता (Spokesman) कहा जाता है। अपने विषयकी जितनी बातचीत उस अधिकारी या संस्थासे होगी, वह उस वक्ताके द्वारा ही होगी। बीचमें विशेष अवस्थाओंको छोड़कर जब खास तौरसे अधिकारी अन्य लोगोंकी राय जानना चाहे, तब साधारणतः दूसरे लोगोंको बोलनेका अधिकार नहीं होता। इसलिये डेपूटेशनका नेता पहिलेहीसे ऐसे व्यक्तिको निर्वाचित करना चाहिये, जो सभामण्डली भरमें सबसे अधिक योग्य हो।

कमीशन—कमीशन कमेटी और डेपूटेशनके बीचकी-सी एक चीज होती है। यह प्रायः किसी विशेष कार्यके सम्पादनके लिये बनाया जाता है। इसमें कमेटीकी भांति चेयरमैन रहता है, जो कमीशनके सब कार्योंका उत्तरदायी होता है। कमीशन अधिकांशमें किसी विशेष स्थिति या विषयका अनुसन्धान करनेके लिये बनाया जाता है। इस अनुसन्धान-कार्यमें चेयरमैन सर्वोपरि अधिकारी अवश्य माना जाता है, परन्तु डेपूटेशनकी भांति अन्य सदस्योंके बोलनेका अधिकार छिन नहीं जाता। अनुसन्धान सम्बन्धी गवाहियां आदि लेता चेयरमैन ही है, परन्तु अन्य सदस्योंको यह अधिकार रहता है कि वे भी बीच-बीचमें प्रश्न करते जायं, और रिपोर्टमें उन प्रश्नोंके उत्तरों आदिका उल्लेख होता है। जिस प्रकार डेपूटेशनको अपना 'मेमोरियल' (वक्तव्य) लिखकर सम्बन्धित अधिकारियोंके पास भिजवा देना होता है, और उसीके आधारपर

मिलनेपर बातचीत करनी होती है, उसी प्रकार कमीशनको भी अपनी प्रश्नावली पहिले तैयार कर लेनी होती है, और सम्बन्धित व्यक्तियोंके पास लिखित रूपमें पहिलेहीसे भेज देनी पड़ती है। इसके बाद अनुसन्धान करते समय इसी प्रश्नावलीके आधारपर प्रश्न किये जाते हैं। कमीशनके सदस्योंमें यदि मतभेद हो, तो अल्पमत और बहुमत अपनी-अपनी रिपोर्ट अलग-अलग पेश कर सकता है। इस प्रकार कमीशनमें कुछ कमेटीकी-सी बातें और कुछ डेपूटेशन की-सी बातें आयी हैं। इसीलिये वह दोनोंके बीचकी-सी एक चीज बन गया है।

फब*तियां*—सभाकी कार्यवाहीमें भाग लेनेका अधिकार सदस्यों और पदाधिकारियों, दोनोंको होता है। भाग लेते समय उन्हें यह अधिकार भी होता है कि वे हर्ष-शोक, समर्थन और विरोध आदिके स्थानपर अपने भाव व्यक्त करें। इस प्रकारके भावोंको व्यक्त करनेके लिये भाषण देनेका उनका जो अधिकार होता है, उसके अतिरिक्त तालियां पीटकर अथवा शोक-शोक आदि चिल्लाकर भी वे अपना समर्थन या विरोध आदिके भाव प्रकट कर सकते हैं। अतः यहांपर इसी प्रकारकी क्रियाओं और शब्दावलियोंके सम्बन्धमें कुछ बातें लिख देना अनुचित न होगा। इस प्रकारके भावोंका व्यक्तीकरण प्रायः निम्न-लिखित उपायोंसे किया जाता है :—

(१) **तालियां पीटकर**—तालियां पीटनेका अभिप्राय यह होता है कि उस समय जो बात वक्ता कह रहा है, उससे उपस्थित सदस्य सहमत हैं अथवा वह उन्हें पसन्द आयी। भाषणके अन्तमें भी तालियां पीटी जाती हैं, और उसका अभिप्राय भी यही होता है कि जो भाषण हो चुका है, वह उन्हें अच्छा लगा। परन्तु अब तो भाषणके अन्तमें तालियां पीटना एक शिष्टाचार-

सा बन गया है। प्रायः प्रत्येक वक्ताके भाषणके समाप्त हो जानेपर तालियाँ पीटी जाती हैं।

(२) 'शाबास-शाबास' कहकर—ये शब्द भी उसी समय दोहराये जाते हैं, जब वक्ताकी कोई बात सभासदोंको पसन्द आती है। इसका अर्थ भी उस बातका समर्थन ही होता है। परन्तु इसका प्रयोग कभी-कभी केवल वक्ताकी किसी कमजोरीको लक्ष्य करके ताने मारनेके लिये भी किया जाता है। जब वक्ता कोई भूल करता है, अथवा भाषणके ढंग आदिमें दोष करता है, तब केवल तानेके लिये भी कभी-कभी लोग 'शाबास' आदि शब्द कह डालते हैं। इसी अभिप्रायसे सभामें अंग्रेजीके हियर-हियर (hear-hear) आदि शब्द भी कहे जाते हैं। ['ठीक है ठीक है' कहकर भी यही भाव व्यक्त किये जाते हैं, परन्तु इन शब्दोंका प्रयोग तानेके लिये नहीं किया जाता।]

(३) 'प्रश्न-प्रश्न' कहकर—'प्रश्न-प्रश्न' शब्द उस समय कहे जाते हैं, जब सभासदोंको वक्ताके किसी कथनपर शक होता है। इस कथनका अभिप्राय यह होता है कि वक्ताकी उस विशेष बातके सम्बन्धमें जनता न तो समर्थन ही करती है, न विरोध। फिर भी इस शब्दके प्रयोगका झुकाव विरोधकी ओर ही होता है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि यदि बात मानने योग्य हुई, तब तो प्रश्न करनेकी कोई बात ही नहीं आती। गलत होनेपर भी कोई विरोध करना नहीं चाहता, परन्तु हानिप्रद बातके लिये ऐसा नहीं होता। इसीलिये उस अवसरपर इन शब्दोंका प्रयोग किया जाता है। इनके स्थानपर अंग्रेजीके 'क्वेशचन-क्वेशचन' (question-question) शब्दोंका प्रयोग भी किया जाता है।

(४) **'शोक-शोक' कहकर**—इन शब्दोंका प्रयोग ग्लानि प्रकट करने के लिये किया जाता है। जब वक्ता भाषणके बीचमें किसी ऐसी घटना या बातका उल्लेख करता है, जो उपस्थित जनताके हितोंके विरुद्ध थी, तब सदस्यों द्वारा 'शोक-शोक' शब्दोंका प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग कभी-कभी उस अवस्थामें भी किया जाता है, जब स्वयं वक्ताके किन्हीं शब्दों या विचारोंके सम्बन्धमें सदस्योंको आपत्ति होती है। इन शब्दोंके स्थानपर अंग्रेजीके 'शेम-शेम' (Shame Shame) शब्दोंका प्रयोग भी किया जाता है।

(५) **'सावधान-सावधान' कहकर**—जब वक्ता कोई ऐसी बात कहता है या कोई ऐसा आचरण करता है, जो सभाचारके विरुद्ध है, तब इन शब्दोंका प्रयोग किया जाता है। इससे सदस्योंका अभिप्राय यह होता है कि वक्ता उन विचारों या आचरणोंको छोड़ दे।

(६) **'नहीं नहीं' कहकर**—इन शब्दोंका प्रयोग भी विरोधके लिए ही होता है, परन्तु इसके विरोध और शोक शोकके विरोधमें अन्तर है। ये ऐसी अवस्थामें कहे जाते हैं, जब वक्ता कोई ऐसी बात कहता है जिससे, सभासद सहमत नहीं है, अथवा जो सरासर गलत है। इसके स्थानपर अंग्रेजीक (नो नो) No No शब्द भी व्यवहार किये जाते हैं।

निमन्त्रण-पत्र—सभाओंके निमन्त्रण पत्रोंके लिखनेमें कोई विशेष बात नहीं होती। केवल आवश्यक यह होता है कि उसमें स्पष्ट रूपसे यह लिखा रहे कि किस स्थानपर किस विषयपर विचार करनेके लिये किस समय सभा होगी। स्थान, समय और विषयके अतिरिक्त यदि पहलेहीसे उस सभाके सभापतिका मनोनयन कर लिया गया हो, तो उसका और यदि कुछ विशिष्ट वक्ताओंके भाषणकी आयोजना हो चुकी हो, तो उनके नाम भी दे देने चाहिये। इसके

अतिरिक्त उस सभा या उत्सवपर यदि अन्य कोई विशेष कार्य करना हो, जैसे कोई अभिनय करना, मनोरंजनका कोई अन्य आयोजन, या ऐसी ही कोई अन्य बात हो, तो उसका उल्लेख भी अच्छा होता है। उदाहरणार्थः—

श्रीमन,

आगामी रविवार ता० १५ अक्टूबर १९३९ को सन्ध्याके ५ बजे स्थानीय टाउन हालमें, साहित्यकारोंकी वर्तमान अवस्थापर विचार करनेके लिये, पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयीके सभापतित्वमें एक सभा होगी। इस अवसरपर हिन्दी-नाट्य-परिषदकी ओरसे एक छोटा-सा अभिनय भी दिखाया जायगा। आपसे निवेदन है कि उक्त अवसरपर पधारनेकी अवश्य कृपा करें।

निवेदक—

जब कोई संस्था किसी सभाका आयोजन करती है, चाहे वह सभा उस संस्थाकी ही क्यों न हो, तब उसमें निवेदकके स्थानपर मन्त्रीका नाम उसकी उपाधिके साथ रहेगा। विशेष अवसरोंपर मन्त्रीके नामके साथ सभापतिका नाम भी रहता है। इन दो पदाधिकारियोंके अतिरिक्त अन्य पदाधिकारियोंके नाम आनेकी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु यदि वह संस्थाद्वारा न बुलायी जाकर व्यक्ति या व्यक्तियोंद्वारा बुलायी जा रही हो, तो उस व्यक्ति या उन व्यक्तियोंके नाम नीचे रहते हैं। कभी-कभी आयोजक वास्तवमें एक होते हुए भीअनेक व्यक्तियोंके नाम निवेदकोंमें दे दिये जाते हैं। इसका कारण यह है कि नीचे दिये गये नामोंके प्रभावसे उपस्थिति अच्छी हो जानेकी आशा होती है।